

દ્રષ્ટિનો વિષય

(વસ્તુ-વ્યવસ્થા સહિત)

- અર્પણ -

--: ઉપકારી બંધુઓને :-

શ્રી નેમિશભાઈ શાંતિલાલ શાહ અને શ્રી હિતેનભાઈ અનંતરાય શેઠને,
પૂ. ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીનું સાહિત્ય અને દિગંબર ગ્રન્થો ઉપલબ્ધ કરાવવા બદલ
તથા અમારા સર્વે કાર્યોમાં સર્વ રીતે મદદ કરનાર શ્રી રશ્મિનભાઈ મોહનલાલ શેઠને.

“જે જીવ રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામેલ હોવાં છતાં પણ માત્ર
શુદ્ધાત્મામાં જ (દ્રવ્યાત્મામાં જ =સ્વભાવમાં જ) ‘હું પણું’
(એકત્વ) કરે છે અને તેનો જ અનુભવ કરે છે, તે જ જીવ
સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે અર્થાત્ તે જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે.”

- લેખક -

CA. જયેશ મોહનલાલ શેઠ (બોરીવલી),
B.Com., F.C.A.

પ્રકાશક : શૈલેશ પુનમચંદ શાહ

- અતુકમણિકા -

ક્રમ	વિષય	પૃષ્ઠ
★	પ્રસ્તાવના (પં. દેવેન્દ્રકુમારજી જૈન) ...	V
૧	લેખકના હૃદયોદ્ગારો ...	૧
૨	પૂર્વભૂમિકા ...	૫
૩	સમ્યગ્દર્શન ...	૮
૪	દ્રવ્ય - ગુણ વ્યવસ્થા... ...	૧૦
૫	દ્રવ્ય - પર્યાય વ્યવસ્થા... ...	૧૪
૬	ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ વ્યવસ્થા ...	૧૬
૭	દ્રષ્ટિભેદે ભેદ ...	૧૭
૮	પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની વસ્તુવ્યવસ્થા દર્શાવતી ગાથાઓ ...	૧૯
૯	સમ્યગ્દર્શનનું સ્વરૂપ ...	૪૫
૧૦	સમ્યગ્દર્શનનો વિષય અર્થાત્ દ્રષ્ટિનો વિષય ...	૪૯
૧૧	પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની દ્રષ્ટિનો વિષય દર્શાવતી ગાથાઓ ...	૫૨
૧૨	આત્મજ્ઞાનરૂપ સ્વાત્માનુભૂતિ પરોક્ષ કે પ્રત્યક્ષ ...	૫૬
૧૩	સ્વાત્માનુભૂતિ આત્માના કયા પ્રદેશે ...	૫૭
૧૪	ઈન્દ્રિયજ્ઞાન જ્ઞાન નથી? ...	૫૮
૧૫	પર્યાય પરમપારિણામિકભાવની જા અનેલ છે ...	૬૦
૧૬	સ્વભાવપર્યાય અને વિભાવપર્યાય ...	૬૪
૧૭	નવ તત્ત્વની સાચી શ્રદ્ધાનું સ્વરૂપ ...	૬૫
૧૮	સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ ...	૭૦
૧૯	સમ્યગ્દ્રષ્ટિને ભોગ બંધનું કારણ નથી ...	૭૨
૨૦	નિમિત્ત-ઉપાદાનની સ્પષ્ટતા ...	૭૪
૨૧	ઉપયોગ અને લબ્ધિરૂપ સમ્યગ્દર્શન ...	૭૫
૨૨	સ્વાનુભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા ...	૭૬
૨૩	સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવનો નિર્વિચિકિત્સાગુણ... ...	૭૮
૨૪	સમ્યગ્દર્શન માટેની યોગ્યતા ...	૭૯
૨૫	શુભોપયોગ નિર્જરાનું કારણ નથી ...	૮૦
૨૬	સમ્યગ્દર્શન વિના દ્રવ્ય ચારિત્ર ...	૮૨

૨૭	સ્વ-પર વિષયનો ઉપયોગ કરવાવાળો પણ આત્મજ્ઞાની હોય	૮૩
૨૮	પ્રવચનસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય	૮૫
૨૯	નિયમસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય	૮૭
૩૦	ધ્યાન વિશે	૯૦
૩૧	સાધકને સલાહ	૯૨
૩૨	નિયમસાર અનુસાર ધ્યાન અને સમ્યગ્દર્શનનો વિષય	૯૭
૩૩	પંચાસ્તિકાય સંગ્રહની ગાથાઓ	૧૧૫
૩૪	અષ્ટપાહુડની ગાથાઓ	૧૧૬
૩૫	સમ્યગ્દર્શન અને મોક્ષમાર્ગ	૧૧૯
૩૬	સમયસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય	૧૨૧
૩૭	સમયસારના અધિકારોનું વિહંગાવલોકન	૧૩૮
૩૮	સમયસારના પરિશિષ્ટમાંથી અનેકાંતનું સ્વરૂપ	૧૫૩
૩૯	બાર ભાવના	૧૫૮
૪૦	ચિંતન કણિકાઓ	૧૬૦

© CA. જયેશ મોહનલાલ શેઠ

મૂલ્ય : અમૂલ્ય

પહેલી આવૃત્તિ - વિ.સં. ૨૦૭૦ (ફેબ્રુઆરી ૨૦૧૪) પ્રત : ૧,૦૦૦

નોંધ- આ પુસ્તક કોઈને છપાવવું હોય તો, અમારો સંપર્ક કરવા વિનંતિ છે.

- સંપર્ક અને પ્રાપ્તિ સ્થાન -

શૈલેશ પુનમચંદ શાહ - ૪૦૨, પારિજાત, સ્વામી સમર્થ માર્ગ,

(હનુમાન કોસ રોડ નં ૨), વિલેપાર્લે (ઈસ્ટ), મુંબઈ - ૪૦૦૦૫૭.

ફોન નં ૨૬૧૩ ૩૦૪૮ મોબાઈલ નં ૯૮૯૨૪ ૩૬૭૯૯/૭૩૦૩૨ ૮૧૩૩૪

જયકળા નલિન ગાંધી - એ/૩૦૩, ગોપાલ, એસ. વી. રોડ,

માનવકલ્યાણની બાજુમાં, દહિસર (ઈસ્ટ), મુંબઈ - ૪૦૦ ૦૬૮.

ફોન નં ૨૮૯૫ ૨૫૩૦ મોબાઈલ નં ૯૮૩૩૬ ૭૭૪૪૭ / ૯૮૨૧૯ ૫૨૫૩૦

ટાઈપ સેટીંગ : સમીર પારેખ - ક્રિએટીવ પેજ સેટર્સ ફોન : ૯૮૬૯૦ ૦૮૯૦૭

મુદ્રણ : નિલેશ પારેખ - પારસ પ્રિન્ટ્સ, ગોરેગામ, મુંબઈ ફોન : ૯૯૬૯૧ ૭૬૪૩૨

- અનુમોદક -
જયકળા નલિન ગાંધી

प्रस्तावना

इस अनादि संसार में अनन्त जल निज आत्मस्वरूप की पहचान एवं अनुभूति के अभाव में अनादि से जन्म-मरण करते हुये अनन्त दुःखी हो रहे हैं. जलों के अनन्त दुःखों का अकेला कारण परद्रव्यों एवं परभावों में अकेलबुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव ही है. इसी तथ्य को आचार्यकल्प पंडित टोडरमलज ने इस शब्दों में व्यक्त किया है-

‘इस भवतरु का मूल इक जानहू मिथ्याभाव’

(*मोक्षमार्ग प्रकाशक*, अध्याय ७, मंगलाचरण)

अनादिकालीन इस विपरीतमान्यतारूप मिथ्यात्वभाव की पुष्टि कुट्टेव-कुगुरु-कुशास्त्र के निमित्त से होती है और जल अपनी विपरीत मान्यता को अत्यन्त दृढ़ कर लेता है. इस कारण संसार-परिभ्रमण के अभाव के मार्ग से अत्यन्त दूर हो जाता है. यह मिथ्यात्व ही है जिसके कारण जल निगोद जैसी हीनतम दशा को प्राप्त होकर अत्यन्त दुःखी होता है. यही कारण है कि सम्पूर्ण जिनागम में मिथ्यात्व — मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र को अकेले में पाप संज्ञा दी गयी है. करणानुयोग में तो मिथ्याद्रष्टि जल को ‘पापजल’ कह कर सम्बोधित किया गया है.

इस मिथ्यादर्शनरूप परिणाम के रहते हुये कदाचित् यह जल नौवें त्रैवेयक जनेयोग्य महाशुभपरिणाम भी कर ले, तो भी संसार-परिभ्रमण का अभाव नहीं होता और न अनन्त कष्टों का ही अन्त होता है. इसीलिये कहा है कि-

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक ऊपजायो

पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो ।

(*छलढाला, यौथी ढाल*)

पंडित टोडरमलज ने तो अपनी लोकप्रिय कृति *मोक्षमार्ग प्रकाशक* में मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादि से बड़ा पाप कहा है. उनका कथन इस प्रकार है-

‘जिन धर्म में यह तो आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छोड़कर फिर छोटा पाप छोड़ा है; इसलिये इस मिथ्यात्व को सप्त व्यवसनादिक से बड़ा पाप ननकर पहले छोड़ा है. इसलिये जो पाप के फल से डरते हैं; अपने आत्मा को दुःखसमुद्र में नहीं डुबाना चाहते, वे जब इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो.’ (छठवां अध्याय)

इसका कारण यह है कि सप्त व्यसनरूप पाप आरित्रिक पाप है, जिसके फल में सातवें नरक तक की स्थिति तो हो सकती है, किन्तु सम्यग्दर्शन के लिये अनिवार्य योग्यतारूप संज्ञी पंचेन्द्रियपना इत्यादि का अभाव नहीं होता; अतः कोई-कोई जब सप्तम नरक की भीषण प्रतिकूलता में भी स्वयंपलक्ष्य करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं. जबकि मिथ्यादर्शन के फलस्वरूप प्राप्त निगोददशा में तो वह योग्यता दीर्घकाल तक अभावरूप हो जाती है.

दूसरा कारण यह भी है कि हिंसादि या सप्त व्यसनादि पाप धारावाहीरूप से कोई जब नहीं कर सकता; साथ ही उस पापी जब को यद्वाकदा अपने दुष्कृत्य का पश्चात्ताप भी होता रहता है एवं ऐसे पापी को जगत के जब भी हेयद्रष्टि से देखते हैं. जबकि मिथ्यादर्शनादिरूप महापाप परिणाम धारावाहीरूप से प्रवर्तमान रहते हैं; इन पापों की विद्यमानता रहने पर भी, बाह्य व्रत, तपादि करके वह जब स्वयं को तो धर्मात्मा मानता ही है; जगत में अन्य जब भी उसे धर्मात्मा की संज्ञा से सम्बोधन करते हैं, फलस्वरूप उसे ‘मैं कोई पाप कर रहा हूँ’ यह विचार ही उसे उद्भवित नहीं होता.

यही कारण है कि वीतरागी परमात्मा की दिव्यध्वनि से लेकर समस्त भावलिङ्गी सन्तों एवं ज्ञानी-धर्मात्माओं की परम्परा में सर्व प्रथम मिथ्यादर्शन का अभाव करके सम्यग्दर्शन अंगीकार करने का उपदेश निष्कारण करुणा से प्रवाहित हुआ है.

सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुये आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने अष्टपाहुड में **दंसागु मूलो धम्मो** (दर्शनपाहुड, गाथा-२) कहकर सम्यग्दर्शन को धर्म का मूल कहा है. इसी प्रकार रत्नकरण्ड श्रावकाचार गाथा ३१ में कहा है कि-

दर्शन ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्रुते ।

दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गं प्रचक्षते ॥३१॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा अधिक है; इस कारण सम्यग्दर्शन, मोक्षमार्ग में कर्णधार कललाता है।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव कहते हैं कि-

जह मूलमि विणट्टे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी ।

तह जिणदंसणभट्टा मूलविणट्टा ण सिज्झंति ॥१०॥

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति स्थिति, वृद्धि और फलोत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति स्थिति, वृद्धि और फलोत्पत्ति नहीं हो सकती।

आचार्य योगीन्द्र देव ने भी कहा है कि-

दंसणभूमिह बाहिरा जिय वयरुक्ख ण होंति ।

अर्थात् हे भ्रूव! इस सम्यग्दर्शन भूमि के बिना व्रतरूप वृक्ष नहीं होता। इसलिये प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। (योगीन्द्र देव कृत श्रावकाचार)

सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुये आचार्य समन्तभद्रदेव तो मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ को भी श्रेष्ठ कहते हैं। उनका यह कथन इस प्रकार है-

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।

अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थात् दर्शनमोहरहित गृहस्थ मोक्षमार्ग में स्थित है किन्तु दर्शनमोहरहित मिथ्याद्रष्टि द्रव्यलिंगी मुनि, मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है। इसीलिये मिथ्याद्रष्टि मुनि की अपेक्षा मिथ्यात्वरहित गृहस्थ श्रेष्ठ है।

आचार्यदेव तो यहाँ तक कहते हैं कि-

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

(रत्नाकरण्ड श्रावकाचार)

अर्थात् तीन काल और तीन लोक में देहधारी ज़ुवों को सम्यक्त्व के समान कोई अन्य श्रेष्ठरूप-उपकारक नहीं है और भिथ्यात्व के समान अन्य कोई अकल्याणकार-अनुपकारक नहीं है.

इसी प्रकार का भाव पंडित दौलतरामजी ने अपनी सुविष्यात कृति छुडढावा में व्यक्त किया है-

मोक्षमहल की परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥(ढाल ३-१७)
तीन लोक तिहुंकाल मांहि नहिं, दर्शन सौ सुखकारी ।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥(३-१७)

सम्यग्दर्शन की महत्ता अतलाते हुअे आचार्य कुन्दकुन्ददेव तो यहां तक कहते हैं कि-

किं बहुणा भणिणं जे सिद्धा णरवरा गए काले ।
सिद्धिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥८८ ॥
ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया ।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९ ॥ (मोक्षपाहुड़)

अर्थात् आचार्य कहते हैं कि अहुत कहने से क्या साध्य है? जे नरप्रधान अतित काल में सिद्ध हुअे हैं और आगामी काल में सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्व का भाहात्म्य जनो.

जिन पुरुषों ने मुक्ति को करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतियार नहीं लगाया वे पुरुष धन्य हैं, वे ही मनुष्य हैं, वे ही भले कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं, वे पंडित हैं.

मुक्तिमार्ग में सम्यग्दर्शन की महत्वपूर्णा भूमिका की यर्था करते हुअे आत्महित-अभिलाषी ज़ुवों को सर्व प्रथम इसे अंगीकार करने के उपदेश भी जिनागम में यत्र-तत्र देअे न सकते हैं. आचार्य अमृतयन्द्रदेव पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहते हैं कि-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन ।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च ॥२१ ॥

अर्थात् इन तीनों में प्रथम समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से सम्यग्दर्शन को भले प्रकार अंगीकार करना चाहिए क्योंकि उसके होने पर ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है.

इस गाथा की टीका करते हुए आचार्यकल्प पंडित टोडरमल्ल तो यहां तक कहते हैं कि- तत्र आदौ अखिलयत्नेन सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयम्। इन तीनों में प्रथम ही समस्त उपायों से, जिस प्रकार भी बन सके वैसे, सम्यग्दर्शन अंगीकार करना चाहिए. इसके प्राप्त होने पर अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त होता है. और इसके बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता. यह स्वप्न की प्राप्ति का अद्वितीय कारण है. अतः इसके अंगीकार करने में किंचित् मात्र भी प्रमाद नहीं करना. मृत्यु का वराण करके भी इसे प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना. बहुत कहां तक कहें? इस ज्ञान के भला होने का उपाय सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं. इसलिये इसे अवश्य अंगीकार करना.

सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है- इस अभिप्राय का पोषक, धवला टीकाकार आचार्य वीरसेनस्वामी का निम्न अभिप्राय मननीय है-

मिथ्यादृष्टयोऽपि केचित्संयता दृश्यन्त इति चेन्न, सम्यक्त्वमन्तरेण संयमानुपपत्तेः ।

शंका- कितने ही मिथ्याद्रष्टि ज्ञान संयत देखे जाते हैं?

समाधान- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती है.

(षट्पाण्डागम पुस्तक-१, पा७५-१- भाग-१, पृष्ठ ३८०)

सम्यग्दर्शन से रहित ज्ञान भले ही व्रत-तप से संयुक्त हो तथापि वह पापी है; इस प्रकार का निम्न उल्लेख भी द्रष्टव्य है-

...व्रत समिति का पालन भले ही करे, तथापि स्व-पर का ज्ञान न होने से वह पापी ही है... सिद्धान्त में मिथ्यात्व को ही पाप कहा है, जब तक मिथ्यात्व रहता है तब तक शुभाशुभ सर्व क्रियाओं को अध्यात्म में परमार्थतः पाप ही कहा जाता है.

(समयसार कलश १३७ का भावार्थ)

सम्यग्दर्शन के सम्बन्ध में आचार्य सकलकीर्ति द्वारा रचित प्रश्नोत्तर श्रावकारयार के निम्न कथन भी मननीय है-

- ◆ व्रत-यारित्ररहित तथा विशेष ज्ञानरहित अकेला सम्यक्त्व भी अच्छा है- प्रशंसनीय है, परन्तु मिथ्यात्वरूपी जहर से भिगडे लुभे व्रत-ज्ञानादि, वे अच्छे नहीं हैं.
- ◆ सम्यक्त्वरहित ज्ञव वास्तव में पशु समान है; जन्मान्ध की तरह वह धर्म-अधर्म को नहीं जनता है.
- ◆ दुःखों से भरपूर नरक में भी सम्यक्त्वसहित ज्ञव शोभता है; उससे रहित ज्ञव, देवलोक में भी शोभता नहीं है, क्योंकि वह नरक का ज्ञव तो सारभूत सम्यक्त्व के माहात्म्य के कारण वहां से निकलकर लोकालोक प्रकाशक तीर्थनाथ होगा और मिथ्यात्व के कारण भोग में तन्मय उस देव का ज्ञव, आर्तध्यान से भरकर स्थावरयोनि में जायेगा.
- ◆ तीन काल और तीन लोक में सम्यक्त्व के समान धर्म दूसरा कोई नहीं; जगत में वह ज्ञव परमहितकर है.
- ◆ सम्यक्त्व के अतिरिक्त दूसरा ज्ञव का कोई मित्र नहीं है, दूसरा कोई धर्म नहीं है, दूसरा कोई सार नहीं है, दूसरा कोई हित नहीं है, दूसरा कोई पिता-माता आदि स्वजन नहीं और दूसरा कोई सुख नहीं. मित्र-धर्म-सार-हित-स्वजन-सुख, यह सब सम्यक्त्व में समाहित है.
- ◆ सम्यक्त्व से अलंकृत देह भी देवों द्वारा पूज्य है परन्तु सम्यक्त्वरहित त्यागी भी पद-पद पर निन्दनीय है.
- ◆ ओक बार सम्यक्त्व को अन्तर्मुहूर्तमात्र भी ग्रहण करके, कदाचित् ज्ञव उसे छोड भी दे तो भी निश्चित वह अल्प काल में (पुनः सम्यक्त्वादि ग्रहण करके) मुक्ति प्राप्त करेगा.
- ◆ जिस भव्य को सम्यक्त्व है, उसके हाथ में चिन्ताभण्डि है, उसके घर में कल्पवृक्ष और कामधेनु है.
- ◆ ज्ञवे ज्ञव, हिंसा छोडकर, वन में जाकर अकेला बसता है और सर्दी-गर्मी सहन करता है परन्तु यदि सम्यग्दर्शनरहित है तो वन के वृक्ष जैसे है.

- ◆ सम्यक्त्व के बल से जो कर्म सलज में नष्ट होते हैं, वे कर्म सम्यक्त्व के बिना धोर तप से भी नष्ट नहीं होते.
- ◆ मुनि के व्रतसहित, सर्वसंगरहित, देवों से पूज्य जैसे निर्ग्रन्थ जिनरूप भी सम्यग्दर्शन के बिना शोभा नहीं देता. (वह तो प्राणरहित सुन्दर शरीर जैसे है).
- ◆ जैसे प्राणरहित शरीर को मृतक कहा जाता है; उसी प्रकार द्रष्टिहीन जव को चलता मृतक कहा जाता है.
- ◆ अधिक क्या कहना? जगत में जितने सुभ हैं, वे सब सर्वोत्कृष्टरूप से सम्यग्द्रष्टि को प्राप्त होते हैं.

◆ एतत् समयसर्वस्वम् एतत् सिद्धान्तजीवितम् ।

एतत् मोक्षगतेः बीजं सम्यक्त्वं विद्धि तत्त्वतः ॥

विधिपूर्वक उपासित किया गया यह सम्यक्त्व, वह समय का सर्वस्व है- सर्व शास्त्रों का सार है, वह सिद्धान्त का जवन है- प्राण है और वही मोक्षगति का बीज है.

◆ सम्यक्त्व है वह सार है, है समय का सर्वस्व वह ।

सिद्धान्त का जीवन वही और मोक्ष का है बीज वह ।

विधि जानकर बहुमान से आराधना सम्यक्त्व को ।

सर्व सौख्य ऐसे पाओगे आश्चर्य होगा जगत को ॥

अहो! यह सम्यग्दर्शन है, वह मोक्षइल देनेवाला सय्या कल्पवृक्ष है. जिनवर-वयन की श्रद्धा उसका मूल है; तत्वश्रद्धा उसकी शाखा है. समस्त गुण की उज्वलता रूप जल सिंघन द्वारा जो वर्धमान है, चारित्र जिसकी शाखायें हैं; सर्व समिति, वे उसके पत्र-पुष्प हैं और मोक्षसुष्पणी इल द्वारा जो इल-कुल रहा है- ऐसा सम्यग्दर्शन सवोत्तम कल्पवृक्ष है. अहो जवों! उसका सेवन करो. (उसकी मधुर छाया लेनेवाला भी महाभाग्यवान है).

(श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, सर्ग-११ की ययनित गाथाये)

जिनागम में सम्यग्दर्शन से ब्रष्ट को ही ब्रष्ट माना गया है एवं उसे मुक्ति के लिये अयोग्य कहा गया है. आचार्य कुन्दकुन्द का यह कथन इस सम्बन्ध में अनुप्रेक्षाणीय है-

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं ।...

अर्थात् जे पुरुष दर्शन से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं; जे दर्शन से भ्रष्ट हैं उनको निर्वाण नहीं होता... (अष्टपाण्डु-दर्शनपाण्डु, गाथा-४)

सम्यग्द्रष्टि ज्ञव का दृर्गति गमन नहीं होता तथा अशुभभाव के काल में आगामी भव सम्बन्धी आयु का बन्ध नहीं होता यह भी सम्यक्त्व का आश्चर्यकारी प्रभाव ज्ञानना चाहिए।

(योगासार, ८८; छुडढावा, तीसरी ढाला; धवला आदि)

सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन करते हुये ऐसे धर्मात्मा को देवों द्वारा प्रशंसनीय/पूजनीय पतलानेवाले कथन भी जिनागम में उपलब्ध होते हैं। (छुडढावा, रत्नकरणुड श्रावकाचार)

इस प्रकार सम्पूर्ण जिनागम में मिथ्यात्व की लयंकरता और सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता के अनेकों प्रमाण मौजूद हैं, जिन्हें यहां विस्तार भय से नहीं दिया जा रहा है। जिज्ञासु पाठकों को इस सम्बन्ध में आत्महित के लक्ष्य से जिनागम का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का विनम्र अनुरोध है।

ज्ञानी धर्मात्माओं की इसी परम्परा में वर्तमान शताब्दी में आध्यात्मिक सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानज्जस्वामी के पैंतालीस वर्षों तक इस विषय पर अनवरत प्रवचनधारा बहाकर यह विषय अत्यन्त चर्चित कर दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी सन्तों के हार्द को समझकर कर्ण ज्ञव आत्महित के सुभद्रमार्ग को प्राप्त हुये, तो कर्ण ज्ञव इस मार्ग को प्राप्त करने हेतु प्रयासरत भी हो रहे हैं, किन्तु उनके व्याख्यानों एवं प्रतिपादन की अपेक्षाओं को सर्वांगीरूप से न समझ पाने के कारण एवं अपने दुराग्रहों को सुरक्षित रखने के व्यामोह से अनेक लोग उनके वचनों को तोड़-भरोडकर अथवा आधे-अधूरे प्रस्तुत कर अपने अज्ञान की सुरक्षा के लिये कवच की तरह प्रयोग कर रहे हैं। यह भी एक विडम्बना ही है कि जे मार्ग आत्महित का पथप्रदर्शक है, उसी को अज्ञानी अपने अज्ञान की पुष्टि में निमित्त बना लेता है।

जैसे कि- द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वस्तु में सम्यग्दर्शन के प्रयोजन से पर्याय को गौण करके त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में मैं पना कराया जाता है, वहां द्रव्य और पर्याय को दो भिन्न पदार्थों

की तरह समझ लेना पदार्थ विपर्यास है एवं द्रव्यपर्यायस्वरूप भेदाभेदात्मक अथवा नित्य-अनित्यात्मक वस्तु में मैं पना भी स्पष्टरूप से मिथ्यादर्शन है. तात्पर्य यह है कि प्रमाण के द्वारा गृहीत नित्य-अनित्यात्मक अथवा भेदाभेदात्मक वस्तु में सम्यग्दर्शनरूप प्रयोजन की सिद्धि के लिये अनित्य पर्याय अथवा भेदभावों को गौण करते ही शुद्धद्रव्यार्थिकनय अथवा परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत परमारिणामिक भावस्वरूप वस्तु में मैं पना लेकर सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हो जाती है. अतः द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वस्तुस्वभाव की समीचीन समझपूर्वक प्रयोजन की सिद्धि ही निरापेक्ष मार्ग है.

घन्ही उपर्युक्त कारणों से व्यथित होकर मुंभई निवासी भाईश्री जयेशभाईने 'द्रष्टि का विषय' नामक पुस्तक आगम के आलोक में प्रस्तुत कर प्रशंसनीय कार्य किया है. यहां इस प्रस्तावना में 'द्रष्टि का विषय' के संदर्भ में विचारणीय बिन्दुओं पर चर्चा की जा रही है.

यद्यपि द्रष्टि शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, तथापि यहां द्रष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन एवं उसका विषय अर्थात् सम्यग्दर्शन का विषय/सम्यग्दर्शन का अर्थ 'मैं पना' अथवा 'अहं' होता है. अतः किसमें 'अहं' या 'मैं पने' को सम्यग्दर्शन कहते हैं- यही द्रष्टि का विषय है.

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने तो एक ही गाथा में सम्यग्दर्शन के विषय का सारभूत स्पष्टीकरण करते लुभे कहा है-

सम्यक् सदुर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।

सब आतमा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण ॥३॥

(अष्टपाण्डु, मोक्षपाण्डु, गाथा १०५ का हिन्दी पद्यानुवाद)

इस गाथा में वर्णित 'आत्मा ही शरण' यह है द्रष्टि का विषयभूत त्रैकालिक ध्रुवतत्त्व, जिसके आश्रय/मैं पना से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है.

अब यहां प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित विभिन्न बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा अपेक्षित है जो निम्नानुसार है-

सम्यग्दर्शन के लिये आवश्यक क्या?

सम्यग्दर्शन एवं उसकी महिमा के परिज्ञान के पश्चात् यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होने योग्य है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये क्या आवश्यक है?

इसका समाधान करते हुये लेखक ने कहा है कि सम्यग्दर्शन के लिये अनिवार्य है भेदज्ञान. आत्मा और पुद्गल तथा पुद्गल के लक्ष्य से उत्पन्न विकारी भावों से भेदज्ञान सम्यग्दर्शन के लिये जितना अनिवार्य है; उतनी द्रव्य-गुण-पर्याय की समझ नहीं. हां, इतना अवश्य है कि यदि द्रव्य-गुण-पर्याय के सम्बन्ध में विपरीत अवधारणा है तो निश्चित ही वह सम्यग्दर्शन के लिये अवरोधक कारण है. वरना स्व-पर की भिन्नतारूप भेदज्ञान से भी सम्यग्दर्शनरूपी कार्य हो सकता है.

इसी बात को आचार्यद्वैव ने समयसार में इस प्रकार कहा है-

‘भेदविज्ञान जिसका मूल है- ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी, तब आत्मा प्रतिबुद्ध होगा।’

(समयसार, गाथा १८ टीका)

तात्पर्यात् अप्रतिबुद्ध को समझाने के उद्देश्य से लिखी गयी २३-२५ गाथाओं में इसी भेदविज्ञान की यर्था की है, जे मूलतः पठनीय है.

आचार्य पूज्यपादस्वामी तो कहते हैं कि-

जीव जुदा पुद्गल जुदा यही तत्त्व का सार।

अन्य कुछ व्याख्यान सब याही का विस्तार ॥५०॥

(छोटोपदेश)

तात्पर्य यह है कि यदि द्रव्य-गुण-पर्याय की विस्तृत समझ न हो; एवं उस सन्दर्भ में अभिप्राय की विपरीतता न हो तो स्व-पर भेदविज्ञान करके भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया जा सकता है.

वर्तमान स्वाध्यायी वर्ग में द्रव्य-गुण-पर्याय के सम्बन्ध में प्रयत्नित अनेक भ्रान्तियों के प्रक्षालन का सफल प्रयास लेखक द्वारा जिनागाम के परिप्रेक्ष्य में (१) द्रव्य-गुण व्यवस्था (२) द्रव्य-पर्याय व्यवस्था (३) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप व्यवस्था नामक प्रकरण में किया गया है, जिसका सारभूत तात्पर्य लेखक के ही शब्दों में इस प्रकार है-

ओक अप्ठंड द्रव्य में रही छुई अनन्त विशेषताओं को उस द्रव्य के अनन्तानन्त गुणों के रूप में वर्णन किया है, बतलाया है. उन सर्व विशेषताओं के समूह को द्रव्य

(वस्तु) रूप से बतलाया है। वह वस्तु (द्रव्य) तो अभेद-अंक ही है परन्तु उसकी विशेषताओं को दर्शाने के लिये ही उसमें गुणभेद किये हैं, अन्यथा वहां कोई क्षेत्रभेदरूप गुणभेद है नहीं... इससे उसे कथंचित् भेद-अभेदरूप बतलाया है... वहां वस्तु में कोई वास्तविक भेद नहीं है इस अपेक्षा से अभेद ही कहा जाता है। अभेदनय को ही कार्यकारी बतलाया है और भेदनय मात्र वस्तु का स्वरूप समझाने के लिये कहा गया भेदरूप व्यवहारमात्र ही है, क्योंकि निश्चय से वस्तु अभेद है। तथा

गुणों के समूहरूप अभेद द्रव्य का जो वर्तमान है अर्थात् उसकी जो वर्तमान अवस्था है (परिगमन है) उसे ही उस द्रव्य की पर्याय कहा जाता है। और उस अभेद पर्याय में ही विशेषताओं की अपेक्षा से अर्थात् गुणों की अपेक्षा से उसमें (अभेद पर्याय में) ही भेद करके उसे गुणों की पर्याय कहा जाता है। इस कारण कहा जा सकता है कि जितना क्षेत्र द्रव्य का है, वह और उतना ही क्षेत्र गुणों का है तथा वह और उतना ही क्षेत्र पर्याय का है, इसीलिये द्रव्य-पर्याय को व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कहा जाता है।

जिनागम में उपलब्ध पर्याय के प्रदेशभेद सम्बन्धी कथन पर लेखकने स्वयं प्रश्नोत्तर उठाकर जो स्पष्टीकरण किया है, वह इस प्रकार है।

यहां किसी को प्रश्न होता है कि तो द्रव्य और पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं- ऐसा किस प्रकार कहा जा सकता है।

उत्तर- भेद विवक्षा में जब अंक अभेद-अखंड द्रव्य में भेद उत्पन्न करके समझाया जाता है, तब द्रव्य और पर्याय, ऐसे वस्तु के 'दो भावों' को स्वयंतुष्टय की अपेक्षा से ऐसा कहा जा सकता है कि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं परन्तु वास्तव में वहां कुछ भिन्नता ही नहीं है।

इस प्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय की अर्थात् वस्तु व्यवस्था की सही समझ अनिवार्य है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप एवं विषय:-

वर्तमान भुमुक्षुवर्ग में यह विषय 'द्रष्टि का विषय' के रूप में अह्युच्यते है। पूज्य गुरुदेवश्री कान्ठस्वामी की सातिशय वाणी में इस महान सत्य का उद्घाटन इस पंचम काल की आश्चर्यकारी

घटना है; इसमें निश्चित ही कोई सन्देह नहीं है; तथापि यह भी कम आश्चर्य नहीं है कि गुरुदेवश्री के द्वारा अत्यन्त स्पष्टरूप से एवं जिनागम के आलोक में स्वानुभवपूर्वक प्रतिपादित इस विषय के प्रति भ्रान्त धारणायें भी कम नहीं हैं। पूर्व में कथित द्रव्य-गुण-पर्याय आदि विषयों में द्रव्य-पर्याय अथवा द्रव्य-गुण रूप दो भावों को दो भाग समझ लेने की भूल एवं गौणता को सर्वथा समझ लेने की महान भूल का भयंकर परिणाम यह हुआ कि द्रष्टि के विषय की उपरोक्त-अभिप्राय पूर्वक की समझ एवं यर्था-वार्ता से द्रष्टि का विषय द्रष्टि में आया ही नहीं। इसलिये लेखक ने जिनागम के आलोक में इस विषय का जो स्पष्टीकरण किया, उसे आत्महित के लक्ष्य से विचारणीय है।

उक्त सम्पूर्णा विषय का सारभूत तात्पर्य इस प्रकार है-

भेदज्ञान से (प्रज्ञाछैनी से) अर्थात् ज्ञव और पुद्गल के बीच भेदज्ञान से अर्थात् ज्ञव के लक्षण से ज्ञव को ग्रहण करना और पुद्गल के लक्षण से पुद्गल को और फिर उनमें प्रज्ञाक्षपी छैनी से भेदज्ञान करने से शुद्धात्मा प्रगट होता है, वह इस प्रकार की प्रथम तो प्रगट में आत्मा के लक्षण से अर्थात् ज्ञानरूप देखने-जानने के लक्षण से आत्मा को ग्रहण करते ही पुद्गलमात्र के साथ भेदज्ञान हो जाता है और फिर उससे आगे बढ़ने पर ज्ञव के जो चार भाव हैं अर्थात् उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, और क्षायिकभाव-ये चार भाव कर्म की अपेक्षा से कहे हैं और कर्म पुद्गलरूप ही होते हैं इसलिये इन चार भावों को भी पुद्गल के भावों में गणित, प्रज्ञाक्षपी बुद्धि से अर्थात् इन चार भावों को ज्ञव में से 'गौण' करते ही जो ज्ञव भाव शेष रहता है, उसे ही परमपारिणामिकभाव, शुद्धात्मा....., स्वभावभाव, सङ्ग ज्ञानरूपी साम्राज्य, शुद्ध चैतन्यभाव....., कारण समयसार, कारण परमात्मा, नित्यशुद्ध निरंजन ज्ञानस्वरूप, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणामता असा, चैतन्य सामान्यरूप, चैतन्य अनुविधायी परिणामरूप, सङ्ग गुणमणि की पान, सम्यग्दर्शन का विषय (द्रष्टि का विषय) इत्यादि अनेक नामों से पडयाना जाता है और उसके अनुभव से ही निश्चय सम्यग्दर्शन कडा जाता है... भेदज्ञान की विधि ऐसी है कि जिसमें ज्ञव के चार भावों को गौण किया और जो शुद्धात्म ज्ञवत्व डान्जिर हुआ इस अपेक्षा से उसे कोई 'पर्यायरहित द्रव्य वह द्रष्टि का विषय है' असा

भी कड़ते हैं अर्थात् द्रव्य में से कुछ निकालने का ही नहीं है, मात्र विभावभावों को ही गौण करना है और इसी अपेक्षा से कोई कड़ते हैं कि वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त पूरा द्रव्य वड द्रष्टि का विषय है- कथन कोई भी हो परन्तु व्यवस्था तो यहाँ बतलायी तद्नुसार ही है अर्थात् गौण करने की और मुख्य करने की ही है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है वही उपादेयरूप शुद्धात्मा है और वही सम्यग्दर्शन का विषय है। इसीलिये अर्थात् भेदज्ञान कराने और शुद्धात्मा का अनुभव कराने के लिये ही नियमसार और समयसार जैसे आध्यात्मिक शास्त्रों में उसी की महिमा गायी है... उन शास्त्रों में प्रमाण के विषयरूप आत्मा से जितने भाव पुद्गलाश्रित हैं अर्थात् जितने भाव कर्माश्रित (कर्म की अपेक्षा रखनेवाले) हैं इन भावों को परभावरूप से वर्णन किया है अर्थात् उन्हें स्वांगरूप भावों के रूप में वर्णन किया है कि जो भाव लेय हैं अर्थात् 'मैंपना' करनेयोग्य नहीं हैं।

सम्यक्त्व-पूर्व की भावभूमि-

यद्यपि सम्यग्दर्शन आत्मा की शुद्धात्मानुभूतिपूर्वक की प्रतीतिरूप शुद्धदशा है, जिसके लिये अनिवार्यरूप भूमिका तत्त्वविचार एवं भेदज्ञान है; तथापि जिस ज्ञान को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की अभिलाषा है, भावना है, उसके राग की दिशा भी कोई अलग प्रकार की होती है। बले ही अभी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई है, तथापि सम्यक्त्व-प्राप्ति की भावभूमि में समागत ज्ञान को, सम्यग्दर्शन के लिये अनुकूल निमित्तरूप वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के साथ-साथ देशनालब्धि प्रदाता ज्ञानी धर्मात्मा के प्रति भी परमात्मातुल्य अर्पणता का परिणाम उद्भवित होता है; वही परिणाम सम्यग्दर्शन होने पर उनकी समीचीन पहिचान पूर्वक सम्यक् अथवा व्यवहार सम्यग्दर्शन नाम प्राप्त करता है।

इसी प्रकार मध, मांस, मधु का सेवन एवं रात्रिभोजन जैसे तीव्र राग की गृहता के परिणाम भी इस भूमिका में सम्भव नहीं है। यद्यपि व्रतरूप रात्रिभोजनादि (कृत-कारित-अनुमोदना एवं मन-वचन-कायरूप नवकोटि से त्यागरूप) व्रत प्रतिमा एवं रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा में होता है; तथापि जैन कुलाचार के रूप में भी जिनका सेवन निषिद्ध है- ऐसा त्याग तो सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये उत्कृष्टत ज्ञान को ही जता है, क्योंकि उसकी भावभूमि

धतनी कोमल न ढो तो कठोर भावभूमि में तत्त्वविचार ढी सम्भव नहीं है. अवं तत्त्वविचार के बिना सम्यग्दर्शन को अवकाश कहां?

धस सम्बन्ध में यह तर्क उढाया जाता है कि मढावीर भगवान के ञुव को शेर की पर्याय में मांस भक्षण करते हुअे अवं अंजन योर ञैसे पापी को भी सम्यग्दर्शन ढो गया था, तब ढम पर ढी ये प्रतिबन्ध क्यों?

धसका सीधा समाधान यह है कि भाई! शेर की पर्याय में सम्यग्दर्शन से पूर्व उस ञुव की विशुद्धता की धारा का परिज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है, ञब उसने ढो मुनिरात्रों को आकाशमार्ग से अपनी ओर आते ढेभा तो टकटकी लगाकर उनकी ओर ढेभता रहा, वहीं से उसके परिणामों में विशुद्धता की धारा प्रारम्भ हुई, साथ ढी यह भी उल्लेखनीय है कि मुनिरात्रों के उपदेश अवं अपने स्वसन्मुख पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन ञैसी लोकोत्तर उपलब्धि ढो ञने के पश्चात् उस सिंढ के ञुव ने आञुवन भोजन का परित्याग कर ढिया क्योंकि सिंढ ञैसी पर्याय में मांसाहार ढी उसका आध ढोता है. धस ओर ढमारा ध्यान क्यों नहीं जाता?

धसी तरह अंजन योर को अपने ञुवन में प्रथम बार ढी तत्त्वज्ञान की उपलब्धि का अवसर प्राप्त हुआ और उसने तत्क्षण उसका सद्दुपयोग करके स्वलक्ष्मी पुरुषार्थ से कल्पतरु सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया. ढम तो तत्त्वज्ञान का श्रवण-मनन-अध्ययन-चिन्तवन करनेवाले ढोकर भी अंजन योर के उढाहरण को अपनी स्वच्छन्दता के लिये कवय के रूप में प्रयोग कर रहे हैं. ढमें अंजन योर के अप्रतिहत पुरुषार्थ की महिमा आने के बल्लय उसके ञुवन से यह ग्रहण करने का भाव आवे कि अंजन योर ञैसा व्यक्ति भी ञब सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है तो ढम भी पूरे ञुवन अनीति, अन्याय अवं अनाचार ञैसे ढुर्गुणों से लिप्त रहकर अन्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर लेंगे तो यह ढमारा ढिवास्वप्न ढी समञ्जना चालिअे, क्योंकि ढमने अनाचारों को ञिनवाणी के छल से पोषण किया है ञे ढमारी मानसिक स्थिति को चित्रित करता है- अेसी कुटिल भावभूमि में ञब तत्त्वविचार का भी अवसर नहीं है तब सम्यक्त्व की प्राप्ति तो कहां सम्भव है.

सम्यक्त्व के लिये अनिवार्य भावविशुद्धि की चर्या भी प्रस्तुत पुस्तक में की गयी है. ञिसे सभी साधर्मीञ्जनों को ञुवन में अपनाने योग्य है.

વર્તમાન દિગમ્બર જૈન મુમુક્ષુ સમાજ મેં પ્રચલિત ઇસ દ્રષ્ટિ કે વિષય સે સમ્બન્ધિત પર્યાપ્ત પ્રમેય આત્માર્થીજનોં કો ઇસ પુસ્તક મેં સહજરૂપ સે ઉપલબ્ધ હો રહા હૈ જિસે એકમાત્ર આત્મહિત કી દ્રષ્ટિ સે બારમ્બાર વિચાર કરકે આત્મકલ્યાણ કે માર્ગ મેં આગે બઢના ચાહિએ.

ઇસ મહત્વપૂર્ણ કૃતિ કા લેખન, વર્તમાન મેં પ્રચલિત અનેક ભ્રામક ધારણાઓં કે સમ્યક્ નિરાકરણ કી પવિત્ર ભાવના સે, જિનાગમ કે આલોક મેં શ્રીમાન્ જયેશભાઈ શેઠ, મુમ્બઈને કિયા હૈ; જો ઉનકે અન્તરંગ મેં વ્યાપ્ત જિનશાસન કી ભક્તિ કો ઉજગર કરતા હૈ. યદિ આત્માર્થીજન ઇસે આત્મહિત કી દ્રષ્ટિ સે અધ્યયન કરેંગે તો ઉન્હેં અનેક સમાધાન સહજ હી ઇસ એક કૃતિ મેં પ્રાપ્ત હો જાએંગે. નિશ્ચિત હી શ્રી જયેશભાઈ કી યહ ખોજપૂર્ણ કૃતિ મુમુક્ષુ જગત કે લિએ એક એસા ઉપહાર હૈ, જિસકે આલોક મેં પરમપૂજ્ય વીતરાગી સન્તોં એવં પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કે હૃદય કા મર્મ સમજ જ સકતા હૈ. પ્રત્યેક આત્માર્થી ઇસકા અધ્યયન કર અવશ્ય લાભ લે-એસા વિનમ્ર અનુરોધ હૈ.

ઇસ ભાવપૂર્ણ લેખન કે લિએ ભાઈશ્રી જયેશભાઈ શેઠ, મુમ્બઈ પ્રશંસા કે પાત્ર હૈં એવં ઇસ કાર્ય મેં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન કે લિએ ભાઈશ્રી શૈલેષભાઈ કે યોગદાન કો ભી નહીં નકારા જ સકતા. ઇન્હીં કે સત્પ્રયત્નોં સે યહ પ્રમેય આપ તક પહુંચ રહા હૈ. ઇસ પુસ્તક મેં પ્રસ્તાવના કે લિએ ઉક્ત દોનોં સાધર્મિયોં ને મુજે અવસર પ્રદાન કિયા ઇસ કારણ મુજે ભી ઇસ વિષય પર ગહરાઈ સે અધ્યયન-મનન એવં ચિન્તવન કા અવસર સહજ હી ઉપલબ્ધ હુઆ તદ્દર્થ આભારી હું.

સભી સાધર્મી ઇસ પુસ્તક કા ભરપૂર લાભ લેંગે-ઇસી ભાવના કે સાથ.

બિન્નેલિયાં

જિલા ભીલવાડા (રાજ.)

- દેવેન્દ્રકુમાર જૈન

ૐ શ્રી મહાવીરાય નમઃ

૧

લેખકતા હૃદયોદ્ગારો

પંચ પરમેષ્ઠિભગવંતોને નમસ્કાર કરીને શાસ્ત્ર અને સ્વાનુભૂતિના આધારે બહુજન હિતાય, બહુજન સુખાય સમ્યગ્દર્શન કે જે મોક્ષમાર્ગનો દરવાજો છે તેનો વિષય (દ્રષ્ટિનો વિષય) અર્થાત્ શેની ભાવના ભાવવાથી સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે તે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન માટે ચિંતન-મનનનો વિષય અને તેના સ્પષ્ટિકરણ માટે દ્રવ્યગુણપર્યાયમય સત્ રૂપ વસ્તુ કે જે ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ રૂપ પણ છે તે અને ધ્યાન કે જે કેવળજ્ઞાન, કેવળદર્શન અને મુક્તિનું કારણ છે તેના વિશે વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ સહિત સમજાવવાનો પ્રયાસ અમે આ પુસ્તકમાં કરેલ છે. આ કાળમાં દ્રવ્યાનુયોગ, જૈન ધર્મમાં ગૌણ થઈ ગયેલ નિશ્ચયનયનું મહત્વ અને દ્રષ્ટિના વિષય જેવાં સૂક્ષ્મ વિષય ઉપર પ્રકાશ પાથરનારા એવા પૂજ્ય ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીનો સર્વેજનો ઉપર બહુ મોટો ઉપકાર છે.

મને નાની ઉંમરથી જ સત્યની શોધ હતી અને તેને માટે સર્વ દર્શનનો અભ્યાસ કર્યો અને અંતે જૈન દર્શનના અભ્યાસ પશ્ચાત ૧૯૯૯માં ૩૮ વર્ષની ઉંમરે મને સત્યની પ્રાપ્તિ થઈ અર્થાત્ તેનો અનુભવ/ સાક્ષાત્કાર થયો. તદ્પશ્ચાત જૈન શાસ્ત્રોનો પુનઃ પુનઃ સ્વાધ્યાય કરતાં અનેક વખત સત્યનો અર્થાત્ શુદ્ધાત્માનો અનુભવ થયો કે જેની રીત આ પુસ્તકમાં શાસ્ત્રોના આધાર સહ સર્વેજનોના લાભાર્થે આપવાનો પ્રયત્ન કરેલ છે.

દરેક જૈન સંપ્રદાયમાં સમ્યગ્દર્શન વિશેના તો અનેક પુસ્તકો છે કે જેમાં સમ્યગ્દર્શનના પ્રકારો, સમ્યગ્દર્શનના ભેદો, પાંચ લબ્ધિઓ, સમ્યગ્દર્શનના પાંચ લક્ષણો, સમ્યગ્દર્શનના આઠ અંગો, સમ્યગ્દર્શનના ૨૫ મળ, વગેરે વિષયો ઉપર વિસ્તારથી વર્ણન છે પરંતુ તેમાં સમ્યગ્દર્શનના વિષય વિશેની ચર્ચા બહુ જ ઓછી જોવામાં આવે છે તેથી અમે તેના ઉપર પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં થોડો પ્રકાશ પાથરવાનો પ્રયાસ કરેલ છે.

અમે કોઈપણ મત-પંથમાં નથી અમે માત્ર આત્મામાં છીએ અર્થાત્ માત્ર આત્મધર્મમાં જ છીએ તેથી કરીને અત્રે અમે કોઈપણ મત-પંથનું મંડન અથવા ખંડન ન કરતાં માત્ર આત્માર્થે જે ઉપયોગી છે તે જ આપવાની કોશિશ કરેલ છે, માટે સર્વેજનોએ તેને તે જ અપેક્ષાએ સમજવું એવી અમારી વિનંતી છે.

અમે આ પુસ્તકમાં જે પણ જણાવેલ છે, તે શાસ્ત્રના આધારે અને અનુભવીને જણાવેલ છે; છતાં પણ કોઈને અમારી વાત તરંગરૂપ લાગતી હોય, તો તેઓએ આ પુસ્તકમાં જણાવેલ વિષયને કોઈપણ શાસ્ત્ર સાથે મેળવી જોવો અથવા તો પોતે અનુભવીને પ્રમાણ કરી જોવો, આ બે સિવાય અન્ય કોઈ પરીક્ષણની રીત નથી. કોઈ પોતાની ધારણા ને અનુકૂળ ન હોવાથી અમને તરંગ માને, તો એમાં અમારું કાંઈ નુકસાન નથી કારણ કે તેનાથી અમારા આનંદની ભરતીમાં કોઈપણ ઉણપ આવવાની નથી, પરંતુ નુકસાન તો માત્ર તરંગ માનવાવાળાનું જ થવાનું છે. છતાં આપને એવું લાગતું હોય કે આપે ધારી રાખેલ છે તે જ સાચું છે, તો આપને અમો કહીએ છીએ કે- આપ આપની ધારણા અનુસાર આત્માનુભૂતિ કરી લો! તો બહુ સરસ, અને જો આપ આપની ધારણા અનુસાર વર્ષો સુધી પ્રયત્ન કર્યા બાદ પણ, ભાવભાસન (તત્ત્વનો નિર્ણય) સુધી પણ ન પહોંચ્યા હો, અને તત્ત્વની ચર્ચા અને વાદ-વિવાદ જ કરતાં રહ્યાં હો, તો આપ, આ પુસ્તકમાં અમે દર્શાવેલ વિષય પર જરૂર વિચાર કરજો; જો આપ વિચાર કરશો તો તત્ત્વનો નિર્ણય તો અચૂક જ થશે એવો અમને વિશ્વાસ છે, માટે આ પુસ્તકમાં જે વિષય જણાવેલ છે તેના ઉપર સર્વેને વિચાર કરવા અમારી વિનંતી છે. અમે કોઈ વાદ-વિવાદમાં પડવા માંગતા નથી, માટે જેને આ વાત ન સમજાય અથવા ન જાય તેઓ અમોને માફ કરે, મિચ્છામિ દુક્કંડં!

આ કાળમાં જૈન સમાજ બે વિભાગમાં વહેંચાઈ ગયેલ છે; જેમાંથી એક વિભાગ એવો છે કે જે માત્ર વ્યવહાર નયને જ માન્ય કરે છે અને માત્ર તેને જ પ્રાધાન્ય આપે છે અને માત્ર તેનાથી જ મોક્ષ માને છે, જ્યારે બીજો વિભાગ એવો છે કે જે માત્ર નિશ્ચય નયને જ માન્ય કરે છે અને માત્ર તેને જ પ્રાધાન્ય આપે છે અને માત્ર તેનાથી જ મોક્ષ માને છે. પરંતુ ખરેખરો મોક્ષમાર્ગ નિશ્ચય-વ્યવહારની યોગ્ય સંધિમાં જ છે કે જે વાત માત્ર કોઈક વિરલા જ જાણે છે; જેમ કે **પુરુષાર્થસિદ્ધિ-ઉપાય** ગાથા ૮માં પણ કહ્યું છે કે- “જે જીવ વ્યવહારનય અને નિશ્ચયનયને વસ્તુસ્વરૂપ વડે યથાર્થપણે જાણીને મધ્યસ્થ થાય છે અર્થાત્ નિશ્ચયનય અને વ્યવહારનયના પક્ષપાતરહિત થાય છે તે જ શિષ્ય ઉપદેશના સંપૂર્ણ ફળને પામે છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પામીને મોક્ષ મેળવે છે).”

જ્યારે સાંપ્રતકાળે (વર્તમાન કાળે) મોટા ભાગનો જૈન સમાજ વ્યવહાર નયને જ પ્રાધાન્ય આપે છે અને નિશ્ચય નયની ધોર અવગણના કરે છે અથવા વિરોધ કરે છે કે જેથી કરી તેવો સમાજ જાણ્યે-અજાણ્યે પણ એકાંતમતરૂપ પરિણામે છે કે જેને ભગવાને પાખંડીનો મત જણાવેલ છે અને જૈન સમાજનો બીજો વર્ગ કે જે નિશ્ચય નયને જ પ્રાધાન્ય આપે છે અને વ્યવહાર નયની ધોર અવગણના કરે છે અથવા વિરોધ કરે છે, તે સમાજ પણ જાણ્યે-અજાણ્યે એકાંતમતરૂપ પરિણામે છે કે જેને પણ ભગવાને પાખંડીનો મત જ જણાવેલ છે. અમે આ પુસ્તકમાં નિશ્ચય-વ્યવહારની યોગ્ય સંધિ સમજાવવાનો પ્રામાણિક પ્રયત્ન કરેલ છે કે જેને સર્વ જૈન સમાજ યોગ્ય રીતે સમજીને આરાધે તો જૈન ધર્મમાં આમૂલ કાન્તિ આવી શકે તેમ છે અને અત્યારે જે એકાંત પ્રરૂપણાઓ ચાલે છે કે જે પાખંડ મતરૂપ છે તે અટકી શકે તેમ છે.

માત્ર વ્યવહાર નયને જ માન્ય કરી અને તેને જ પ્રાધાન્ય આપતું એક ઉદાહરણ છે- સમ્યગ્દર્શનનું સ્વરૂપ; માત્ર વ્યવહાર નયને જ માન્ય કરનારા મોટા ભાગના જૈનો એવું માને છે કે- સમ્યગ્દર્શન એટલે સાત/નવ તત્ત્વોની (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા અથવા સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રની (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા. સમ્યગ્દર્શનની આ વ્યાખ્યા વ્યવહાર નયના પક્ષની છે પરંતુ નિશ્ચય નયના મતે જે એકને અર્થાત્ આત્માને જાણે છે તે જ સર્વને અર્થાત્ સાત/નવ તત્ત્વોને અને સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રને જાણે છે કારણ કે એક આત્માને જાણતાં જ તે જીવ સાચા દેવ તત્ત્વનો અંશે અનુભવ કરે છે અને તેથી જ તે સાચા દેવને અંતરથી ઓળખે છે અને તેમ સાચા દેવને જાણતાં જ અર્થાત્ (સ્વાત્માનુભૂતિ સહિતની) શ્રદ્ધા થતાં જ તે જીવ તેવા દેવ બનવાના માર્ગે ચાલતા સાચા ગુરુને પણ અંતરથી ઓળખે છે અને સાથે-સાથે તે જીવ તેવા દેવ બનવાનો માર્ગ બતાવતા સાચા શાસ્ત્રને પણ ઓળખે છે.

નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનની સાચી વ્યાખ્યા આવી હોવા છતાં વ્યવહારનયના પક્ષવાળાને સમ્યગ્દર્શનની આવી સાચી વ્યાખ્યા માન્ય નથી હોતી અથવા તેઓ આવી વ્યાખ્યાનો જ વિરોધ કરે છે અને તેથી કરીને તેઓ સમ્યગ્દર્શન એટલે સાત/નવ તત્ત્વોની કહેવાતી (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા અથવા સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રની કહેવાતી (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા એટલું જ માનતાં હોઈને તેઓને ‘સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા’ અને ‘સ્વાત્માનુભૂતિ સહિતની શ્રદ્ધા’ વચ્ચેનો ફરક જ ખબર હોતો નથી અથવા ખબર કરવા જ માંગતા નથી; તેથી કરીને તેઓ સમ્યગ્દર્શન કે જે ધર્મનો પાયો છે તેના વિશે જ અજાણ રહીને આખી જિંદગી ક્રિયા-ધર્મ ઉત્તમ રીતે કરવા છતાં પણ સંસારના અંત માટેનો ધર્મ પામતા નથી, જે કરુણા ઉપજાવે તેવી વાત છે.

તેવી જ રીતે જેઓ માત્ર નિશ્ચય નયને જ માન્ય કરી અને તેને જ પ્રાધાન્ય આપે છે તેઓ માત્ર જ્ઞાનની શુષ્ક (કોરી) વાતોમાં જ રહી જાય છે અને આત્માની યોગ્યતા વિશે અથવા માત્ર પાયાના સદાચાર વિશે પણ ઘોર ઉપેક્ષા સેવીને, તેઓ પણ સંસારના અંત માટેના ધર્મથી તો દૂર જ રહે છે અને તદ્દુપરાંત આવા લોકોને પ્રાયઃ સ્વચ્છંદતાના કારણે અર્થાત્ પુણ્યને એકાંતે હેય માનવાના કારણે પુણ્યનો પણ અભાવ હોવાથી ભવના પણ ઠેકાણાં રહેતા નથી, જે વાત પણ અધિક કરુણા ઉપજાવે તેવી જ છે.

તેવી જ રીતે જૈન સમાજમાં એક નાનો વર્ગ એવો પણ છે કે જેઓએ વસ્તુ-વ્યવસ્થાને જ વિકૃત કરી નાખેલ છે; તેઓ દ્રવ્ય અને પર્યાયને એ હદે અલગ માને છે જાણે કે તે બે અલગ દ્રવ્યો ન હોય! તેઓ એક અભેદ દ્રવ્યમાં ઉપજાવીને જણાવેલ ગુણ-પર્યાયને પણ ભિન્ન સમજે છે અર્થાત્ દ્રવ્યનું સમ્યક સ્વરૂપ સમજાવવા દ્રવ્યને અપેક્ષાએ ગુણ અને પર્યાયથી ભિન્ન જણાવેલ છે, તેને તેઓ વાસ્તવિક ભિન્ન સમજે છે; દ્રવ્ય અને પર્યાયને બે ભાવ ન માનતાં તેઓ તેને બે ભાગ રૂપ માનવા સુધીની પ્રરૂપણા કરે છે અને આગળ તેમાં પણ સામાન્ય-વિશેષ એવા બે ભાગની કલ્પના કરે છે. આ રીતે વસ્તુ-વ્યવસ્થાની જ વિકૃત રીતે પ્રરૂપણા કરીને તેઓ પણ સંસારના અંત માટેના ધર્મથી તો દૂર જ રહે છે અને તે ઉપરાંત આવા લોકોને

પણ પ્રાયઃ સ્વચ્છંદના કારણે પુણ્યનો અભાવ હોવાના કારણે ભવના ઠેકાણાં નથી રહેતા, જે વાત પણ અત્યંત કરુણા ઉપજાવે તેવી જ છે.

અત્યારે જૈન સમાજમાં પ્રવર્તતી તત્ત્વ વિશેની આવી ગેરસમજાને દૂર કરવા અમે અમારા આત્માની અનુભૂતિપૂર્વકના વિચારો, શાસ્ત્રના આધાર સહિત આ પુસ્તકમાં પ્રસ્તુત કરીએ છીએ, જેનો વિચાર-ચિંતન-મનન આપ ખુલ્લા મનથી અને ‘સારું તે જ મારું’ અને ‘સાચું તે જ મારું’ એવો અભિગમ અપનાવીને કરશો તો અવશ્ય આપ પણ તત્ત્વની પ્રતીતિ જરૂર કરી શકશો એવો અમને વિશ્વાસ છે. અત્રે અમારા માટે જે અમે સંબોધન વાપરેલ છે તે કોઈ માનવાચક શબ્દ ન સમજવો પરંતુ તેનો અર્થ ત્રિકાળવર્તી આત્માનુભવીઓ છે કારણ કે ત્રિકાળવર્તી આત્માનુભવીઓની સ્વાત્માનુભૂતિ એક સમાન જ હોય છે.

આ પુસ્તક તૈયાર કરવામાં અમે જે જે ગ્રંથોનો આધાર લીધેલ છે, તે માટે અમે તેમના લેખકો એવા આચાર્ય ભગવંતોના, તે ગ્રંથોની ટીકા રચનારાઓના, અનુવાદકોના તથા પ્રકાશકોના હૃદયપૂર્વક આભારી છીએ. દરેક ગ્રંથોની ગાથાનો અન્વયાર્થ અને ભાવાર્થ “ ” માં આપેલ છે. અમને આ પુસ્તક તૈયાર કરવામાં અનેક લોકોએ અલગ-અલગ રીતે સહકાર આપેલ છે, તે સર્વેના અમે ઋણી છીએ; તેથી તે સર્વેનો અમે હૃદયપૂર્વક આભાર માનીએ છીએ અને ખાસ પંડિત શ્રી દેવેન્દ્રકુમાર જૈન (બીજોલીયા) નો પ્રસ્તાવના લખવા માટે હૃદયપૂર્વક આભાર માનીએ છીએ.

અમારા આત્માની અનુભૂતિપૂર્વકના વિચારોને આપ પરીક્ષા કરીને અને અત્રે આપેલ શાસ્ત્રોના આધારથી સ્વીકાર કરીને સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરો કે જેથી આપ પણ ધર્મરૂપ પરિણામો અને મોક્ષમાર્ગ ઉપર અગ્રેસર બની અંતે સિદ્ધત્વને પામો એ જ અભ્યર્થના સહ. પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં જાણ્યે-અજાણ્યે મારાથી કાંઈપણ જિનાજા વિરુદ્ધ લખાયું હોયતો ત્રિવિધે-ત્રિવિધે મારા મિચ્છામિ દુઃકંડ!

મુંબઈ, ૧૬-૦૧-૨૦૧૪.

CA. જયેશ મોહનલાલ શેઠ



૨

પૂર્વભૂમિકા

અનાદિત્થી આપણો આત્મા આ સંસારમાં સમ્યગ્દર્શનના અભાવના કારણે જ રખડે છે અર્થાત્ અનંતા પુદ્ગલપરાવર્તનથી આપણો આત્મા આ સંસારમાં અનંતા દુઃખો સહન કરતો ફરે છે અને તેનું મુખ્ય કારણ છે મિથ્યાત્વ અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનનો અભાવ. આ મિથ્યાત્વ પોતાનો મહાન શત્રુ છે એવું જ્ઞાન ન હોવાને કારણે ઘણાં જીવો અન્ય-અન્ય શત્રુની કલ્પના કરીને આપસમાં લડતાં જણાય છે અને એમાં જ આ અમૂલ્ય જીવન પુરું કરીને પછી અનંત કાળના દુઃખોને આમંત્રણ આપે છે. **પરમાત્મપ્રકાશ-**ત્રિવિધ આત્માધિકાર ગાથા ૬૫માં પણ જણાવેલ છે કે- “આ જગતમાં (IN THE UNIVERSE) એવો કોઈપણ પ્રદેશ નથી કે જ્યાં ચોર્યાસી લાખ જીવાયોનીમાં ઉપજીને, ભેદાભેદ રત્નત્રયના પ્રતિપાદક જિન વચનને પ્રાપ્ત નહિ કરતો આ જીવ અનાદિકાળથી ન ભમ્યો હોય.”

સર્વ આત્મા સ્વભાવથી સુખસ્વરૂપ જ હોવાથી, સુખના જ ઈચ્છુક હોય છે છતાં સાચા સુખની જાણ અથવા અનુભવ ન હોવાને કારણે અનાદિત્થી આપણો આત્મા શારીરિક-ઈન્દ્રિયજન્ય સુખ કે જે ખરેખરું સુખ નથી પરંતુ તે માત્ર સુખાભાસરૂપ જ છે અર્થાત્ તે સુખ દુઃખપૂર્વક જ હોય છે અર્થાત્ તે સુખ ઈન્દ્રિયોના આકુળતારૂપ દુઃખને/વેગને શાંત કરવા જ સેવવામાં આવે છે છતાં તે સુખ અગ્નિમાં ઈંધણરૂપ જ ભાગ ભજવે છે અર્થાત્ તે સુખ ફરી-ફરી તેની ઈચ્છારૂપ દુઃખ જગાડવાનું જ કામ કરે છે અને તે સુખ (ભોગ) ભોગવતાં જે નવા પાપ બંધાય છે તે નવા દુઃખોનું કારણ બને છે અર્થાત્ તેવું સુખ દુઃખપૂર્વક અને દુઃખરૂપક સહિત જ હોય છે, તેની પાછળ જ પાગલ બનીને ભાગ્યો છે. બીજું, શારીરિક-ઈન્દ્રિયજન્ય સુખ ક્ષણિક છે કારણ કે તે સુખ અમુક કાળ પછી નિયમથી જવાવાળું છે અર્થાત્ જીવને આવું સુખ માત્ર ત્રસ પર્યાયમાં જ મળવાયોગ્ય છે કે જે બહુ ઓછા કાળ માટે હોય છે, પછી તે જીવ નિયમથી એકેન્દ્રિયમાં જાય છે કે જ્યાં અનંતકાળ સુધી અનંતદુઃખો ભોગવવા પડે છે, અને એકેન્દ્રિયમાંથી બહાર નીકળવું પણ ભગવાને ચિંતામણિરત્નની પ્રાપ્તિ તુલ્ય દુર્લભ જણાવેલ છે.

જેમ કે **આત્માનુશાસન** ગાથા ૫૧ માં જણાવેલ છે કે- “કાળાનાગ જેવા, પ્રાણનાશ કરવાવાળા એવા એ ભોગની તીવ્ર અભિલાષાથી ભૂત, ભાવિ અને વર્તમાન ભવોને નષ્ટ કરી તું અખંડિત મૃત્યુથી

અનંતવાર મર્યો અને આત્માના સર્વસ્વાધીન સુખનો નાશ કર્યો; મને તો લાગે છે કે- તું અવિવેકી, પરલોક ભયથી રહિત, નિર્દય અને કઠોર પરિણામી છે. કારણ મહાપુરુષોથી નિંદિત વસ્તુનો જ તું અભિલાષી થયો છે. ઘિક્કાર છે એ કામી પુરુષોને કે- જેનું અંતઃકરણ નિરંતર કામ ક્રોધરૂપ મહાગ્રહ (ડાકુ-પિશાચ) ને વશ રહ્યા કરે છે ! એવો પ્રાણી આ જગતમાં શું શું નથી કરતો ? સર્વ કુકર્મ કરે છે.” આગળ **આત્માનુશાસન** ગાથા ૫૪ માં પણ જણાવેલ છે કે- “હે જીવ ! આ અપાર અને અથાહ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતાં કરતાં તેં અનેક યોનિઓ ધારણ કરી, મહાદોષયુક્ત સપ્તધાતુમય મલથી બનેલું એવું તારું આ શરીર છે, ક્રોધાદિ કષાયજન્ય માનસિક અને શારીરિક દુઃખોથી તું નિરંતર પીડિત છે. હીનાચર, અભક્ષ ભક્ષણ અને દુરાચારમાં તું નિમગ્ન થઈ રહ્યો છે અને એમ કરી કરીને તું તારા આત્માને જ નિરંતર ઠગી રહ્યો છે. વળી જરાથી ગ્રસ્ત (ગ્રહાયેલો) છે. મૃત્યુના મુખ વચ્ચે પડ્યો છે. છતાં વ્યર્થ ઉન્મત્ત થઈ રહ્યો છે, એ જ પરમ આશ્ચર્ય છે ! તું આત્મકલ્યાણનો કટ્ટો શત્રુ છે ? અથવા શું અકલ્યાણને વાંચ્યું છે?”

કોઈ માત્ર પુણ્યથી જ મોક્ષ મળશે એવું સમજતા હોય તો **યોગસાર** દોહરા ૧૫માં આચાર્ય ભગવંતે જણાવેલ છે કે- “વળી જો તું પોતાને તો જાણતો નથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન નથી) અને સર્વથા એકલું પુણ્ય જ કરતો રહીશ તો પણ તું વારંવાર સંસારમાં જ ભ્રમણ કરીશ પણ શિવસુખને પામી શકીશ નહિ.” અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન વગર શિવસુખની (મોક્ષની) પ્રાપ્તિ શક્ય જ નથી. આગળ **યોગસાર** દોહરા ૫૩માં પણ આચાર્ય ભગવંતે જણાવે છે કે- “શાસ્ત્ર ભણવા છતાં પણ જેઓ આત્માને જાણતાં નથી (અર્થાત્ જેઓને સમ્યગ્દર્શન નથી) તેઓ પણ જડ છે; તે કારણે આ જીવો નિશ્ચયથી નિર્વાણને પામતા નથી એ વાત સ્પષ્ટ છે.” અર્થાત્ મિથ્યાત્વ (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની ગેરહાજરી) એ અનંત સંસારનું ચાલકબળ છે અર્થાત્ મિથ્યાત્વ એ સર્વે પાપોનો રાજ છે કે જે સમ્યગ્દર્શનથી જ હણાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન નિર્વાણને પામવા માટે અર્થાત્ શાશ્વત્ સુખની પ્રાપ્તિ અર્થે તે પરમ આવશ્યક છે.

તેથીજ **સ્વામિકાર્તિક્યાનુપ્રેક્ષા** ગાથા ૨૯૦ થી ૨૯૬માં જણાવેલ છે કે- આ મનુષ્યગતિ, આર્થખંડ, ઉચ્ચકુળ, ધનવાનપણું, ઈન્દ્રિયોની પરિપૂર્ણતા, નીરોગી શરીર, દીર્ઘાયુ, ભદ્ર પરિણામ, સરળ સ્વભાવ, સાધુ પુરુષોની સંગતિ, સમ્યગ્દર્શન-સત્ શ્રદ્ધાન, ચારિત્ર વગેરે એક એકથી અધિક અધિક દુર્લભ છે. તેમ જ **આત્માનુશાસન** ગાથા ૭૫ માં જણાવેલ છે કે- “મનુષ્ય પ્રાણીની દુર્લભતા અને ઉત્તમતાને લઈને વિધિરૂપ મંત્રીએ તેની અનેક પ્રકારે રક્ષા કરી દુષ્ટ પરિણામી નરકના જીવોને અધો ભાગમાં રાખ્યા- દેવોને ઊર્ધ્વ ભાગમાં રાખ્યા લોકની ચારે તરફ અનેક મહાન અલંઘ્ય સમુદ્ર તથા તેની ચારે તરફ ધનોદ્ધિ, ધન અને તનુ એ નામના ત્રણ પવનથી વીંટી વીસ્તીર્ણ કોટ કરી રાખ્યો અને વચ્ચે પૂર્ણ જતનથી મનુષ્ય પ્રાણીને રાખ્યા....” અને **સ્વામિકાર્તિક્યાનુપ્રેક્ષા** ગાથા ૨૯૭માં પણ જણાવેલ છે કે- “જેમ મહાન

સમુદ્રમાં પડી ગયેલું રત્ન ફરી પામવું દુર્લભ છે તેમ આ મનુષ્યપણું પામવું દુર્લભ છે. -એવો નિશ્ચય કરી હે ભવ્યજીવો ! આ મિથ્યાત્વ અને કષાયને છોડો. એવો શ્રીગુરુઓનો ઉપદેશ છે.” માટે આ અમૂલ્ય-દુર્લભ મનુષ્યજન્મ માત્ર શારીરિક-ઈન્દ્રિયજન્ય સુખ અને તેની પ્રાપ્તિ પાછળ ખર્ચવા જેવો નથી, પરંતુ તેની એક પણ પળને વ્યર્થ ન ગુમાવતાં, માત્રને માત્ર, ત્વરાએ શાશ્વત સુખ એવા આત્મિક સુખની (સમ્યગ્દર્શનની) પ્રાપ્તિ અર્થે જ લગાવવા યોગ્ય છે. અર્થાત્ જો આ ભવ સમ્યગ્દર્શન પામ્યા વગરનો ગયો તો પછી અનંત કાળ સુધી આવો સમ્યગ્દર્શન પામવાને યોગ્ય ભવ મળવો દૂર્લભ જ છે તેથી સર્વે જનોને અમારી વિનંતિ છે કે આપે આપનું વર્તમાન પૂર્ણ જીવન સમ્યગ્દર્શન પામવા માટે જ લગાવવા યોગ્ય છે અને તેથી કરીને જ અમે પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં સમ્યગ્દર્શન પામવા માટે જે વિષયનું મનન-ચિંતન કરી તેમાં જ એકત્વ કરવા યોગ્ય છે તેવો “દ્રષ્ટિનો (સમ્યગ્દર્શનનો) વિષય” જણાવીશું.



૩

સમ્યગ્દર્શન

સમ્યગ્દર્શન એ મોક્ષમાર્ગનો દરવાજો છે, અર્થાત્ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન વગર મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ જ થતો નથી અને મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ વગર આવ્યાબાધ સુખનો માર્ગ પણ સાધ્ય થતો નથી અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ અને પછીના પુરુષાર્થથી જ સિદ્ધત્વ રૂપે માર્ગ ફળ મળે છે અન્યથા નહિ. સમ્યગ્દર્શન વગર ભવકટી પણ થતી નથી કારણ કે સમ્યગ્દર્શન થયા પછી જીવ અર્ધપુદ્ગલ પરાવર્તન કાળથી અધિક સંસારમાં રહેતો નથી, તે અર્ધપુદ્ગલ પરાવર્તન કાળમાં જરૂર સિદ્ધત્વને પામે જ છે કે જે સત્-ચિત્-આનંદસ્વરૂપ શાશ્વત છે. તેથી સમજાય છે કે આ માનવભવમાં જે કાંઈપણ કરવા જેવું હોય તો તે એક માત્ર નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન જ પ્રથમમાં પ્રથમ પ્રાપ્ત કરવા જેવું છે કે જેથી કરીને પોતાને મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ મળે અને પુરુષાર્થ ફોરવતાં આગળ સિદ્ધપદની પ્રાપ્તિ થાય.

અત્રે એ સમજવું આવશ્યક છે કે જે સાચા દેવ-ગુરુ-ધર્મ પ્રત્યે શ્રદ્ધારૂપ અથવા તો નવતત્ત્વની શ્રદ્ધારૂપ સમ્યગ્દર્શન છે તે તો માત્ર વ્યવહારિક (ઉપચારરૂપ) સમ્યગ્દર્શન પણ હોઈ શકે છે કે જે મોક્ષમાર્ગના પ્રવેશ માટે કાર્યકારી ગણાતું નથી કારણ કે નિશ્ચય નયના મતે જે એકને અર્થાત્ આત્માને જાણે છે તે જ સર્વને અર્થાત્ સાત/નવ તત્ત્વોને અને સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રને જાણે છે કારણ કે એક આત્માને જાણતાં જ તે જીવ સાચા દેવ તત્ત્વનો અંશે અનુભવ કરે છે અને તેથી તે સાચા દેવને અંતરથી ઓળખે છે અને તેમ સાચા દેવને જાણતાં જ અર્થાત્ શ્રદ્ધા થતાં જ તે જીવ તેવા દેવ બનવાના માર્ગે ચાલતા સાચા ગુરુને પણ અંતરથી ઓળખે છે અને સાથે-સાથે તે જીવ તેવા દેવ બનવાનો માર્ગ બતાવતા સાચા શાસ્ત્રને પણ ઓળખે છે. આ રીતે સ્વાનુભૂતિ (સ્વની અનુભૂતિ) સહિતનું સમ્યગ્દર્શન અર્થાત્ ભેદજ્ઞાન સહિતનું સમ્યગ્દર્શન જ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે અને તેના વગર મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ પણ શક્ય નથી, તેથી કરીને અત્રે જણાવેલ સમ્યગ્દર્શન તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન જ સમજવું.

બીજું, સમ્યગ્દર્શન માટે જેટલું ભેદજ્ઞાન જરૂરી છે અર્થાત્ પુદ્ગલ અને તેના લક્ષે થતા ભાવોથી આત્માનું ભેદજ્ઞાન જેટલું જરૂરી છે, તેટલી દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયની સમજ આવશ્યક ન હોવાં છતાં, જેમણે તે દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય સ્વરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા અગર તો ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા વિપરીતરૂપે

ધારણ થયેલ હોય તો તેમને માટે અત્રે પ્રથમ દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયરૂપ અને ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા સમ્યક્રૂપે જણાવીએ છીએ તેના ઉપર વિચાર કરવો યોગ્ય છે અને તે જેમ છે તેમ પ્રથમ સ્વીકારવી પરમ આવશ્યક છે કારણ કે જૈન સમાજમાં એક વર્ગ એવો પણ છે કે જેઓએ વસ્તુ-વ્યવસ્થાને જ વિકૃત કરી નાખેલ છે; તેઓ દ્રવ્ય અને પર્યાયને એ હદે અલગ માને છે જાણે કે તે બે અલગ દ્રવ્યો ન હોય ! તેઓ એક અભેદ દ્રવ્યમાં ઉપજીને જણાવેલ ગુણ-પર્યાયને પણ ભિન્ન સમજે છે અર્થાત્ દ્રવ્યનું સમ્યક સ્વરૂપ સમજાવવા દ્રવ્યને અપેક્ષાએ ગુણ અને પર્યાયથી ભિન્ન જણાવેલ છે, તેને તેઓ વાસ્તવિક ભિન્ન સમજે છે; દ્રવ્ય અને પર્યાય ને બે ભાવ ન માનતાં તેઓ તેને બે ભાગ રૂપ માનવા સુધીની પ્રરૂપણા કરે છે અને આગળ તેમાં પણ સામાન્ય-વિશેષ એવા બે ભાગની કલ્પના કરે છે. આ રીતે વસ્તુ-વ્યવસ્થાને જ વિકૃત રીતે ધારણ કરીને અને વિકૃત રીતે પ્રરૂપણા કરીને તેઓ પોતે સંસારના અંત માટેના ધર્મથી તો દૂર રહે જ છે અને તે ઉપરાંત તેઓ જાણ્યે-અજાણ્યે અનેક લોકોને પણ સંસારના અંતથી દૂર રાખે છે જે વાત અત્યંત કરુણા ઉપજાવે તેવી છે, તેથી કરીને અત્રે પ્રથમ અમે વસ્તુ-વ્યવસ્થા ઉપર વિસ્તારથી પ્રકાશ પાથરીએ છીએ.



૪

દ્રવ્ય - ગુણ વ્યવસ્થા

ટૂંકમાં કહેવું હોયતો દ્રવ્ય, તે ગુણોનો સમૂહ છે અને તે દ્રવ્યની વર્તમાન અવસ્થાને પર્યાય કહેવાય છે, જો કોઈને એવો પ્રશ્ન થાય કે ગુણો નો સમૂહ એટલે ઘઉંના કોથળા સમાન કે બીજી કોઈ રીતે? ઉત્તર- તે ઘઉંના કોથળા જેવું નથી અર્થાત્ જેમ કોથળામાં અલગ અલગ ઘઉં છે એવી રીતે દ્રવ્યમાં ગુણો નથી, પરંતુ તે ગુણો દ્રવ્યમાં, સાકરમાં ગળાશની જેમ છે અર્થાત્ દ્રવ્યના તમામ ભાગમાં (ક્ષેત્રમાં) અર્થાત્ પ્રત્યેક પ્રદેશે (પ્રદેશ એટલે ક્ષેત્રનો નાનામાં નાનો અંશ) છે. અર્થાત્ દ્રવ્યના પ્રત્યેક પ્રદેશે, તે દ્રવ્યના તમામ (અનંતાનંત) ગુણો રહેલા છે અને તેને બીજી રીતે એમ કહી શકાય કે એક અખંડ દ્રવ્યમાં રહેલ અનંતાનંત વિશેષતાઓને તે દ્રવ્યના અનંતાનંત ગુણો તરીકે વર્ણવ્યા છે, ઓળખાવ્યા છે. તે સર્વે વિશેષતાઓના સમૂહને દ્રવ્ય (વસ્તુ) તરીકે ઓળખાવેલ છે, તે વસ્તુ (દ્રવ્ય) તો અભેદ-એક જ છે પરંતુ તેની વિશેષતાઓને દર્શાવવાં જ તેમાં ગુણભેદ કરેલ છે અન્યથા ત્યાં કોઈ જ ક્ષેત્રભેદરૂપ ગુણભેદ છે જ નહીં. ત્યાં તો માત્ર એક વસ્તુમાં રહેલ અનંતાનંત વિશેષતાઓને બતાવવાં જ ગુણભેદનો સહારો લીધેલ છે, તે વસ્તુમાં વાસ્તવિક (ખરેખર) કોઈ ભેદ જ નથી કારણ કે વસ્તુ અભેદ જ છે; આથી તેને કથંચિત્ ભેદ-અભેદ રૂપ જણાવેલ છે અર્થાત્ ત્યાં સર્વથા ન તો ભેદ છે અને ન તો અભેદ છે પરંતુ વસ્તુ અપેક્ષાએ અભેદ છે અને ગુણોની અપેક્ષાએ ભેદ છે તેથી તેને કથંચિત્ ભેદ-અભેદ રૂપ જણાવેલ છે. તેનો અર્થ એ છે કે તે વસ્તુમાં એક જ ગુણ છે એવું નથી પરંતુ તે વસ્તુમાં અનંતાનંત વિશેષતાઓ અર્થાત્ ગુણો છે તે અપેક્ષાએ જ ભેદ કહેવાય પરંતુ ત્યાં વસ્તુમાં કોઈ જ વાસ્તવિક ભેદ નથી તે અપેક્ષાએ અભેદ જ કહેવાય. તેથી અભેદનયને જ કાર્યકારી જણાવેલ છે અને ભેદનય માત્ર વસ્તુનું સ્વરૂપ સમજાવવા માટે જણાવેલ ભેદરૂપ વ્યવહાર માત્ર જ છે કારણ કે નિશ્ચયથી વસ્તુ એક અભેદ જ છે.

અત્રે આપણે શ્રી પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની (પં.દેવકીનંદણકૃત હિંદી ટીકાના આધાર ઉપરથી સરળ ગુજરાતી ટીકા અનુવાદક સોમચંદ અમથાલાલ શાહ-પ્રકાશક ભગવાન શ્રી કુંદકુંદ-કલાન જૈનશાસ્ત્રમાળા પુષ્પ-૩૧-આવૃત્તિ-૧) ગાથાઓ પર વિચાર કરીશું:-

ગાથા ૩૧:- અન્વયાર્થ:- “બીજા પક્ષમાં એટલે અખંડ અનેકપ્રદેશી વસ્તુ માનવામાં નિશ્ચયથી જે

ગુણોનું પરિણમન થાય છે, તે દ્રવ્યના સર્વ પ્રદેશોમાં સમાન થાય છે, અને તે ઠીક છે કારણ કે - હલાવેલો એક વાંસ પોતાની બધી પર્વોમાં-એકે એક ગાંઠમાં હાલી જાય છે”આ રીતે દ્રવ્ય અખંડ છે અને સર્વ પ્રદેશોમાં રહેલ સર્વે ગુણો સર્વ પ્રદેશો પરિણમે છે.

ગાથા ૩૯:- અન્વયાર્થ:- “એ ગુણોનો આત્મા જ દ્રવ્ય છે કારણ કે - એ ગુણો દેશથી (દ્રવ્યથી) જુદી સત્તાવાળા નથી. નિશ્ચયથી દેશમાં (દ્રવ્યમાં) વિશેષ (ગુણો) રહેતા નથી પરંતુ એ વિશેષો (ગુણો) દ્વારા જ દેશ (દ્રવ્ય) તેવો ગુણમય જણાય છે”અર્થાત્ ગુણો છે તે જ દ્રવ્ય છે, બીજું કોઈ દ્રવ્ય નથી.

ગાથા ૪૫:- અન્વયાર્થ:- “એટલા માટે આ જ નિર્દોષ છે કે એ નિર્વિશેષ-નિર્ગુણ દ્રવ્યના વિશેષ જ ગુણ કહેવાય છે અને તે પ્રતિક્ષણ કથંચિત્ પરિણમનશીલ છે”

અર્થાત્ દ્રવ્યમાં ગુણો સિવાય કંઈ જ નથી અને તે સર્વે ગુણો ટકતા અને પરિણમતા છે અર્થાત્ જે ટકે છે તે જ ટકીને પરિણમે પણ છે તે કુટસ્થ નથી. કથંચિત્ નો અર્થ એ છે કે- જે ટકે છે તે જ પરિણમે છે માત્ર અપેક્ષાએ ટકતો અને પરિણમતો કહેવાય અર્થાત્ જે ટકે છે તેનો વર્તમાન-તે જ તેનું પરિણમન અને તેમાં કોઈ વાસ્તવિક ભેદ ન હોવાથી તેને કથંચિત્ કહ્યું છે.

ગાથા ૧૦૫:- અન્વયાર્થ:- “પ્રગટ છે અર્થ જેનો એવા ગુણોના લક્ષણ સબંધી પદોનો સારાંશ એ છે કે-સમાન છે પ્રદેશ જેના એવા એક સાથે રહેવાવાળા જે વિશેષો છે તે જ (વિશેષો) જ્ઞાન દ્વારા ભિન્ન કરતાં ક્રમથી શ્રેણીકૃત ગુણ જણાવા”

ભાવાર્થ:- “અનંત ગુણોના સમુદાયનું નામ દ્રવ્ય છે. દ્રવ્યના સંપૂર્ણ પ્રદેશોમાં જેમ એક વિવક્ષિત ગુણ રહે છે તે જ પ્રમાણે દ્રવ્યના બધા ગુણો પણ તે દ્રવ્યના એ જ બધા પ્રદેશોમાં યુગપત્ (એક સાથે) રહે છે. એટલા માટે દ્રવ્યના બધા ગુણો સમાન પ્રદેશવાળા અર્થાત્ અભિન્ન છે. વસ્તુતાએ એમાં કોઈ ભેદ નથી તો પણ શ્રુતજ્ઞાનાન્તર્ગત નયજ્ઞાનથી વિભક્ત (ભિન્નભિન્ન) કરતાં તેની ભિન્નભિન્ન શ્રેણીઓ થઈ જાય છે કારણ કે-વસ્તુમાં ખંડકલ્પના નયજ્ઞાનના કારણથી જ થાય છે.” અર્થાત્ વસ્તુ અભેદ જ છે, તેથી કોઈપણ ભેદની કલ્પના તે નયજ્ઞાન જ છે.

ગાથા ૪૯૧:- અન્વયાર્થ:- “.....એ બધા ગુણોની એક જ સત્તા હોવાથી એ બધાં ગુણોમાં અખંડિતપણું પ્રત્યક્ષપ્રમાણથી સિદ્ધ છે.”

ગાથા ૪૯૨:- અન્વયાર્થ:- “તેથી આ કથન નિર્દોષ છે કે-જે કે ભાવની અપેક્ષાએ સત્ અખંડિત એક છે-તોપણ એ સર્વ કથન વિવક્ષાવશથી છે ‘સર્વથા’ એ જ નયથી નથી.”

ભાવાર્થ:- “તેથી અમારું આ કહેવું બરાબર છે કે-ભાવની અપેક્ષાએ પણ ‘સત્’ એક અને અખંડિત છે, તથા આમ કહેવું એ પણ નયવિશેષની વિવક્ષાથી છે પણ સર્વથા નથી.” અર્થાત્ અભેદ નયથી છે, ભેદ નયથી નહીં.

ગાથા ૧૪૩:- અન્વયાર્થ:- “સત્તા, સત્વ અથવા સત્, સામાન્ય, દ્રવ્ય, અન્વય, વસ્તુ, અર્થ અને વિધિ એ નવ શબ્દો સામાન્યરૂપથી એક દ્રવ્યરૂપ અર્થના જ વાચક છે.”

એટલે જો એમ કહેવામાં આવે કે એક સત્તાના બે સત્ છે કે ત્રણ સત્ છે કે ચાર સત્ છે કે અનંત સત્ છે તો એ કથન ભેદનયની અપેક્ષાએ સમજવું કારણ કે સત્તા અને સત્ એ બંને એકાર્થ વાચક જ છે છતાં ભેદની અપેક્ષાએ એક સત્તાના બે, ત્રણ, ચાર અથવા અનંત ભેદ કરીને ભેદનયે કરી કથન કરી શકાય પરંતુ વાસ્તવમાં (ખરેખર) તો સત્ કહો કે સત્તા કહો તે એક, અભેદ જ છે અર્થાત્ જે પણ ભેદ કર્યા છે તે તો માત્ર વસ્તુ ને સમજવવા માટે જ છે, ભેદરૂપ વ્યવહાર માત્ર જ છે.

ગાથા ૧૪૪:- અન્વયાર્થ:- “અનંતધર્મવાળા એક ધર્મીના વિષયમાં આસ્તિક્યબુદ્ધિ થવી એ જ આ વ્યવહારનયનું ફળ છે.....” અર્થાત્ વ્યવહારરૂપ ભેદ માત્ર આસ્તિક્ય બુદ્ધિ થવા અર્થે જ છે, અન્યથા નહિ.

ભાવાર્થ:- “પૂર્વોક્ત પ્રકારના વ્યવહારને માનવાનું પ્રયોજન આ છે કે- ‘વસ્તુનાં અનંત ધર્મો હોવા છતાં તે એક અખંડ વસ્તુ છે’ એવી પ્રતીતિ કરવી, અર્થાત્ ગુણ-ગુણી અભેદ હોવાથી ગુણોને જાણતાં ગુણીનું સુપ્રતીત (ઓળખાણ) જીવને થાય તો આ વ્યવહારનયનું યથાર્થ ફળ આવ્યું કહેવાય. વ્યવહારના આશ્રયનું ફળ વિકલ્પ-રાગદ્વેષ છે, માટે ભેદનો આશ્રય ન કરતાં અર્થાત્ આ નય દ્વારા કહેલા ગુણના ભેદમાં ન રોકાતાં અભેદદ્રવ્યની પ્રતીતિ કરવી તે આ નયના જ્ઞાનનું ફળ છે, આ ફળ ન આવે તો આ નયજ્ઞાન યથાર્થ નથી.”

ગાથા ૧૩૪-૧૩૫:- અન્વયાર્થ “નિશ્ચયથી વ્યવહારનય અભૂતાર્થ છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન અર્થે અર્થાત્ આત્માની અભેદ અનુભૂતિ અર્થે કાર્યકારી નથી) તેમાં આ કારણ છે કે-અહીં સૂત્રમાં જે દ્રવ્યને ગુણવાળું કહ્યું છે તેનો અર્થ કરવાથી અહીં આગળ ગુણ, જુદા છે દ્રવ્ય, જુદું છે તથા ગુણના યોગથી તે દ્રવ્ય, ગુણવાળું કહેવાય છે એવો અર્થ સિદ્ધ થાય છે (જાણાય છે), પરંતુ તે ઠીક નથી. કારણ કે -ન ગુણ છે, ન દ્રવ્ય છે, ન ઉભય છે, ન એ બંનેનો યોગ છે પરંતુ કેવળ અદ્વેતસત્ (અભેદદ્રવ્ય) છે, તથા એ જ સત્ને ચાહે ગુણ માનો અથવા દ્રવ્ય માનો, પરંતુ તે ભિન્ન નથી અર્થાત્ નિશ્ચયથી અભિન્ન જ છે.”

ભાવાર્થ:- “વ્યવહારનયથી ‘ગુણવદ્દ્રવ્યં’ ગુણવાળાને દ્રવ્ય કહેવાથી એવો બોધ થઈ શકે છે કે -ગુણ અને દ્રવ્ય ભિન્નભિન્ન વસ્તુ છે તથા ગુણના યોગથી દ્રવ્ય, દ્રવ્ય કહેવાય છે, પરંતુ એવો અર્થ ઠીક નથી, કારણ કે -ન ગુણ છે, ન દ્રવ્ય છે, ન બંને છે કે ન બંનેનો યોગ છે પરંતુ નિશ્ચયનયથી કેવળ એક અદ્વેત, અભિન્ન, અખંડ જ સત્ છે તેને જ, ચાહે ગુણ કહો, ચાહે દ્રવ્ય કહો અથવા જે ઇચ્છો તે કહો! સારાંશ-”

ગાથા ૧૩૬:- અન્વયાર્થ:- “તેથી આ ન્યાયથી સિદ્ધ થયું કે-વ્યવહાર નય છે, તો પણ તે

અભૂતાર્થ છે તથા ખરેખર તેનો અનુભવ કરવાવાળા જે મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે તે પણ અહીં ખંડિત થઈ ચૂક્યા.” અર્થાત્ જેઓ દ્રવ્યને અભેદ-અખંડ અનુભવતા નથી, તેઓને નિયમથી ભ્રમયુક્ત મિથ્યાદ્રષ્ટિ માનવા.

ભાવાર્થ:- “વ્યવહારનય, ઉક્ત પ્રકારના ભેદને વિષય કરે છે કારણ કે-વિધિપૂર્વક ભેદ કરવો એ જ ‘વ્યવહાર’ શબ્દનો અર્થ છે, તેથી સિદ્ધ થાય છે કે-વ્યવહારનય અભૂતાર્થ જ છે-પરમાર્થભૂત નથી, તથા ખરેખર તેનો અનુભવ કરવાવાળા મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે તેઓ પણ નષ્ટ થઈ ચૂક્યા (અર્થાત્ તેઓ અનંતસંસારી થઈ ચૂક્યા).-...” અર્થાત્ જેઓ ભેદમાં જ રમતા હોય અને ભેદની જ પ્રરૂપણા કરતાં હોય તેને કદી અભેદ દ્રવ્ય અનુભવમાં જ આવવાનું નથી, તેથી કરી તે મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે- નષ્ટ થઈ ચૂક્યા સમાન છે.

ગાથા ૬૩૭:- અન્વયાર્થ:- “શંકાકાર કહે છે કે-જો એમ કહો તો નિયમથી નિશ્ચયપૂર્વક નિશ્ચયનય જ આદર કરવા યોગ્ય માનવો જોઈએ કારણ કે-અકિંચત્કારી હોવાથી અપરમાર્થભૂત વ્યવહારનયથી શું પ્રયોજન છે? જો એમ કહો તો-”અર્થાત્ શંકાકાર એકાંતે નિશ્ચયનય જ માનવો જોઈએ એમ કહે છે. ઉત્તર-

ગાથા ૬૩૮-૬૩૯:- અન્વયાર્થ:- “એ પ્રમાણે કહેવું ઠીક નથી કારણ કે-અહીં આગળ વિપ્રતિપત્તિ થતાં તથા સંશયની આપત્તિ આવતાં વા વસ્તુનો વિચાર કરવામાં બળપૂર્વક વ્યવહારનય પ્રવૃત્ત થાય છે અથવા જે જ્ઞાન બન્ને નયોને અવલંબન કરવાવાળું છે તે જ પ્રમાણ કહેવાય છે. તેથી પ્રસંગવશ તે વ્યવહારનય કોઈના માટે ઉપરના (ઉપર જણાવેલ) કાર્યો માટે આશ્રય કરવા યોગ્ય છે. પરંતુ સવિકલ્પ જ્ઞાનવાળાઓની માફક નિર્વિકલ્પ જ્ઞાનવાળાઓને તે શ્રેયભૂત નથી.” અર્થાત્ તે મિથ્યાત્વીને તત્ત્વ સમજવા/સમજવવા માટે આશ્રય કરવા યોગ્ય છે પરંતુ સમ્યગ્દ્રષ્ટિઓને અનુભવકાળે તેનો આશ્રય હોતો નથી અર્થાત્ તે શ્રેયભૂત નથી.



૫

દ્રવ્ય - પર્યાય વ્યવસ્થા

દ્રવ્ય અને ગુણની વ્યવસ્થા જ્ઞેઠ, હવે આપણે પર્યાય વિશે વિચાર કરીશું:- ગુણોના સમૂહરૂપ અભેદ દ્રવ્ય (વસ્તુ) છે તો તેમાં પર્યાય ક્યાં રહે છે? ઉત્તર- પર્યાય દ્રવ્યના સર્વભાગમાં (પૂર્ણ ક્ષેત્રમાં) રહે છે કારણ કે ગુણોના સમૂહરૂપ અભેદ દ્રવ્યનો જે વર્તમાન છે અર્થાત્ તેની જે વર્તમાન અવસ્થા છે (પરિણમન છે) તેને જ તે દ્રવ્યની પર્યાય કહેવામાં આવે છે અને તે અભેદ પર્યાયમાં જ વિશેષતાઓની અપેક્ષાથી અર્થાત્ ગુણોની અપેક્ષાએ તેમાં (અભેદ પર્યાયમાં) જ ભેદ કરીને તેને ગુણોની પર્યાય કહેવાય છે. આ કારણે કહી શકાય કે જેટલું ક્ષેત્ર દ્રવ્યનું છે, તે અને તેટલું જ ક્ષેત્ર ગુણોનું છે અને તે અને તેટલું જ ક્ષેત્ર પર્યાયનું પણ છે; આથી જ દ્રવ્ય-પર્યાય ને વ્યાપ્ય-વ્યાપક સંબંધ કહેવાય છે.

આ જ વાત પ્રવચનસાર ગાથા ૧૧૪ માં પણ કહેલ છે કે- “દ્રવ્યાર્થિક (નય) વડે સઘળું (અથાત્ પૂર્ણ દ્રવ્ય) દ્રવ્ય છે; અને વળી પર્યાયાર્થિક (નય) વડે તે (દ્રવ્ય) અન્ય-અન્ય છે, કારણ કે તે કાળે તન્મય હોવાને લીધે (દ્રવ્ય પર્યાયોથી) અનન્ય છે.”

અહીં કોઈને પ્રશ્ન થાય કે તો દ્રવ્ય અને પર્યાયના પ્રદેશો ભિન્ન છે એવું કઈ રીતે કહી શકાય? ઉત્તર- ભેદ વિવક્ષામાં જ્યારે એક અભેદ-અખંડ દ્રવ્યમાં ભેદ ઉપજવીને સમજવવામાં આવે છે ત્યારે દ્રવ્ય અને પર્યાય, એવા વસ્તુના બે ભાવોને સ્વચતુષ્ટયની અપેક્ષાથી એવું કહી શકાય કે બન્નેના પ્રદેશો ભિન્ન છે પરંતુ વાસ્તવમાં (ખરેખર) ત્યાં કાંઈ જ ભિન્નતા નથી, તે બન્ને અભેદ જ છે, તન્મય જ છે અર્થાત્ એક જ આકાશપ્રદેશોને અવગાહીને રહેલ છે. જેમ સ્વામિકાર્તિક્યાનુપ્રેક્ષા ગાથા ૨૭૭માં જણાવેલ છે કે- “વસ્તુ જે કાળે જે સ્વભાવે પરિણમનરૂપ હોય છે તે કાળે તે પરિણામથી તન્મય હોય છે;.....” અને પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ ગાથા ૯માં પણ જણાવેલ છે કે- “તે તે સદ્ભાવપર્યાયોને જે દ્રવે છે-પામે છે, તેને (સર્વજ્ઞો) દ્રવ્ય કહે છે-કે જે સત્તાથી (અર્થાત્ દ્રવ્યથી) અનન્યભૂત છે.”

આ અભેદ પર્યાયને, આકારની અપેક્ષાએ વ્યંજનપર્યાય અથવા દ્રવ્યપર્યાય કહેવાય છે અને તે જ અભેદ પર્યાયને વિશેષતાઓની અપેક્ષાએ ગુણપર્યાય અથવા અર્થપર્યાય પણ કહેવાય છે. અત્રે સમજવાનું એ છે કે જે ગુણોના સમૂહરૂપ દ્રવ્ય છે, તેનો કોઈ ને કોઈ આકાર અવશ્ય હોવાનો અને તેનું કોઈને કોઈ રૂપ અને કાર્ય પણ અવશ્ય હોવાનું જ અર્થાત્ તેમાં જે આકાર છે તેને તે દ્રવ્યની દ્રવ્યપર્યાય અથવા

વ્યંજનપર્યાય કહેવાય છે અને જે તેનું વર્તમાન કાર્ય છે (પરિણામ છે = અવસ્થા છે) તેને તે દ્રવ્યની ગુણપર્યાય અથવા અર્થપર્યાય કહેવાય છે.

જેમ આપણે ઉપર જોયું તેમ ભેદરૂપ વ્યવહાર અભૂતાર્થ છે, તે માત્ર તત્ત્વ સમજવા અથવા સમજાવવા માટે પ્રયોગમાં લેવાય છે અન્યથા તે કાર્યકારી નથી અને વસ્તુનું સ્વરૂપ તો અભેદ જ છે અને તે જ ભૂતાર્થ છે; તેથી સર્વ કથન, અપેક્ષાએ ગ્રહણ કરવું યોગ્ય છે અન્યથા અર્થનો અનર્થ થઈ જાય છે અર્થાત્ તેને જો કોઈ એકાંતે ગ્રહણ કરે અથવા સમજાવે તો તે મિથ્યાદ્રષ્ટિ છે અને તે નષ્ટ થઈ ચૂકેલા છે અર્થાત્ આ મનુષ્યભવ હારી ચૂકેલા છે (ઉપર જણાવેલ ગાથા ૬૩૬ જોવી).

દરેક વસ્તુનું કાર્ય વસ્તુથી અભેદ જ હોય છે અને તેને જ તેનું ઉપાદાનરૂપ પરિણામન કહેવાય છે અને તે કાર્યને અથવા અવસ્થાને, વર્તમાન સમય અપેક્ષાએ વર્તમાન પર્યાય કહેવાય છે; આથી કહેવા માટે એમ કહી શકાય છે કે- પર્યાય દ્રવ્યમાંથી આવે છે અને દ્રવ્યમાં જ જાય છે કારણ કે કોઈપણ દ્રવ્ય (વસ્તુ) નું કાર્ય તેનાથી અભેદ જ હોય છે છતાં ભેદ નયથી આવું કથન કરી શકાય છે પરંતુ તેથી કરીને, તે બન્ને ભિન્ન ભિન્ન છે તેવું નથી, દ્રવ્ય અને પર્યાયને કથંચિત્ ભિન્ન કહેવાય છે તે આ અપેક્ષાએ.

કોઈપણ દ્રવ્ય છે તે નિત્ય છે પરંતુ કુટસ્થ નિત્ય નહિ કારણ કે જો તે વસ્તુનું કોઈપણ કાર્ય જ માનવામાં ન આવે તો તે વસ્તુનો જ અભાવ થઈ જશે, તેથી કરીને દરેક નિત્ય વસ્તુનું, જે વર્તમાન કાર્ય છે તેને જ તેની પર્યાય કહેવામાં આવે છે અને આવી ભૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનની પર્યાયોનો સમૂહ જ દ્રવ્ય (વસ્તુ) છે અર્થાત્ અનુસ્યુતિથી રચાયેલ પર્યાયોનો સમૂહ તે જ દ્રવ્ય છે.

વસ્તુનો સ્વભાવ છે કે તે ટકીને પરિણામે છે તેથી તે વસ્તુમાં એક ટકતોભાવ છે અને એક પરિણામતોભાવ છે, તેમાંથી જે ટકતોભાવ છે તેને નિત્યરૂપ અર્થાત્ દ્રવ્ય કહેવાય છે, ત્રિકાળી ધ્રુવ કહેવાય છે અને જે પરિણામતોભાવ છે તેને પર્યાય કહેવાય છે અર્થાત્ વસ્તુમાં એક ટકતોભાગ અને એક પરિણામતોભાગ એવા બે ભાગ અર્થાત્ વિભાગ નથી. જો એવા કોઈ વિભાગ માનવામાં આવે, તો વસ્તુ એક-અખંડ-અભેદ ન રહેતાં બે-ભિન્ન થઈ જાય અને એક ભાગ કુટસ્થ અર્થાત્ એક દ્રવ્ય કુટસ્થ રૂપ થઈ જાય અને બીજો ભાગ ક્ષણિક અર્થાત્ બીજું દ્રવ્ય ક્ષણિક થઈ જાય અને આમ થતાં, વસ્તુની સિદ્ધિ જ ન થાય. કારણ કે ઉપર જણાવ્યા અનુસાર કોઈ જ દ્રવ્ય તેના કાર્ય વગર કુટસ્થ ન હોય અને કોઈ વસ્તુ ક્ષણિક હોય તો તે વસ્તુનો જ અભાવ થઈ જાય આથી કરીને આવા બે દોષ વસ્તુવ્યવસ્થા ન સમજતાં આવી જશે અને વસ્તુની સિદ્ધિ જ નહિ થાય.

તેથી કરીને પ્રથમ જણાવ્યા અનુસાર વસ્તુનો જે વર્તમાન છે અર્થાત્ તેની જે અવસ્થા છે તેને જ પર્યાય સમજવી અત્યંત આવશ્યક છે અને તે એમ જ છે. અર્થાત્ જ્યારે એમ કહેવામાં આવે કે પર્યાય તો દ્રવ્યમાંથી જ આવે છે અને દ્રવ્યમાં જ જાય છે તો તેવાં કથન ને ઉપર જણાવ્યા અનુસારની અપેક્ષાએ માત્ર 'વ્યવહાર' અર્થાત્ ઉપચાર-કથન માત્ર સમજવું, નહીં કે વાસ્તવિક.

૬

ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ વ્યવસ્થા

હવે ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવથી પણ આ જ ભાવ સમજાવે, જે ઉત્પાદ-વ્યય છે તે પર્યાય છે અને જે ધ્રુવ છે તે દ્રવ્ય છે અર્થાત્ જે દ્રવ્ય છે તે નિત્ય છે અને તેનાથી જ ‘આ તે જ છે’ એવો નિર્ણય થાય છે તેથી તેને જ ધ્રુવભાવ અથવા અપરિણામી ભાવ પણ કહેવાય છે.

જૈન ધર્મમાં ધ્રુવભાવ એ એકાંત અપરિણામી અર્થાત્ કુટસ્થ નથી પરંતુ તે પરિણામનશીલ વસ્તુ છે, જેમ **સ્વામિકાર્તિક્યાનુપ્રેક્ષા** ગાથા ૨૨૬માં જણાવેલ છે કે- “વળી એકાંતસ્વરૂપ દ્રવ્ય છે તે લેશમાત્ર પણ કાર્ય કરતું નથી તથા જે કાર્ય ન કરે તે દ્રવ્ય જ કેવું? તે તો શૂન્યરૂપ જેવું છે.” ભાવાર્થ- “જે અર્થક્રિયારૂપ હોય તેને જ પરમાર્થ વસ્તુ કહી છે પણ જે અર્થક્રિયારૂપ નથી તે તો આકાશના કૂલની માફક શૂન્યરૂપ છે.” અર્થાત્ જે પોતાના કાર્ય સહિતની વસ્તુ છે તેનો જે ટકતો ભાવ છે તે જ ધ્રુવભાવ અથવા અપરિણામીભાવ છે અને તે વસ્તુનું જે કાર્ય છે અર્થાત્ તેનો જે વર્તમાનભાવ અથવા તેની જે વર્તમાન અવસ્થા છે તેને જ તેનો પરિણામતોભાવ કહેવાય છે, તેને જ ઉત્પાદ-વ્યય કહેવાય છે. તે એવી રીતે કે જૂની પર્યાયનો ક્ષય અને નવી પર્યાયનો ઉત્પાદ, આ ઉત્પાદ-વ્યય પણ કોઈ નવી વસ્તુના ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ નથી, તે તો માત્ર એક વસ્તુના (દ્રવ્યના) એક સમય પહેલાંના રૂપનો વ્યય અને વર્તમાન સમયના રૂપનો ઉત્પાદ જ છે અર્થાત્ એક-અભેદ-અખંડ-અભિન્ન વસ્તુનું સમય અપેક્ષાએ કાર્ય (પરિણામન) તે જ તેનો ઉત્પાદ-વ્યય રૂપ પર્યાય કહેવાય છે.

ત્યાં કોઈ વાસ્તવિક ઉત્પાદ-વ્યય અથવા આવવું-જવું નથી પરંતુ વસ્તુ નિત્ય પરિણામતી રહે છે અર્થાત્ અનુસ્યુતિથી રચાયેલ પર્યાયોનો સમૂહ તે જ વસ્તુ અને તેમાં સમય અપેક્ષાએ ઉત્પાદ-વ્યય કહેવાય છે અર્થાત્ તે જ વસ્તુને વર્તમાનથી જોતાં તેને તે દ્રવ્યની વર્તમાન અવસ્થા-પર્યાય કહેવાય છે અર્થાત્ વસ્તુમાં ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ એવા વાસ્તવિક ભેદ ન હોવા છતાં, માત્ર ‘વ્યવહાર’ થી જ, ભેદનયની અપેક્ષાએ તેમ કહેવાય છે; તેનું ફળ માત્ર વસ્તુનું સ્વરૂપ સમજવા પૂરતું જ છે, નહીં કે ભેદમાં જ અટવાઈ પડવા માટે કારણ કે ભેદમાં જ અટકતાં વસ્તુનું અભેદ સ્વરૂપ નહીં પકડાય કે જે સ્વાત્માનુભૂતિ માટે કાર્યકારી છે.

૭

દ્રષ્ટિભેદ ભેદ

વસ્તુમાં સર્વ ભેદો દ્રષ્ટિ અપેક્ષાએ છે નહિ કે વાસ્તવિક, જેમ કે- પ્રમાણદ્રષ્ટિએ જોતાં વસ્તુ દ્રવ્ય-પર્યાયમય છે અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ જ છે જ્યારે તે જ વસ્તુને પર્યાયદ્રષ્ટિથી જોવામાં આવે અર્થાત્ તેને માત્ર તેના વર્તમાન કાર્યથી, તેની વર્તમાન અવસ્થાથી જ જોવામાં આવે તો તે વસ્તુ માત્ર તેટલી જ છે અર્થાત્ પૂર્ણદ્રવ્ય તે વખતે માત્ર વર્તમાન અવસ્થારૂપ જ જણાય છે અર્થાત્ તે વર્તમાન અવસ્થામાં જ પૂર્ણ દ્રવ્ય છુપાયેલ છે કે જે ભાવ સમયસાર ગાથા ૧૩માં દર્શાવવામાં આવેલ છે અર્થાત્ વર્તમાન ત્રિકાળીનું જ બનેલ છે. જેમ **સ્વામિકાર્તિક્યાનુપ્રેક્ષા** ગાથા ૨૬૯માં જણાવેલ છે કે- “જે નય વસ્તુને તેના વિશેષરૂપથી (પર્યાયથી) અવિનાભૂત (અર્થાત્ પર્યાય સહિત દ્રવ્ય નહિ પરંતુ પર્યાય સહિત દ્રવ્યને અર્થાત્) સામાન્યરૂપને નાના પ્રકારની યુક્તિના બળથી (અર્થાત્ પર્યાયને ગૌણ કરીને દ્રવ્યને) સાથે તે દ્રવ્યાર્થિકનય (દ્રવ્યદ્રષ્ટિ) છે.” ભાવાર્થ- “વસ્તુનું સ્વરૂપ સામાન્ય-વિશેષાત્મક છે. વિશેષ વિના સામાન્ય હોતું નથી.....” અને ગાથા ૨૭૦માં પણ જણાવેલ છે કે- “જે નય અનેક પ્રકારે સામાન્યસહિત સર્વ વિશેષને તેના સાધનનું જે લિંગ (ચિન્હ) તેના વશથી સાથે તે પર્યાયાર્થિકનય (પર્યાયદ્રષ્ટિ) છે.” ભાવાર્થ- “સામાન્ય (દ્રવ્ય) સહિત તેના વિશેષોને (પર્યાયોને) હેતુપૂર્વક સાથે (અર્થાત્ દ્રવ્યને ગૌણ કરીને પર્યાયને ગ્રહણ કરે) તે પર્યાયાર્થિકનય (પર્યાયદ્રષ્ટિ) છે.....” અર્થાત્ પૂર્ણ દ્રવ્ય જ્યારે માત્ર વર્તમાન અવસ્થારૂપ-પર્યાયરૂપ જ જણાય છે તેને જ પર્યાયદ્રષ્ટિ કહેવાય છે અને તે વખતે તે વર્તમાન પર્યાયમાં જ પૂર્ણ દ્રવ્ય છુપાયેલ છે.

આથી જો એમ કહેવામાં આવે કે વર્તમાન પર્યાયનો સમ્યગ્દર્શનના વિષયમાં સમાવેશ નથી, તો ત્યાં સમજવું પડશે કે કોઈપણ દ્રવ્યની વર્તમાન પર્યાયનો લોપ થતાં જ, પૂર્ણ દ્રવ્યનો જ લોપ થઈ જશે, ત્યાં વસ્તુનો જ અભાવ થઈ જશે, માટે દ્રષ્ટિના વિષયમાં (સમ્યગ્દર્શનના વિષયમાં) વર્તમાન પર્યાયનો અભાવ ન કરતાં, માત્ર તેમાં રહેલ અશુદ્ધિને (વિભાવભાવને) ગૌણ કરવામાં આવે છે; જે અમે આગળ ઉપર જણાવીશું-સમજવીશું.

તે જ પૂર્ણ વસ્તુને જો દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી જોવામાં આવે તો તે સંપૂર્ણ વસ્તુ માત્ર દ્રવ્યરૂપ જ-ધ્રુવરૂપ જ-

અપરિણામીરૂપ જ જણાય છે, ત્યાં પર્યાય જણાતી જ નથી કારણ કે ત્યારે પર્યાય તે દ્રવ્યમાં અંતર્ભૂત થઈ જાય છે અર્થાત્ પર્યાય ગૌણ થઈ જાય છે અને પૂર્ણ વસ્તુ ધ્રુવરૂપ-દ્રવ્યરૂપ જ જણાય છે તેથી જ દ્રવ્યદ્રષ્ટિ કાર્યકારી છે જે વાત અમે આગળ વિસ્તારથી જણાવીશું.

અત્રે જણાવ્યા અનુસાર દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય અને ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા સમ્યક્રૂપે ન સમજઈ હોય અથવા તો વિપરીતરૂપે ધારણા થઈ હોય તો, સૌ પ્રથમ તેને સમ્યક્રૂપે સમજી લેવી અત્યંત આવશ્યક છે કારણ કે તેના વિના સમ્યગ્દર્શનનો વિષય સમજવો અશક્ય જ છે તેથી હવે આપણે આ જ ભાવો શાસ્ત્રના આધારે પણ દ્રઢ કરીશું.



૮

પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની વસ્તુવ્યવસ્થા દર્શાવતી ગાથાઓ

ગાથા ૬૭:- અન્વયાર્થ:- “..... જ્ઞેમ પરિણમનશીલ આત્મા જ્ઞેકે જ્ઞાનગુણપણાથી અવસ્થિત છે તોપણ જ્ઞાનગુણના તરતમરૂપ પોતાની અપેક્ષાએ અનવસ્થિત છે.”

અર્થાત્ આત્મા (દ્રવ્ય) પરિણમનશીલ છે અને છતાં તેને ટકતાભાવથી = જ્ઞાનગુણથી = જ્ઞાયકભાવથી જ્ઞેવામાં આવે તો તે તેવો ને તેવો જ જણાય છે અર્થાત્ અવસ્થિત છે અને જ્ઞે જ્ઞાનગુણની જ તરતમતારૂપ અવસ્થાથી અર્થાત્ વિકલ્પરૂપ = જ્ઞેયરૂપ અવસ્થાથી જ્ઞેવામાં આવે તો તે તેવો ને તેવો રહેતો નથી અર્થાત્ અનવસ્થિત જણાય છે, આ જ અનુક્રમે દ્રવ્યદ્રષ્ટિ અને પર્યાયદ્રષ્ટિ છે.

ગાથા ૬૮-૬૯:- અન્વયાર્થ:- “જ્ઞે ઉપરના કથન અનુસાર ગુણ-ગુણાંશની (ગુણ-પર્યાયની) કલ્પના ન માનવામાં આવે તો દ્રવ્ય, ગુણાંશની પેઠે નિરંશ થઈ જત અથવા તે દ્રવ્ય, કુટસ્થની માફક નિત્ય થઈ જત પરિણમનશીલ બિલકુલ ન હોત અથવા ક્ષણિક થઈ જત અથવા જ્ઞે તમારો આવો અભિપ્રાય હોય કે-અનંત અભિભાગી ગુણાંશોનું માનવું તો ઠીક છે પરંતુ એ બધા નિરંશઅંશોનું પરિણમન સમાંશ અર્થાત્ એક સરખું હોવું જોઈએ પણ તરતમરૂપ (તીવ્ર-મંદરૂપ) ન હોવું જોઈએ.”

ભાવાર્થ:- “દ્રવ્યાર્થિકનયથી વસ્તુ અવસ્થિત છે તથા પર્યાયાર્થિકનયથી વસ્તુ અનવસ્થિત છે એ પ્રકારની (વસ્તુમાં) પ્રતીતિ હોવાના કારણથી ગુણ-ગુણાંશ કલ્પના સાર્થક છે એવું પહેલાં સિદ્ધ કર્યું છે, હવે એ જ (વસ્તુસ્વરૂપને) દ્રઢ કરવા માટે વ્યતિરેકરૂપથી ઉદાહરણ કરવામાં આવે છે કે -જ્ઞે ગુણગુણાંશ કલ્પના માનવામાં ન આવે તો દ્રવ્યના સ્વરૂપમાં ચાર અનિષ્ટપક્ષો ઉત્પન્ન થવાનો પ્રસંગ આવશે, અને તે આ પ્રમાણે:- ૧) એક ગુણાંશની માફક દ્રવ્યને નિરંશ માનવું પડશે, ૨) દ્રવ્યમાં માત્ર ગુણોનો જ સદ્ભાવ માનવાથી કીલકની માફક તેને કુટસ્થ એટલે અપરિણામી માનવું પડશે, ૩) ગુણો સિવાય માત્ર ગુણાંશકલ્પના જ માનતાં તેને (દ્રવ્યને) ક્ષણિક માનવું પડશે, તથા ૪) ગુણોના અનંત અંશો માનવા છતાં પણ તેનું સમાન પરિણમન માનવું પડશે પણ તરતમઅંશરૂપ નહિ મનાય.”

ગાથા ૭૦:- અન્વયાર્થ:- “ઉપરના ચારેય પક્ષ પણ દોષયુક્ત છે કારણ કે તે પ્રત્યક્ષરૂપથી બાધિત છે. અને એ પ્રત્યક્ષબાધિત એટલા માટે છે કે- એ પક્ષોને સિદ્ધ કરવાવાળું કોઈ પ્રમાણ નથી તથા તેના

સાધક પ્રમાણનો અભાવ એટલા માટે છે કે- એ પક્ષોની સિદ્ધિને માટે આ લોકમાં કોઈ દ્રષ્ટાંત પણ મળી શકતું નથી.”

અર્થાત્ દ્રવ્યને પરિણામી સિદ્ધ કર્યું અને છતાં તેને ટકતાભાવની અપેક્ષાએ અપરિણામી પણ કહેવાય પરંતુ એકાંતે નહિ કારણકે જૈન સિદ્ધાંતમાં અનેકાંતનો જ જય થાય છે નહિ કે એકાંતનો.

ગાથા ૮૩-૮૪:- અન્વયાર્થ:- “જેમ આંખાના ફળમાં સ્પર્શ, રસ, ગંધ અને વર્ણ એ ચારે પુદ્ગલદ્રવ્યના ગુણો પોતપોતાના લક્ષણથી ભિન્ન છે તથા નિશ્ચયથી તે બધા અખંડદેશી (દ્રવ્ય) હોવાથી કોઈપણ પ્રકારે જુદા પણ કરી શકાતા નથી. એટલા માટે જેમ વિશેષરૂપ હોવાના કારણથી પર્યાયદ્રષ્ટિએ (ભેદવિવક્ષાએ) દેશ, દેશાંશ, ગુણ અને ગુણાંશરૂપ સ્વચતુષ્ટય કહી શકાય છે તેમજ સામાન્યરૂપની અપેક્ષાએ અર્થાત્ દ્રવ્યાર્થિકદ્રષ્ટિએ (અભેદ વિવક્ષાએ) એ જ બધા એક આલાપથી એક અખંડ દ્રવ્ય કહી શકાય છે.” અર્થાત્ જે વિશેષ અપેક્ષાએ પર્યાય છે તે જ સામાન્ય અપેક્ષાએ દ્રવ્ય છે, જેમ કે ઉપાદાન પોતે જ કાર્યરૂપે પરિણામે છે એ વાત તો સર્વવિદિત છે તેમાં ઉપાદાન તે જ દ્રવ્ય છે અને કાર્ય છે તે પર્યાય છે તેથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે દ્રવ્ય જ પોતે દ્રવે છે અર્થાત્ પરિણામે છે અને દ્રવ્ય જ પોતે વર્તમાન અવસ્થાની અપેક્ષાએ પર્યાય કહેવાય છે.

જેમ કે માટીનો પિંડ નષ્ટ થઈને માટીના ઘડારૂપ બનવાથી માટીરૂપી દ્રવ્યની એક પર્યાયનો નાશ થયો અને નવી પર્યાયનો ઉત્પાદ થયો પરંતુ બન્નેમાં માટીત્વ (માટીપણું) તો કાયમ જ રહ્યું, નિત્ય જ રહ્યું, તે અપેક્ષાએ કુટસ્થ રહ્યું-અપરિણામી રહ્યું. તે એ રીતે કે માટીરૂપ દ્રવ્ય કોઈ અન્ય દ્રવ્યરૂપે નથી પરિણામી જતું તેથી તેને તે અપેક્ષાએ પણ કુટસ્થ અથવા અપરિણામી કહી શકાય. અને બીજું તે પિંડ અને ઘડામાં માટીપણું એવું ને એવું જ રહે છે. તે અપેક્ષાએ પણ તેને કથંચિત્ કુટસ્થ અથવા કથંચિત્ અપરિણામી કહી શકાય. અન્યથા એકાંતે અપરિણામી કહેતાં તો ત્યાં એક ભાગ અપરિણામી અને એક ભાગમાં પરિણામ એવું કલ્પતા તો દ્રવ્યનો જ નાશ થઈ જાય અને તે દ્રવ્ય દ્રવે પણ નહીં તેથી તેનું કોઈ જ કાર્ય ન માનતાં દ્રવ્યપણાનો જ નાશ થઈ જાય. આ રીતે ઉપાદાનથી કાર્યને ભિન્ન માનતાં આકાશકુસુમવત્, દ્રવ્યનું જ અસ્તિત્વ નહીં રહે અને તેના કાર્યનું પણ અસ્તિત્વ નહિ રહે.

માટે આ જ રીતે સમજવું કે ઉપાદાન પોતે જ કાર્યરૂપે પરિણામેલ છે અને તેથી તે પરિણામમાં પૂર્ણ ઉપાદાન હાજર જ છે અર્થાત્ પરિણામ (કાર્ય) પોતે ઉપાદાનનું જ બનેલ છે અર્થાત્ જે પર્યાય છે તે દ્રવ્યની જ બનેલ છે કારણ કે તે દ્રવ્યનું જ વર્તમાન છે. તેથી જ તેને દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી જ્ઞેતાં, ત્યાં માત્ર દ્રવ્ય જ જણાય છે-ત્રિકાળી ધ્રુવ જ જણાય છે, ત્યાં તેની વર્તમાન અવસ્થા (પર્યાય) ગૌણ થઈ જાય છે અને તેને જ દ્રવ્યદ્રષ્ટિ કહેવાય છે. જ્યારે પર્યાયદ્રષ્ટિમાં, તે જ દ્રવ્યને તેની વર્તમાન અવસ્થાથી અર્થાત્ પર્યાયથી જ જ્ઞેવામાં આવતાં દ્રવ્ય ગૌણ થઈ જાય છે, દ્રવ્ય જણાતું જ નથી, પૂર્ણદ્રવ્ય માત્ર પર્યાયરૂપ

જ ભાસે છે. આવી જ મુખ્ય ગૌણની વ્યવસ્થા છે, આ સિવાય બીજી કોઈ અભાવની વ્યવસ્થા નથી જ કારણ કે અખંડ-અભેદ દ્રવ્યમાં કોઈપણ અંશનો અભાવ ઇચ્છતા પૂર્ણ દ્રવ્યનો જ અભાવ થઈ જાય છે-લોપ થઈ જાય છે; તેથી અભાવ એટલે મુખ્ય-ગૌણ, અન્યથા નહિ.

ગાથા ૮૯:- અન્વયાર્થ:- “જેમ વસ્તુ સ્વતઃસિદ્ધ છે તે જ પ્રમાણે એ સ્વતઃ પરિણામનશીલ પણ છે, એટલા માટે અહીં-એ સત્ નિયમથી ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્યસ્વરૂપ છે.”

ભાવાર્થ:- “જૈનદર્શનમાં જેમ વસ્તુનો સદ્ભાવ સ્વતઃસિદ્ધ માન્યો છે (અર્થાત્ તે વસ્તુ નો ક્યારેય નાશ થતો નથી અને તે અપેક્ષાએ તે ધ્રુવ છે-નિત્ય છે) તેમ જ તેને પરિણામનશીલ પણ માન્યો છે (અર્થાત્ દ્રવ્ય પોતે જ પર્યાયરૂપે પરિણમે છે), માટે સત્ પોતે જ નિયમથી ઉત્પાદસ્થિતિભંગમય છે (અર્થાત્ માટી પોતે જ પિંડપણું છોડીને ઘડારૂપ થાય છે). અર્થાત્ સત્ સ્વતઃસિદ્ધ હોવાથી ધ્રૌવ્યમય અને પરિણામનશીલ હોવાથી ઉત્પાદ-વ્યયમય છે. એ પ્રમાણે પ્રત્યેક વસ્તુ ત્રિતયાત્મક (ઉત્પાદવ્યયધ્રૌવ્યમય) છે.”

અર્થાત્ કોઈ એમ કહે કે જો દ્રવ્યને જ પરિણામરૂપ માનવામાં આવે તો પરિણામના નાશે દ્રવ્યનો પણ નાશ થઈ જશે, તો તેવું નથી, કારણ કે ઉત્પાદ-વ્યય તે દ્રવ્યનો નથી પરંતુ દ્રવ્યની અવસ્થાનો છે અર્થાત્ તે દ્રવ્ય જ પોતે પિંડપણું છોડીને ઘડાપણું ધારણ કરે છે અને ત્યાં પિંડનો વ્યય અને ઘડાનો ઉત્પાદ કહેવાય છે પણ તે બન્નેમાં રહેલ માટીપણાનો નાશ કોઈ કાળે થતો નથી અને તેથી જ તેને ત્રિકાળી ધ્રુવ અથવા અપરિણામી કહેવાય છે, નહિ કે અન્ય કોઈ રીતે.

ગાથા ૯૦:- અન્વયાર્થ:- “પરંતુ એ સત્ પણ પરિણામ વિના ઉત્પાદ, સ્થિતિ, ભંગરૂપ થઈ શકતું નથી કારણ કે -એમ માનતાં જગતમાં અસત્નો જન્મ (આકાશના ફૂલનો જન્મ) અને સત્નો વિનાશ (ઝાડ પરના ફૂલનો વિનાશ) દુર્નિવાર થઈ જશે.”

ભાવાર્થ:- “સત્, કેવળ સ્વતઃસિદ્ધ અને પરિણામનશીલ હોવાના કારણથી જ ઉત્પાદ, સ્થિતિ તથા ભંગમય માનવામાં આવ્યું છે, અર્થાત્ એ ત્રણે અવસ્થાઓ છે, કારણ કે પ્રતિસમય સત્ની અવસ્થાઓમાં ઉત્પાદ, વ્યય, ધ્રૌવ્ય થયા કરે છે પણ કેવલ સત્માં નહિ, તેથી (ભેદનયે) ઉત્પાદ, વ્યય, ધ્રૌવ્યને સત્ના પરિણામ કહેવામાં આવે છે; જો એમ ન માનતાં સત્માં જ ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રૌવ્ય માનવામાં આવે તો અસત્ની ઉત્પત્તિ તથા સત્ના વિનાશનો દુર્નિવાર (નિવારી ન શકાય એવો) પ્રસંગ આવશે.”

ગાથા ૯૧:- અન્વયાર્થ:- “એટલા માટે નિશ્ચયથી દ્રવ્ય કથંચિત્ કોઈ અવસ્થારૂપથી ઉત્પન્ન થાય છે તથા કોઈ અન્ય અવસ્થાથી નષ્ટ થાય છે પરંતુ પરમાર્થપણે (દ્રવ્યાર્થિકનયે) નિશ્ચયથી એ બંને જ નથી અર્થાત્ દ્રવ્ય ન તો ઉત્પન્ન થાય છે તથા ન નષ્ટ થાય છે.”

અર્થાત્ દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી તો તે નિત્ય ત્રિકાળી-ધ્રુવરૂપે જ જાણાય છે તેમાં કોઈ ઉત્પાદ-વ્યય જાણાતા જ નથી કારણ કે તેના ઉપર દ્રષ્ટિ જ નથી, દ્રષ્ટિ કેવળ ત્રિકાળી-ધ્રુવ દ્રવ્ય પર જ છે તેથી ઉત્પાદ, વ્યય ગૌણ થઈ જાય છે અને નિત્યત્વ મુખ્ય થઈ જાય છે, આ જ રીત છે પર્યાયના અભાવની.

ભાવાર્થ:- “તેથી દ્રવ્ય, પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ નવીન નવીન અવસ્થારૂપથી ઉત્પન્ન તથા પૂર્વ પૂર્વ અવસ્થાઓથી નષ્ટ કહેવામાં આવે છે પરંતુ દ્રવ્યાર્થિકનયથી દ્રવ્ય, ન તો નષ્ટ થાય છે અગર ન ઉત્પન્ન થાય છે.” આ ભાવને અપેક્ષાએ ધ્રુવભાવ, અપરિણામી ભાવ પણ કહી શકાય છે પરંતુ એકાંતે નહીં.

ગાથા ૧૦૮:- અન્વયાર્થ:- “જેમનો આ સિદ્ધાંત છે કે જેમ દ્રવ્ય નિત્ય-અનિત્યાત્મક છે તે જ પ્રમાણે ગુણ પણ પોતાના દ્રવ્યથી અભિન્ન હોવાના કારણે નિત્ય-અનિત્યાત્મક છે એમ સમજવું.”

ભાવાર્થ:- “....દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ તે ગુણો પરસ્પરમાં તથા દ્રવ્યથી અભિન્ન જ છે....”

ગાથા ૧૧૦:- અન્વયાર્થ:- “જેમ જ્ઞાન, ઘટના આકારથી પટના આકારરૂપ થવાના કારણે પરિણમનશીલ છે તો શું તેનું જ્ઞાનપણું નષ્ટ થઈ જાય છે? જો તે જ્ઞાનત્વ નષ્ટ થતું નથી, તો તે અપેક્ષાએ નિત્ય કેમ સિદ્ધ નહિ થાય? અર્થાત્ અવશ્ય જ (નિત્ય સિદ્ધ) થશે.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે કોઈ એમ કહે કે જ્ઞાનગુણ તો અકબંધ-કુટસ્થ-અપરિણામી રહે છે અને તેમાંથી જ્ઞાનની પર્યાય નીકળે છે, તો એવી માન્યતાથી તો જ્ઞાનગુણનો જ અભાવ થઈ જશે કારણ કે જ્ઞાનગુણ પરિણમનશીલ છે, અર્થાત્ જ્ઞાનગુણ પોતે કોઈ ને કોઈ કાર્ય વગર રહેતો જ નથી, તે જ્ઞાનગુણ પોતે જ તે કાર્યરૂપે પરિણમે છે, અર્થાત્ સ્વપરને જાણવારૂપે પરિણમે છે અને તે સ્વપરરૂપ પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં જ સામાન્યપણાથી જ્ઞાનગુણ એવો ને એવો જ જાણાય છે તેથી કહેવાય છે કે તે જ્ઞાનપણાનું ઉલ્લંઘન કરતો જ નથી, તે અપેક્ષાએ તેને કુટસ્થ અથવા અપરિણામી કહી શકાય. અન્યથા નહિ.

ભાવાર્થ:- “ઘટને છોડીને પટને અને પટને છોડીને અન્ય પદાર્થને જાણતી વેળા જ્ઞાન પર્યાયાર્થિકનયથી અન્યરૂપ કહેવાતાં છતાં પણ તેનું જ્ઞાનપણું ઉલ્લંઘન કરતું નથી પરંતુ સામાન્યપણાથી (અર્થાત્ તે પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં જે ભાવ રહે તેને જ તેનું સામાન્ય કહેવાય છે અર્થાત્ વિશેષ સામાન્યનું જ બનેલ હોય છે અર્થાત્ પર્યાયરૂપ વિશેષ દ્રવ્યરૂપ સામાન્યનું જ બનેલ હોય છે અર્થાત્ વિશેષને = પર્યાયને ગૌણ કરતાં જ સામાન્ય = દ્રવ્યની અનુભૂતિ થાય છે) નિરંતર “તદેવેદં”-તે જ આ છે. અર્થાત્ આ તે જ જ્ઞાન છે કે જેની પહેલાં તે પર્યાય હતી અને હાલ આ પર્યાય છે (અર્થાત્ જ્ઞાન જ = જ્ઞાનગુણ જ તે પર્યાયરૂપ પરિણમેલ છે). એવી પ્રતીતિ થાય છે, માટે જ્ઞાનત્વસામાન્યની અપેક્ષાએ જ્ઞાન નિત્ય છે. જેમકે-”

ગાથા ૧૧૧:- અન્વયાર્થ:- “તેનું ઉદાહરણ આ છે કે -જેમ નિશ્ચયથી આગ્રહમાં રૂપ નામનો

ગુણ પરિણામન કરતો કરતો હરિતમાંથી પીળો થઇ જાય છે તો શું એટલામાં તેના વર્ણપણાનો નાશ થઇ જાય છે? અર્થાત્ નથી થતો. એટલા માટે તે વર્ણપણું નિત્ય છે.” આવો છે જૈન સિદ્ધાંત નો ત્રિકાળી ધ્રુવ.

ભાવાર્થ:- “...સામાન્યપણે તો વર્ણપણું તો તેનું તે જ છે, એ (વર્ણસામાન્યપણું) કાંઈ નષ્ટ થઇ ગયું નથી, એટલા માટે વર્ણસામાન્યની અપેક્ષાએ તે વર્ણગુણ નિત્ય જ છે.” આ રીતે સામાન્યની અપેક્ષાએ તેને કુટસ્થ અથવા અપરિણામી કહી શકાય અન્યથા નહિં, અન્યથા માનતાં જૈન સિદ્ધાંતની વિરુદ્ધ અર્થાત્ અન્યમતી મિથ્યાત્વરૂપ પરિણામી જશે કે જે અનંતસંસારનું કારણ બનશે.

ગાથા ૧૧૨:- અન્વયાર્થ:- “જેમ વસ્તુ (દ્રવ્ય) પરિણામનશીલ છે તે જ પ્રમાણે ગુણો પણ પરિણામનશીલ છે (અન્યથા માનતાં મિથ્યાત્વનો ઉદ્દય સમજવો) એટલા માટે નિશ્ચયથી ગુણોના પણ ઉત્પાદ-વ્યય બંને થાય છે.”

ભાવાર્થ:- “તેથી જેમ દ્રવ્ય, પરિણામી છે તેમ દ્રવ્યથી અભિન્ન રહેવાવાળાં ગુણો પણ પરિણામી છે, અને તે પરિણામી હોવાથી તેમાં પ્રતિસમય ઉત્પાદ-વ્યય (કોઈ ને કોઈ કાર્ય) પણ થયા જ કરે છે; અને એ યુક્તિથી ગુણોમાં ઉત્પાદ-વ્યય હોવાથી તેને અનિત્ય પણ કહેવામાં આવે છે, સારાંશ કે-”

ગાથા ૧૧૩:- અન્વયાર્થ:- “એટલા માટે જેમ જ્ઞાન નામનો ગુણ સામાન્યરૂપથી નિત્ય છે તથા એ જ પ્રમાણે ઘટને છોડીને પટને જાણતાં, જ્ઞાન નષ્ટ અને ઉત્પન્નરૂપ પણ છે અર્થાત્ અનિત્ય પણ છે.”

અર્થાત્ સમજવાનું એ છે કે જે ઉપાદાન છે અર્થાત્ જે દ્રવ્ય અથવા ગુણ છે તે સ્વયં જ કાર્યરૂપે પરિણામે છે અને તે કાર્ય અપેક્ષાએ તે અનિત્ય છે અને ઉપાદાન અપેક્ષાએ નિત્ય છે, આવું સ્વરૂપ છે નિત્ય-અનિત્યનું, અન્યથા નહિં. જે કોઈ આ સ્વરૂપથી વિપરીત ધારણા સહિત પોતાને સમ્યગ્દ્રષ્ટિ માનતાં હોય અથવા મનાવતા હોય તો તેઓને નિયમથી ભ્રમમાં જ સમજવાં કારણ કે- ભ્રમની પણ શાંતિ અને આનંદ વેદાય છે, તેથી તેવા જીવોને જે અનંત સંસારથી બચવું હોય તો અમારી વિનંતિ છે કે આપ આપની ધારણા સમ્યગ્ કરી લો.

ભાવાર્થ:- “જે સમયે જ્ઞાન ઘટને છોડીને પટને વિષય કરવા લાગે છે તે સમયે પર્યાયાર્થિકદ્રષ્ટિએ ઘટજ્ઞાનનો વ્યય અને પટજ્ઞાનનો ઉત્પાદ થવાથી જ્ઞાનને અનિત્ય કહેવામાં આવે છે. તથા એ જ સમયે પર્યાયાર્થિકનયની ગૌણતા અને દ્રવ્યાયાર્થિકનયની મુખ્યતાએ (સમજવાનું એ છે કે જૈન સિદ્ધાંતની તમામ વાતો મુખ્ય-ગૌણ અપેક્ષાએ જ હોય છે, એકાંતે નહિ. તેથી જેઓ એકાંતના આગ્રહી છે તેઓ ઉપર જણાવ્યાં અનુસાર નિયમથી મિથ્યાત્વી છે, અનંત સંસારી છે, તેથી તેવી ધારણા હોય તો મહેરબાની કરીને, પોતા ઉપર દયા આણી ને ત્વરાએ પોતાની ધારણા ઠીક કરી લેવી અત્યંત આવશ્યક છે) જ્ઞેતાં ઘટજ્ઞાન અને પટજ્ઞાનરૂપ બંને અવસ્થાઓમાં જ્ઞાનપણું સામાન્ય હોવાથી (અર્થાત્ તે અવસ્થાઓ જ્ઞાનગુણની જ બનેલ છે તેથી તે અવસ્થાઓને ગૌણ કરતાં જ અર્થાત્ જ્ઞેયાકારોને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં

જ્ઞાનગુણ સાક્ષાત્ હાજર જ છે તેવી જ રીતે દ્રવ્યમાં પણ અવસ્થાઓને ગૌણ કરતાં જ સાક્ષાત્ દ્રવ્ય હાજર જ છે-પૂર્ણ દ્રવ્ય અવસ્થાઓ રૂપે જ વ્યક્ત થાય છે અને જે સામાન્યરૂપે દ્રવ્ય છે તેને જ અવ્યક્ત કહેવાય છે અને તેથી તે વ્યક્ત, અવ્યક્તનું જ બનેલું છે) જ્ઞાનને ધ્રૌવ્ય અર્થાત્ નિત્ય (આવો છે જૈન સિદ્ધાંત નો ત્રિકાળી ધ્રુવ ભગવાન આત્મા) પણ કહેવામાં આવે છે. (આવું છે જૈન સિદ્ધાંતનું ત્રિકાળી ધ્રુવ-કુટસ્થ-અપરિણામી, અન્યથા નહિ.) એટલા માટે અપેક્ષાવાદથી જ્ઞાનગુણ કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક સિદ્ધ થાય છે, પણ એકાંતવાદથી નહિ.” અર્થાત્ જેઓને એકાંતનો જ આગ્રહ છે તેઓએ પોતા ઉપર દયા આણી ત્વરાએ તે એકાંતનો આગ્રહ-પક્ષ છોડી, યથાર્થ ધારણા કરી લેવી અત્યંત આવશ્યક છે. આ જ વાત આગળ વધુ દ્રઢ થાય છે. જેમ કે-

ગાથા ૧૧૭:- અન્વયાર્થ:- “ગુણો નિત્ય છે તોપણ તે નિશ્ચયથી પોતાના સ્વભાવથી જ પ્રત્યેક સમયે પરિણામન કરતાં રહે છે અને તે પરિણામન પણ એ ગુણોની જ અવસ્થા છે પણ ગુણોની સત્તાથી તેની સત્તા (સત્) કાંઈ ભિન્ન નથી.”

તેથી એક સત્તાના બે, ત્રણ, ચાર... સત્ માનવાવાળા જે અપેક્ષાએ સમજે તો વાંધો નથી પરંતુ સત્ અર્થાત્ સત્તા એક દ્રવ્યની વાસ્તવિક (ખરેખર) અભેદ-અખંડ એક જ હોય છે, ભેદ અપેક્ષાએ એક સત્તાના બે, ત્રણ, ચાર... સત્ કહેવાય પરંતુ તેમ એકાંતે મનાય નહિ.

ભાવાર્થ:- “ગુણોની પ્રતિસમય થવાવાળી અવસ્થાનું નામ જ પર્યાય છે, પર્યાયોની સત્તા (સત્) કંઈ ગુણોથી ભિન્ન નથી માટે દ્રવ્યની માફક એ ગુણો પણ ગુણની દ્રષ્ટિએ નિત્ય તથા પોતાની પર્યાયરૂપ અવસ્થાઓથી ઉત્પન્ન તથા નષ્ટ થવાના કારણથી અનિત્ય કહેવામાં આવે છે.....”

એટલે સમજવાનું એ છે કે જે કોઈ દ્રવ્ય અને પર્યાયના પ્રદેશ ભિન્ન માનતાં હોય તો તેના સ્વચતુષ્ટયની અપેક્ષાએ કહી શકાય પરંતુ વાસ્તવિક પ્રદેશ ભેદ નથી, તેથી એવી એકાંત ધારણા જીવને મિથ્યાદ્રષ્ટિ બનાવે છે. તેથી વિધાન કોઈપણ હોય તો તેની અપેક્ષા સમજીને બોલવું અથવા માનવું, એકાંતે નહિ, અન્યથા આવી વાતો અનેક લોકોના અધ:પતનનું કારણ બને છે; તેથી આવા એકાંત પ્રરૂપણાના આગ્રહી મિથ્યાદ્રષ્ટિઓથી દૂર જ રહેવું આવશ્યક છે, અન્યથા આપ પોતે પણ અનંતસંસારી મિથ્યાદ્રષ્ટિરૂપ અનંત દુ:ખોનું ઘર બનશો.

આ કારણે આવા એકાંત આગ્રહી લોકોને અમારી પ્રાર્થના છે કે આપ કોઈપણ વિધાનની અપેક્ષા સમજ્યા વગર એકાંતે ગ્રહણ કરી, એકાંતનો આગ્રહ ધરી જે જૈનશાસનનું ભલું કરવા ઇચ્છતા હો તો, તે આપની મહાન ભૂલરૂપ જ છે, તે તો જૈનશાસનના અધ:પતનનું જ નિમિત્ત બનશે અને કેટલાય જીવોના અધ:પતનનું કારણ પણ બનશે. અને તે સર્વેના અધ:પતનની જવાબદારી આવા એકાંત પ્રરૂપણા અને એકાંતનો આગ્રહ કરવાવાળાઓની જ છે તેથી તેઓની દશા વિશે વિચારી ને અમોને ખૂબ જ કરુણા ઉપજે છે અને તે જ કારણે અમોને અત્રે આટલું અધિક સ્પષ્ટિકરણ કરવાની જરૂર ઉભી થયેલ છે.

ગાથા ૧૧૯:- અન્વયાર્થ:- “ગુણોને તદ્વસ્થ (અર્થાત્ અપરિણામી-કુટસ્થ), તેના અવસ્થાંતરને પર્યાય તથા બંનેના મધ્યવર્તીને (અર્થાત્ તે બંને મળીને) દ્રવ્ય, એ શંકાકારનું કહેવું ઠીક નથી. કારણ કે જેમ સંપૂર્ણ ગુણની અવસ્થાઓ આપ્રેક્ષિત થઈને અર્થાત્ એક આલાપથી પુનઃ પુનઃ પ્રતિપાદિત થઈને (અનુસ્યુતિથી રચાયેલ પર્યાયોનો પ્રવાહ તે જ દ્રવ્ય) વસ્તુ અર્થાત્ દ્રવ્ય કહેવાય છે. તે જ પ્રમાણે તેની એ અવસ્થાઓથી ભિન્ન (અર્થાત્ પર્યાયોથી ભિન્ન) કોઈપણ ભિન્નસત્તાવાળી વસ્તુ (અર્થાત્ દ્રવ્ય = ધ્રૌવ્ય) કહી શકાતી નથી.”

આનો અર્થ સ્પષ્ટ છે કે જે દ્રવ્ય છે તે જ પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ પર્યાય છે અને જે પર્યાય છે તે જ દ્રવ્યાર્થિકનયની અપેક્ષાએ દ્રવ્ય છે. તે બંને ભિન્ન ન હોવાં છતાં અપેક્ષાએ (પ્રમાણદ્રષ્ટિએ) તેને કથંચિત્ ભિન્ન કહી શકાય છે અને તેથી જ તેના પ્રદેશો પણ અપેક્ષાએ ભિન્ન કહી શકાય છે અન્યથા નહિ, સર્વથા નહિ; વાસ્તવમાં તો ત્યાં કોઈ ભેદ જ નથી, ભેદ રૂપ વ્યવહાર તો માત્ર સમજવવા માટે જ છે, નિશ્ચયનયે તો દ્રવ્ય અભેદ જ છે.

ભાવાર્થ:- “સત્ની સંપૂર્ણ અવસ્થાઓ જ ફરી ફરી પ્રતિપાદિત થઈને વસ્તુ કહેવાય છે (અર્થાત્ સંપૂર્ણ પર્યાયોનો સમૂહ જ વસ્તુ છે, દ્રવ્ય છે), પરંતુ વસ્તુ પોતાની અવસ્થાઓથી કાંઈ ભિન્ન નથી. (અત્રે જેઓ વસ્તુમાં અપરિણામી અને પરિણામ એવા વિભાગો માનતાં હોય તેઓનું નિરાકરણ કરેલ છે અર્થાત્ તેવી માન્યતા મિથ્યાત્વના ઘરની છે) એટલા માટે જેમ ગુણમય દ્રવ્ય હોવાથી દ્રવ્ય અને ગુણોમાં સ્વરૂપભેદ થતો નથી, તે જ પ્રમાણે દ્રવ્યની અવસ્થાઓ જ ગુણની અવસ્થાઓ કહેવાય છે. માટે દ્રવ્ય પણ તેની પર્યાયોથી ભિન્ન નથી (પ્રદેશભેદ નથી), તેથી ગુણને તદ્વસ્થ (અપરિણામી) તથા અવસ્થાંતરોને પર્યાય માની એ બંનેના કોઈ મધ્યવર્તીને જુદું દ્રવ્ય માનવું એ ઠીક નથી. એટલા માટે”

ગાથા ૧૨૦:- અન્વયાર્થ:- “નિયમથી જે ગુણો પરિણામનશીલ હોવાના કારણથી (અત્રે લક્ષમાં લેવું આવશ્યક છે કે ગુણોને નિયમથી પરિણામનશીલ કહ્યા છે તેમાં કોઈ અપવાદ નથી અને બીજું, હોવાના કારણે કહ્યું છે અર્થાત્ તે ત્રણે કાળે તે જ રીતે છે) ઉત્પાદવ્યયમય કહેવાય છે, તે જ ગુણો ટંકોત્કીર્ણ ન્યાયથી(અર્થાત્ તે ગુણો અન્ય ગુણરૂપ થતાં ન હોવાના કારણે) પોતાના સ્વરૂપને કદી પણ ઉલ્લંઘન કરતાં નથી તેથી તે નિત્ય કહેવાય છે.” ટંકોત્કીર્ણનો અર્થ સામાન્યરૂપથી એવોને એવો જ રહે છે એમ લીધેલ છે, કોઈ બીજી રીતે અર્થાત્ અપરિણામી વગેરે રૂપ નહિં.

બીજું અત્રે કોઈ એમ સમજે કે આવી તો પુદ્ગલ દ્રવ્યની વ્યવસ્થા ભલે હો પરંતુ જીવદ્રવ્યની વાત તો નિરાળી જ છે, તો તેઓને અમે જણાવીએ છીએ કે માત્ર પુદ્ગલ દ્રવ્ય જ નહિ, પરંતુ જ એ દ્રવ્યની દ્રવ્યગુણપર્યાયરૂપ અથવા તો ઉત્પાદવ્યયદ્રુવરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા તો એક સમાન જ છે. જે જીવ દ્રવ્યની કોઈ અન્ય વ્યવસ્થા હોત, તો ભગવાને અને આચાર્યભગવંતોએ શાસ્ત્રોમાં જરૂર જણાવી જ હોત, પણ તેવું ન

હોવાથી જ કાંઈ જણાવેલ નથી; તેથી કરીને આવા મિથ્યાત્વરૂપ આગ્રહ ને છોડી વસ્તુવ્યવસ્થા જેમ છે, તેમ જ માનવી આવશ્યક છે અન્યથા તે જીવે અનંતસંસારી, અનંતદુઃખી થવાને જ આમંત્રણ આપેલ છે, કે જેના ઉપરના કરુણાભાવથી જ આ લખાઈ રહ્યું છે.

ભાવાર્થ:- “પરિણમનની અપેક્ષાએ જે ગુણો ઉત્પાદવ્યય યુક્ત કહેવાય છે તે જ ગુણો ગુણત્વસામાન્યની અપેક્ષાએ નિત્ય કહેવાય છે. એ બંને અપેક્ષાઓથી દ્રવ્યથી અભિન્નરૂપ ગુણો પણ ઉત્પાદવ્યય અને ધ્રૌવ્યયુક્ત કહ્યા છે....”

માટીમાં કોઈ ગુણ નાશ થાય છે અને કોઈ ગુણ ઉત્પન્ન થાય છે એવી શંકા વ્યક્ત કરતાં આચાર્ય ભગવંત આગળની ગાથામાં જણાવે છે કે-

ગાથા ૧૨૩:- અન્વયાર્થ:- “એ વિષયમાં આ ઉત્તર ઠીક છે કે એ મૃતિકાનું (માટીનું પાકા વાસણરૂપ થવાનું) એમ થતાં શું તેનું મૃતિકાપણું (માટીપણું), નાશ થઈ જાય છે? જો (તેનું મૃતિકાપણું) નષ્ટ નથી થતું તો તે નિત્યરૂપ કેમ ન હોય?” અર્થાત્ તે અપેક્ષાએ દ્રવ્ય નિત્ય છે, ધ્રુવ છે અન્યથા નહિ.

ભાવાર્થ:- “કાચી માટીને પકાવતાં પ્રથમના માટી સંબંધી (બધા) ગુણો નષ્ટ થઈ નવીન પકવગુણ પેદા થાય છે. આ પ્રમાણે માનવાવાળાને માટે આ ઉત્તર ઠીક કે- મૃતિકાની ઘટાદિ અવસ્થા થતાં, શું તેનું પૃથ્વીપણું-મૃતિકાપણું પણ નષ્ટ થઈ જાય છે? જો તે મૃતિકાપણું નાશ નથી પામતું, તો તે મૃતિકાપણું શું નિત્ય નથી?” અર્થાત્ નિત્ય જ છે, આ અપેક્ષાએ દ્રવ્યને નિત્ય, ધ્રુવ વગેરે કહેવાય છે.

હવે શંકાકાર શંકા કરે છે કે જો દ્રવ્ય અને પર્યાય ને સર્વથા ભિન્ન માનવામાં શો દોષ છે? ઉત્તર-

ગાથા ૧૪૨:- અન્વયાર્થ:- “અથવા અનુ શબ્દ નો અર્થ છે કે-જે વચમાં કદી પણ સ્ખલિત નહિ થવાવાળા પ્રવાહથી (અનુસ્યુતિથી રચાયેલ પર્યાયોનો પ્રવાહ તે જ દ્રવ્ય) વર્તી રહ્યા હોય, તથા ‘અયતિ’ એ ક્રિયાપદ ગતિ અર્થવાળી ‘અય’ ધાતુનું રૂપ છે માટે અવિચ્છિન્ન પ્રવાહરૂપથી જે ગમન કરી રહ્યું છે તે અન્વર્થની અપેક્ષાએ અન્વય શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે.”

ભાવાર્થ:- “....અર્થાત્ જે નિરંતર પોતાની ઉત્તરોત્તર થવાવાળી પર્યાયોમાં ગમન કરે તે દ્રવ્ય છે (અર્થાત્ દ્રવ્ય પર્યાયોમાં જ છુપાયેલ છે). ગતિ ‘અન્વય’ શબ્દ ‘અનુ’ ઉપસર્ગપૂર્વક ગત્યર્થક ‘અય’ ધાતુથી બન્યો છે, દ્રવ્યની આ વ્યુત્પત્તિ અન્વય શબ્દમાં સારી રીતે ઘટી શકે છે. જેમ કે ‘અનુ’ - અવ્યુચ્છિન્ન પ્રવાહરૂપથી જે પોતાની પ્રતિસમય થવાવાળી પર્યાયોમાં બરાબર ‘અયતિ’ એટલે ગમન કરતો હોય તેને અન્વય કહે છે, તેથી અન્વય અને અને દ્રવ્ય એ બંને પર્યાયવાચક શબ્દો છે.” અર્થાત્ પર્યાયોનો જે પ્રવાહરૂપ સમૂહ છે તે જ સત્ છે અને તે જ દ્રવ્ય છે. એટલે જે પર્યાયો છે તેમાં જ દ્રવ્ય છુપાયેલું ગતિ કરે છે અર્થાત્ જે પર્યાય છે તે દ્રવ્યની જ બનેલ છે અને તેથી જ પર્યાયોને વ્યતિરેક = વિશેષ = વ્યક્ત અને દ્રવ્ય ને અન્વયરૂપ = સામાન્ય = અવ્યક્ત કહેવાય છે.

ગાથા ૧૫૯:- અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે નિશ્ચયથી ગુણ સ્વયંસિદ્ધ છે તથા પરિણામી પણ છે, તેથી તે નિત્ય અને અનિત્યરૂપ હોવાથી ભલાપ્રકારે ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રોવ્યાત્મક પણ છે.”

ભાવાર્થ:- “અનાદિસંતાનરૂપથી જે દ્રવ્યની સાથે અનુગમન કરે છે તે ગુણ છે. અહીં ‘અનાદિ’ એ વિશેષણથી સ્વયંસિદ્ધ, ‘સંતાનરૂપ’ એ વિશેષણથી પરિણામનશીલ તથા ‘અનુગતાર્થ’ એ વિશેષણથી નિરંતર દ્રવ્યની સાથે રહેવાવાળા, એવો અર્થ સિદ્ધ થાય છે. સારાંશ એ છે કે- પ્રત્યેક દ્રવ્યના ગુણો સ્વયંસિદ્ધ અને નિરંતર દ્રવ્યની સાથે રહેવાવાળા છે તેથી તો તેને નિત્ય એટલે ધ્રોવ્યાત્મક કહેવામાં આવે છે, તથા પ્રતિસમય પરિણામનશીલ છે તેથી તેને અનિત્ય વા ઉત્પાદવ્યયાત્મક કહેવામાં આવે છે. એ પ્રમાણે સંપૂર્ણ ગુણો ઉત્પાદ, વ્યય અને ધ્રોવ્યાત્મક છે.” આવી છે જૈનસિદ્ધાંતની વસ્તુવ્યવસ્થા.

ગાથા ૧૭૮:- અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે- જેમ દ્રવ્ય નિયમથી સ્વતઃસિદ્ધ છે તે જ પ્રમાણે તે પરિણામનશીલ પણ છે તેથી તે દ્રવ્ય પ્રતિસમય વારંવાર પ્રદીપ (દીપકની) શિખાની માફક પરિણામન કરતું જ રહે છે.”

ભાવાર્થ:- “અર્થાત્- જેમ દ્રવ્ય, સ્વતઃસિદ્ધ હોવાથી નિત્ય-અનાદિઅનંત છે તે જ પ્રમાણે તે પરિણામનશીલ હોવાથી પ્રદીપશિખાની (દીપકની) માફક પ્રતિસમય સદૃશ પરિણામન પણ કરતું જ રહે છે, તેથી તે અનિત્ય પણ છે. અને તેનું તે પરિણામન પૂર્વ-પૂર્વ ભાવના વિનાશપૂર્વક (માટીના પિંડના વિનાશપૂર્વક) તથા ઉત્તર-ઉત્તર ભાવના ઉત્પાદથી (માટીના ઘડાના ઉત્પાદથી) થતું રહે છે તેથી દ્રવ્ય, કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક કહેવામાં આવે છે. [એક જ વસ્તુના બે સ્વભાવ છે, નહીં કે એક વસ્તુના બે ભાગ-એક નિત્ય અને બીજો અનિત્ય- આવું (ભાગરૂપ) માનવાથી મિથ્યાત્વનો દોષ આવે છે] જેમકે જીવ, મનુષ્યથી દેવપર્યાયને પ્રાપ્ત કરતાં દ્રવ્યાર્થિકદ્રષ્ટિએ તેની દરેક પર્યાયોમાં જીવત્વ સદૃશ (સમાન) રહેવા છતાં (અર્થાત્ તે પર્યાયનું સામાન્ય તે જ જીવત્વ અર્થાત્ દ્રવ્ય) પણ પર્યાયાર્થિકદ્રષ્ટિથી દરેક પર્યાયોમાં (તેની એક એક પર્યાયોમાં) તે કથંચિત્ ભિન્નતાને ધારણ કરે છે. એ જ પ્રમાણે પ્રતિસમય થવાવાળા ક્રમમાં પણ દ્રવ્યાર્થિકનયથી સદૃશતા રહેવા છતાં (અર્થાત્ તે ક્રમરૂપ પર્યાયમાં સામાન્યભાવરૂપે દ્રવ્ય હાજર જ છે) પણ પર્યાયાર્થિકનયથી કથંચિત્ વિસદૃશપણું (અન્યથાપણું) પણ જોવામાં આવે છે (અર્થાત્ તે ક્રમમાં થતી પર્યાયમાં વિશેષભાવરૂપે અન્ય-અન્ય ભાવ જોવામાં આવે છે). આ વિષયમાં બીજું દ્રષ્ટાંત ગોરસનું પણ આપવામાં આવે છે જેમ દૂધ, દહીં, મઠો વગેરે દૂધની અવસ્થાઓમાં દ્રવ્યાર્થિકનયથી ગોરસપણાની સદૃશતા રહેવા છતાં પર્યાયાર્થિકનયથી દૂધથી દહીં વગેરે અવસ્થાઓમાં કથંચિત્ વિસદૃશપણું પણ જોવામાં આવે છે. એ પ્રમાણે અનુમાનથી અથવા સ્વાનુભવ પ્રત્યક્ષથી નિત્ય-અનિત્યની પ્રતીતિ થવાથી જો કે ક્રમમાં પણ કથંચિત્ સદૃશતા અને વિસદૃશતા બન્ને હોય છે પરંતુ તેમ છતાં પણ કેવળ તેનો

કાળ સૂક્ષ્મ સમયવર્તી હોવાથી તે ક્રમ પ્રતિસમય લક્ષમાં આવતો નથી, તેથી તેમાં અન્યથાત્વ (“આ તેવું નથી”) અને તથાત્વ (“આ તેવું જ છે”) ની વિવક્ષા જ કરી શકાતી નથી. એવું નથી. ”

જે સમય જ્ઞાન ઘટાકારમાત્ર છે તે સમયે ઘટની જાણવાની યોગ્યતાથી અને જે સમયે લોકાલોકને જાણે છે તે સમયે તેવી યોગ્યતાથી જ્ઞાનગુણમાં કાંઈ વધ-ઘટ થતી નથી માત્ર અગુરુલઘુગુણનું જ તે ફળ સમજવું યોગ્ય છે.

ગાથા ૧૯૩-૧૯૪-૧૯૫:- અન્વયાર્થ:- “શંકાકારનું કહેવું એમ છે કે- એ પ્રમાણે માનતાં પરમાર્થદ્રષ્ટિથી ઘટાકાર અને લોકાકારરૂપ જ્ઞાન એક હોવાથી ઉત્પાદ-વ્યય-દ્રૌવ્ય બની શકશે નહિ અને ન કોઈ કોઈનું ઉપાદાનકારણ તથા ન કોઈ કોઈનું કાર્ય પણ બની શકશે તથા ગુણ પોતાના અંશોથી (પર્યાયથી) ક્રમ (ઓછા) થતાં દુર્બળ અને ઉત્કર્ષ થતાં બળવાન કેમ નહિ થાય? એ પ્રકારથી આવો પણ ઘણો ભારે અને દુર્બળ દોષ આવશે, (ઉત્તર:-)જે એમ કહો તો-એમ કહેવું ઠીક નથી, કારણ કે -દ્રવ્યને પહેલાં સારી રીતે પરિણમનશીલ નિરૂપણ કર્યું છે (સિદ્ધ કર્યું છે) તેથી તેમાં ઉત્પાદ, વ્યય અને દ્રૌવ્ય એ ત્રણે સારી રીતે ઘટી શકે છે. પરંતુ તેથી ઉલટો સર્વથા નિત્ય વા અનિત્ય અર્થ માનવાથી નહિ ઘટે”

અર્થાત્ જે વસ્તુના (દ્રવ્યના) બે ભાગ કલ્પવામાં આવે કે જેમાંનો એક ભાગ સર્વથા નિત્ય માનવામાં આવે અને એક ભાગ સર્વથા અનિત્ય અર્થાત્ નિત્ય અને અનિત્ય ને વસ્તુના ભાવની જગ્યાએ વિભાગ અથવા ભાગરૂપે કલ્પવામાં આવે તો તેમાં ઉત્પાદ, વ્યય, ધ્રુવ ઘટી શકશે નહીં અને તેથી તેવી માન્યતા જૈન સિદ્ધાંત બાહ્ય છે અને મિથ્યાત્વ છે જેથી એવી ધારણા કોઈની હોય તો તે ત્વરાએ સુધારી લેવી જોઈએ, અપેક્ષાએ બધું કહેવાય પણ તેમ એકાંતે મનાય નહિ.

ભાવાર્થ:- “શંકાકારનું કહેવું એમ છે કે- જે અવગાહનગુણની વિચિત્રતાથી દ્રવ્યમાં કેવળ આકારથી આકારાન્તર જ થયા કરે છે તો દ્રવ્યની પૂર્વ-ઉત્તર અવસ્થાઓમાં અભેદતા હોવાના કારણથી તેમાં (અત્રે શંકાકાર દ્રવ્ય-પર્યાય રૂપ વસ્તુને એક અભેદરૂપ-અનુસ્થિતિથી રચિત પ્રવાહરૂપ નથી માનતાં) ઉત્પાદ, વ્યય, દ્રૌવ્ય બની શકશે નહિ તથા કોઈપણ પ્રકારનો કાર્ય-કારણ ભાવ (અત્રે શંકાકાર કાર્ય-કારણ ભાવને ભેદ રૂપ માને છે, ભિન્ન માને છે) જ સિદ્ધ થઈ શકશે નહિ. વળી જે ગુણાંશના તદ્વસ્થ રહેવા છતાં પણ અગુરુલઘુગુણના નિમિત્તથી તેમાં ભૂત્વા-ભવનરૂપ પરિણમન થતું રહે છે (અત્રે શંકાકાર દ્રૌવ્યને/ગુણને અપરિણામી માને છે-તેને અગુરુલઘુગુણના નિમિત્તથી પર્યાય માને છે અને તેમાંથી પર્યાય નીકળે છે કે જે દ્રૌવ્યથી/ગુણથી ભિન્ન છે એવું માને છે) તો આ આપત્તિ આવશે કે -ગુણ પોતાના અંશોથી ક્રમ (ઓછા) થતા દુર્બળ અને પોતાના અંશોથી વધતાં બળવાન શું નહિ થાય?

તેનું સમાધાન-શંકાકારનું ઉપર પ્રમાણે કહેવું ઠીક નથી, કારણ કે અમે પહેલાં જ સ્વતઃસિદ્ધ દ્રવ્યને સારી રીતે પરિણામિ સિદ્ધ કર્યું છે, અર્થાત્ દ્રવ્ય સ્વતઃસિદ્ધ હોવાથી, કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક દ્રવ્યમાં જ ઉત્પાદ, વ્યય, દ્રૌવ્ય ઘટી શકે છે (અર્થાત્ દ્રવ્ય પોતે જ પર્યાયરૂપે પરિણામે છે અને તેથી પર્યાય

દ્રવ્યની જ બનેલ છે અને દ્રવ્ય પર્યાયમાં જ છુપાયેલું છે. અર્થાત્ પર્યાયરૂપ વિશેષ ભાવને ગૌણ કરતાં જ સામાન્યરૂપ દ્રવ્ય અનુભવાય છે), પણ સર્વથા નિત્ય વા અનિત્ય પદાર્થમાં નહિ.

સારાંશ એ છે કે આકારથી આકારાન્તરરૂપ થવાથી ઉત્પાદ, વ્યયની અને વસ્તુતાએ (સામાન્યભાવ અપેક્ષાએ) તદ્વસ્થરૂપ હોવાથી ધ્રોવ્યાંશની (સામાન્યભાવની) સિદ્ધિ થાય છે. તેથી ઉક્ત પ્રકારથી (આવી રીતે) દ્રવ્યને કથંચિત્ નિત્યાનિત્યાત્મક માનવાથી ઉત્પાદાદિકત્રયની તથા કાર્ય-કારણ ભાવની સિદ્ધિ નહિ થાય, એવી શંકા નિરર્થક છે. અહીં દ્રષ્ટાંત-”

ગાથા ૧૯૬:- અન્વયાર્થ:- “જેમ સોનાના અસ્તિત્વમાં જ કુંડલાદિક અવસ્થાઓ ઉત્પન્ન થાય છે, અને એ કુંડલાદિક અવસ્થાઓ થવાથી જ નિયમથી ઉત્પાદાદિક ત્રણે સિદ્ધ થાય છે.” અર્થાત્ દ્રવ્યને પરિણામી માનવાથી જ ઉત્પાદ, વ્યય, ધ્રુવ રૂપ વ્યવસ્થા શક્ય છે અન્યથા નહિ; આવી છે જૈન સિદ્ધાંતની વસ્તુવ્યવસ્થા.

ભાવાર્થ:- “જેમ સુવર્ણના અસ્તિત્વમાં જ તેની કુંડલ-કંકણાદિ અવસ્થાઓ સિદ્ધ થાય છે કારણ કે એ અવસ્થાઓના હોવાથી જ સુવર્ણમાં ઉત્પાદિક થાય છે, અર્થાત્ સુવર્ણનું સુવર્ણપણું દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ તદ્વસ્થ રહેવા છતાં પણ પર્યાયાર્થિકદ્રષ્ટિએ કુંડલ-કંકણાદિના જ ઉત્પાદાદિક થાય છે, પરંતુ જો વાસ્તવિક વિચાર કરવામાં આવે તો એ કુંડલાદિક અવસ્થાઓમાં માત્ર આકારથી આકારાંતર જ છે પણ અસત્ની ઉત્પત્તિ કે સત્નો વિનાશ નથી. એટલે શંકાકારનું ‘કથંચિત્ નિત્યાનિત્યાત્મક પદાર્થમાં ઉત્પાદાદિક નહિ બને’ એ કહેવું યુક્તિ સંગત નથી. વળી કાર્ય-કારણભાવ પણ નીચે પ્રમાણે સિદ્ધ થાય છે-”

ગાથા ૧૯૭:- અન્વયાર્થ:- “એ પ્રક્રિયા અર્થાત્ શૈલીથી જ નિશ્ચયથી કારણ અને કાર્યની સિદ્ધિ પણ સમજી લેવી જોઈએ કારણ કે એ સત્ના જ સત્ અર્થાત્ ધ્રૌવ્ય તથા ઉત્પાદ અને વ્યય એ બંને થાય છે.”

ભાવાર્થ:- “જેવી રીતે કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક પદાર્થોમાં જ ઉત્પાદાદિકત્રય થાય છે પણ સર્વથા નિત્ય કે સર્વથા અનિત્ય પદાર્થોમાં થઈ શકતા નથી, એમ સિદ્ધ કર્યું તેવી રીતે જ પદાર્થોને નિત્ય-અનિત્યાત્મક માનવાથી જ કાર્ય-કારણભાવ પણ સિદ્ધ થઈ શકે છે, પરંતુ સર્વથા નિત્ય વા અનિત્ય પદાર્થોમાં નહિ. કારણ કે સર્વથા નિત્ય પક્ષમાં પરિણામ વિના કાર્ય-કારણભાવ બની શકતો નથી તથા સર્વથા અનિત્ય પક્ષમાં પદાર્થો માત્ર ક્ષણવર્તી ઠરવાથી અને તેનો પ્રતિસમય નિરન્વયનાશ માનવાથી “નિત્ય શક્તિપિંડરૂપ સત્ (દ્રવ્ય) કારણ છે તથા અનિત્ય પરિણામરૂપ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્ય તેનાં કાર્ય છે” એવો કાર્ય-કારણભાવ બની શકતો નથી, તેથી કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક પદાર્થોમાં જ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્ય અને કાર્ય-કારણભાવ સારી રીતે સિદ્ધ થાય છે. કારણ કે નિત્ય-અનિત્યાત્મક પદાર્થોમાં જ સત્ના ઉત્પાદાદિક માનવામાં આવ્યા છે પણ નિરન્વયનાશરૂપ વા કુટસ્થનિત્યમાં નહિ....”

અર્થાત્ દ્રવ્ય અને પર્યાય એ વસ્તુના બે ભાગ છે નહિ કે બે ભાગ અને તેથી જ તેને કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્ય કહેવાય છે અને સર્વથા નિત્ય-અનિત્ય એમ નથી કહેવાતું અથવા મનાતું. તેથી જે કોઈ દ્રવ્યને એકાંતે નિત્ય-અપરિણામી અને પર્યાયને એકાંતે અનિત્ય-પરિણામી માનતાં હોય તેઓનું અત્રે નિરાકરણ કરેલ છે અર્થાત્ એવી જેની ધારણા હોય તેઓને પોતાની ધારણા સુધારી લેવાં વિનંતિ છે.

ગાથા ૨૦૦:- અન્વયાર્થ:- “નિશ્ચયથી ઉત્પાદ-વ્યય-દ્વૌવ્ય એ ત્રણે પર્યાયોમાં થાય છે, પણ સત્ના થતા નથી પરંતુ જે કારણથી એ ઉત્પાદાદિક પર્યાયો જ દ્રવ્ય છે તેથી દ્રવ્ય એ ઉત્પાદાદિકત્રય વાળું કહેવામાં આવે છે.”

અત્રે અંશ-અંશીરૂપ ભેદનયની અપેક્ષાએ ઉત્પાદ-વ્યય-દ્વુવ એ ત્રણેયને ભેદ રૂપ પર્યાય સિદ્ધ કરેલ છે. કારણ કે અંશ-અંશીરૂપ ભેદ ન કરવામાં આવે તો સત્નો નાશ-સત્નો ઉત્પાદ અને સત્નો જ દ્વૌવ્ય એવી વિરુદ્ધતા ઉદભવે માટે ભેદનયે કરી સમજવું છે કે સત્ તો સ્વતઃસિદ્ધ જ હોવા છતાં તે જ ઉત્પાદ-વ્યય-દ્વુવ રૂપ છે અને તેથી ભેદનયે તે ત્રણે તેની પર્યાય કહેવાય છે. ઉત્પાદનું સ્વરૂપ અને તે ઉત્પાદ કોનો થાય (કહેવાય) છે? ઉત્તર-

ગાથા ૨૦૧:- અન્વયાર્થ:- “તદભાવ (”આ તે જ છે”) અને “અતદભાવ (”આ તે નથી”) ને વિષય કરવાવાળા નયની અપેક્ષાએ (અર્થાત્ દ્રવ્યાર્થિકનય અને પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ) સત્ સદભાવ અને અસદભાવથી યુક્ત છે તેથી એ ઉત્પાદાદિકમાં નવિનરૂપથી પરિણત તે સત્ની અવસ્થાનું નામ જ ઉત્પાદ છે.”

અર્થાત્ દ્રવ્યની અવસ્થા બદલાય તેને જ ઉત્પાદ કહ્યો અને પૂર્વ અવસ્થા ને વ્યય. વ્યયનું સ્વરૂપ અને તે કોનો થાય છે? ઉત્તર-

ગાથા ૨૦૨:- અન્વયાર્થ:- “તથા વ્યય પણ સત્નો થતો નથી પરંતુ એ સત્ની અવસ્થાનો નાશ વ્યય કહેવાય છે, તથા પ્રધ્વંસાભાવરૂપ તે વ્યય સત્, પરિણામી હોવાથી સત્નો પણ અવશ્ય કહેવામાં આવ્યો છે.”

અર્થાત્ અપેક્ષાએ કાંઈ પણ કહી શકાય પરંતુ સમજવાનું એ છે કે ઉપાદાનરૂપદ્રવ્ય સ્વયં જ કાર્યરૂપે પરિણમે છે અને તેને જ તેનો ઉત્પાદ કહેવાય છે અને પૂર્વ સમયવર્તી કાર્યને તેનો વ્યય કહેવાય છે અને તે બન્ને કાર્યરૂપ પરિણમેલ જે ઉપાદાનરૂપ દ્રવ્ય છે તે જ દ્વૌવ્ય છે. દ્વૌવ્યનું સ્વરૂપ અને તે કોના થાય છે? ઉત્તર-

ગાથા ૨૦૩:- અન્વયાર્થ:- “પર્યાયાર્થિકનયથી (ભેદવિવક્ષાથી) દ્વૌવ્ય પણ કથંચિત્ સત્નો હોય છે કેવળ સત્નો નહિ એટલા માટે ઉત્પાદ-વ્યયની માફક તે દ્વૌવ્ય પણ સત્નો એક અંશ છે પણ સર્વદેશ નથી.” કારણ કે જો તે સત્નો (દ્રવ્યનો) માનવામાં આવે તો દ્રવ્ય કુટસ્થ/અપરિણામી ગણાય કે જે તે નથી.

ગાથા ૨૦૪:- અન્વયાર્થ:- “અથવા ‘તદભાવથી નાશ ન થવો’ એવું જે ધ્રૌવ્યનું લક્ષણ દર્શાવ્યું છે ત્યાં પણ અર્થાત્ તેનો પણ આ વાસ્તવિક અર્થ છે કે-જે પરિણામ પહેલાં હતા તે તે પરિણામ જ પાછળ થતા રહે છે.”

અર્થાત્ જે દ્રવ્યરૂપ ધ્રૌવ્ય છે તે જ દરેક પર્યાયમાં પોતે જ કાર્યરૂપે પરિણામે છે અને તેમાં રહેલ સદૃશતાથી (સામાન્ય અપેક્ષાએ) તેનો તદભાવથી નાશ ન હોવાથી તેને ધ્રૌવ્ય કહે છે જેમ કે જ્ઞાન આકારાંતરપણું પામવા છતાં પણ જ્ઞાન પણાનો નાશ ન થવાથી તે આકારમાં રહેલ જ્ઞાનને (સામાન્યને) જ ધ્રૌવ્ય કહેવાય છે અર્થાત્ ટંકોત્કીર્ણ કહેવાય છે.

ગાથા ૨૦૫:- અન્વયાર્થ:- “જેમ પુષ્પનો ગંધ એ પરિણામ છે તથા એ ગંધગુણ પરિણામન કરી રહ્યો છે તેથી ગંધ (ગુણ) અપરિણામી નથી તથા નિશ્ચયથી નિર્ગન્ધ અવસ્થાથી પુષ્પ ગંધવાન થયું છે એમ પણ નથી.”

આથી કહી શકાય કે ધ્રૌવ્ય રૂપ દ્રવ્ય/ગુણ પોતે જ પર્યાય રૂપે ઉપજે છે અને ત્યારે જ પૂર્વ પર્યાયનો વ્યય થાય છે તેથી અભેદનયે દ્રવ્યને ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્યરૂપ કહેવાય છે અને ભેદનયથી ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્યરૂપ ત્રણે સત્ની પર્યાય કહેવાય છે, તે ભેદરૂપ પર્યાય છે. એ જ ભાવ આગળ પણ સમજાવે છે.

ગાથા ૨૦૬:- અન્વયાર્થ:- “નિશ્ચયથી સર્વથા નિત્ય કોઈ સત્ છે ગુણ કોઈ છે જ નહિ તથા કેવળ પરિણાતીરૂપ વ્યય તથા ઉત્પાદ એ બન્ને એ સત્થી અતિરિક્ત એટલે ભિન્ન છે, એવી આશંકા પણ ન કરવી જોઈએ, કારણ કે”ભેદનયથી જે ઉપર ભેદરૂપ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્યને પર્યાય તરીકે સમજાવવાથી કોઈને એવી આશંકા ઉપજે કે શું દ્રવ્ય અને પર્યાય ભિન્ન છે? તો કહે છે કે એવી આશંકા પણ ન કરવી જોઈએ.

ગાથા ૨૦૮:- અન્વયાર્થ:- “એમ થતાં સત્ને ભિન્નતાયુક્ત દેશનો પ્રસંગ આવવાથી સત્ એ ન ગુણ ન પરિણામ અર્થાત્ પર્યાય અને ન દ્રવ્યરૂપ સિદ્ધ થઈ શકશે, પરંતુ સર્વ વિવાદગ્રસ્ત થઈ જશે.”

ભાવાર્થ:- “ગુણોને ન માનતાં દ્રવ્યને સર્વથા નિત્ય તથા ઉત્પાદવ્યયને દ્રવ્યથી ભિન્ન કેવળ પરિણાતીરૂપ માનવાથી દ્રવ્ય તથા પર્યાયોને ભિન્ન ભિન્ન પ્રદેશીપણાનો પ્રસંગ આવશે તથા સત્, દ્રવ્ય-ગુણ વા પર્યાયોમાંથી કોઈપણ રૂપે સિદ્ધ થઈ શકશે નહિ અને તેથી સત્, દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયાત્મક ન હોવાથી એ સત્નું પણ શું સ્વરૂપ છે? તે પણ નિશ્ચિત થઈ શકશે નહિ, તેથી દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય અને સત્ પોતે એ બધાંય વિવાદગ્રસ્ત થઈ જશે.” અહીં કહ્યા પ્રમાણે જો કોઈ દ્રવ્યને અપરિણામી અને પર્યાય તેનાથી ભિન્ન (ભિન્ન પ્રદેશી) પરિણામી એવું માનતું હોય તો અત્રે જણાવેલ પહેલો દોષ આવશે. હવે બીજો દોષ જણાવે છે.

ગાથા ૨૦૯:- અન્વયાર્થ:- “તથા અહીં બીજો પણ આ દોષ આવશે કે - જે નિત્ય છે તે નિશ્ચયથી નિત્યરૂપ જ રહેશે તથા જે અનિત્ય છે તે અનિત્ય જ રહેશે. એ પ્રમાણે કોઈપણ વસ્તુમાં અનેક ધર્મત્વ સિદ્ધ થઈ શકશે નહિં. અર્થાત્ વસ્તુ અનેકધર્માત્મક સિદ્ધ થશે નહિં.” હવે ત્રીજો દોષ જણાવે છે.

ગાથા ૨૧૦:- અન્વયાર્થ:- “તથા આ એક દ્રવ્ય છે, આ ગુણ છે અને આ પર્યાય છે એ પ્રકારનો જે કાલ્પનિક ભેદ થાય છે (અર્થાત્ તે ભેદ વાસ્તવિક નથી) તે પણ નિયમથી ભિન્ન દ્રવ્યની માફક બનશે નહિ.” અર્થાત્ જે અભેદ વસ્તુમાં સમજાવવા માટે કાલ્પનિક ભેદ પાડ્યા છે અને તેથી જ તેને કથંચિત્ કહ્યાં છે તેને જે વાસ્તવિક ભેદ સમજાવવામાં આવે તો દ્રવ્ય અને પર્યાય એ બંને ભિન્ન પ્રદેશી, બે દ્રવ્યરૂપ જ બની જતાં ભેદરૂપ વ્યવહાર ન રહેતાં નિયમથી ભિન્ન દ્રવ્યની માફક ભિન્ન પ્રદેશી જ બની જશે અને તેથી દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયરૂપ જે કાલ્પનિક ભેદ થાય છે તેવાં કાલ્પનિક ભેદ બનશે નહિ.

આગળ શંકાકાર નવી શંકા કરે છે-

ગાથા ૨૧૧:- અન્વયાર્થ:- “શંકાકારનું કહેવું એમ છે કે-સમુદ્રની માફક વસ્તુને નિત્ય માનવામાં આવે તથા ગુણ પણ નિત્ય માનવામાં આવે અને પર્યાયો કલ્લોલાદિની માફક ઉત્પન્ન વા નાશ થવાવાળી માનવામાં આવે, જે એમ કહો તો-”અર્થાત્ પદાર્થને સમુદ્ર અને તરંગના ઉદાહરણથી એમ માનવામાં આવે કે- દ્રવ્ય = સમુદ્રનું દળ એકાંતે નિત્ય અને પર્યાય = તરંગ એકાંતે અનિત્ય માનવામાં આવે તો શું હાનિ છે? તેનું સમાધાન-

ગાથા ૨૧૨:- અન્વયાર્થ:- “એમ કહેવું એ ઠીક નથી કારણ કે સમુદ્ર અને લહેરો (મોજા) નું દ્રષ્ટાંત શંકાકારના પ્રકૃત-ઉપરોક્ત અર્થનું જ બાધક છે (ખંડન કરે છે) તથા શંકાકાર દ્વારા નહિ કહેલા પ્રકૃતઅર્થના વિપક્ષભૂત આ વક્ષ્યમાણ (કથન કરતાં) કથંચિત્ નિત્ય-અનિત્યાત્મક અભેદ અર્થનું સાધક છે.”

અત્રે યાદ રાખવું કે અભેદનું સાધક કહ્યું છે અર્થાત્ દ્રવ્ય અભેદ છે તેમાં ભેદ ઉપજાવીને કહેવાય છે, ભિન્ન પ્રદેશરૂપ વાસ્તવિક નહિ અને ખીજું, પ્રસ્તુત ઉદાહરણથી જ અભેદ દ્રવ્ય સાબિત થાય છે કારણ કે જે તરંગ = કલ્લોલ છે તે સમુદ્રના જ બનેલા છે અર્થાત્ તે સમુદ્ર જ તે રૂપે પરિણામેલ છે અર્થાત્ તે સમુદ્ર જ છે; આવું અભેદ સ્વરૂપ છે દ્રવ્યનું.

ભાવાર્થ:- “શંકાકારના કથનાનુસાર ગુણોને અને વસ્તુને (દ્રવ્યને) સર્વથા નિત્ય તથા ઉત્પાદ-વ્યયને સર્વથા અનિત્ય માનવા ઠીક નથી, કારણ કે -એ સિદ્ધાંતને સિદ્ધ કરવા માટે જે સમુદ્ર અને કલ્લોલોનું દ્રષ્ટાંત આપ્યું તે શંકાકારના ઉપર કહેલા પક્ષનું સાધક ન થતાં વિના કહ્યે જ ઉપરોક્ત પક્ષના (શંકાકારના પક્ષના) વિપક્ષનું એટલે-જૈન સિદ્ધાંતાનુસાર માનેલા કથંચિત્ અભેદાત્મક પક્ષનું સાધક છે, આગળ એ જ અર્થનો ખુલાસો કરે છે-”

અથવા કોઈ દ્રવ્યને ઘંટીની જેવું સમજતું હોય, જેમ કે -ઘંટીમાં નીચેનો ભાગ સ્થિર અને ઉપરનો ભાગ ફરતો હોય છે, તો દ્રવ્યમાં જૈન સિદ્ધાંતાનુસાર આવી વ્યવસ્થા પણ નથી એ પણ આ ગાથાથી સિદ્ધ થાય છે.

ગાથા ૨૧૩:- અન્વયાર્થ:- “તરંગમાળાઓથી વ્યામ સમુદ્રની માફક નિશ્ચયથી કોઈપણ ગુણના પરિણામોથી અર્થાત્ પર્યાયોથી સત્ની અભિન્નતા હોવાથી તે સત્નો પોતાના પરિણામોથી કાંઈપણ ભેદ નથી.”

અર્થાત્ જે પર્યાય છે તે દ્રવ્યનું વર્તમાન જ હોવાથી દ્રવ્યનું જ બનેલ હોવાથી (તરંગમાં સમુદ્ર જ હોવાથી) વાસ્તવમાં (ખરેખર) કોઈ ભેદ નથી પણ ભેદનયથી ભેદ કહેવામાં આવે છે, તેથી તેને કથંચિત્ ભેદાભેદ પણ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- “કારણ કે-જેવી રીતે તરંગોના સમૂહોને છોડતાં સમુદ્ર કોઈ ભિન્ન વસ્તુ સિદ્ધ થઈ શકતો નથી તેવી રીતે પોતાના ત્રિકાલવર્તી પરિણામોને છોડતાં ગુણ તથા દ્રવ્ય પણ કોઈ ભિન્ન વસ્તુ સિદ્ધ થઈ શકતા નથી.” અર્થાત્ પર્યાયમાં જ દ્રવ્ય છૂપાયેલ છે, દ્રવ્ય પર્યાયથી વાસ્તવિક ભિન્ન પ્રદેશી નથી.

ગાથા ૨૧૪:- અન્વયાર્થ:- “પરંતુ જે સમુદ્ર છે તે જ તરંગમાળાઓ થાય છે, કારણ કે તે સમુદ્ર પોતે જ તરંગરૂપથી પરિણમન કરે છે.” અર્થાત્ દ્રવ્ય જ (અવ્યક્ત જ) પર્યાયરૂપે (વ્યક્તરૂપે) વ્યક્ત થાય છે, પરિણમન કરે છે.

ગાથા ૨૧૫:- અન્વયાર્થ:- “તેથી સત્ એ પોતે જ ઉત્પાદ છે, તથા એ સત્ જ ધ્રૌવ્ય છે તથા વ્યય પણ છે કારણ કે -સત્ (દ્રવ્ય) થી જુદું કોઈ એ ઉત્પાદ અથવા વ્યય અથવા ધ્રૌવ્ય કોઈ નથી.”

દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય અને ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્યરૂપ વ્યવસ્થા સમજવા માટે આ ગાથાનો મર્મ સમજવો અત્યંત આવશ્યક છે કે- વાસ્તવમાં દ્રવ્ય અભેદ છે, ભેદ માત્ર સમજવવા માટે જ છે, વ્યવહાર માત્ર જ છે.

ગાથા ૨૧૬:- અન્વયાર્થ:- “અથવા શુદ્ધતાને વિષય કરવાવાળા નયની અપેક્ષાએ ઉત્પાદ પણ નથી, વ્યય પણ નથી તથા ધ્રૌવ્ય, ગુણ અને પર્યાય એ પણ નથી પરંતુ કેવળ એક સત્ જ છે.”

અર્થાત્ શુદ્ધનયથી એક માત્ર પંચમભાવરૂપ = પરમપારિણામિકભાવ રૂપ સત્ જ છે, તે તેવું ને તેવું જ પરિણમે છે જે આપણે આગળ જોઈશું.

ભાવાર્થ:- “અથવા શુદ્ધ દ્રવ્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ ઉત્પાદ, વ્યય, ધ્રૌવ્ય, ગુણ અને પર્યાય વગેરે કાંઈ પણ નથી. કેવળ સર્વના સમુદાયરૂપ એક સત્ જ પદાર્થ છે, (આ કથન વાસ્તવિકતા રૂપ = અભેદનયનું છે અને તે જ કાર્યકારી છે માટે ભેદરૂપ વ્યવહારમાં રમવા જેવું નથી પરંતુ અભેદરૂપ વસ્તુમાં જ ઠરવા જેવું છે જે આપણે આગળ ઉપર જોઈશું) કારણ કે -જેટલી કોઈ ભેદવિવક્ષા છે તે બધી પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાથી જ કલ્પિત કરવામાં આવે છે.(અર્થાત્ વાસ્તવિક સ્વરૂપ તો માત્ર અભેદ જ છે બાકી બધી માત્ર કલ્પના જ છે) શુદ્ધ દ્રવ્યાયાર્થિકનય, કોઈપણ પ્રકારના ભેદને વિષય કરતો નથી તેથી શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયથી નિરંતર સર્વ અવસ્થાઓમાં સત્ જ પ્રતીતિમાન થાય છે (અર્થાત્ સર્વ અવસ્થાઓમાં

= પર્યાયમાં એક માત્ર પંચમભાવરૂપ = પરમપારિણામિકભાવ રૂપ સત્ જ પ્રતીતિમાન થાય છે) પણ ઉત્પાદ-વ્યયાદિક નહિ. તેનું સ્પષ્ટીકરણ-”

ગાથા ૨૧૭:- અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે જો ભેદ હોય છે અર્થાત્ જો સમય ભેદ વિવક્ષિત થાય છે તે સમય નિશ્ચયથી એ ઉત્પાદાદિ ત્રણે પ્રતીત થવા લાગે છે તથા જો સમય તે ભેદ મૂળથી જ વિવક્ષિત કરવામાં આવતો નથી તે સમય એ ત્રણે (ભેદો) પણ પ્રતીત થતા નથી,”

ભાવાર્થ:- “ઉપરના કથનનો સારાંશ એ છે કે -પદાર્થ સામાન્યવિશેષાત્મક છે અને બંને નય (દ્રવ્યાર્થિક અને પર્યાયાર્થિક) પદાર્થના સામાન્ય, વિશેષ ધર્મોમાંથી પરસ્પર સાપેક્ષ કોઈ એક ધર્મને મુખ્યપણે તથા બીજા ધર્મને ગૌણપણે વિષય કરે છે (એટલા માટે દ્રવ્યાર્થિકચક્ષુવાળાને જ્યાં પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય, માત્ર સામાન્યરૂપ જ જણાય છે ત્યાં પર્યાયાર્થિકચક્ષુવાળાને તે પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય માત્ર પર્યાયરૂપ જ જણાય છે અને પ્રમાણચક્ષુથી જોવામાં આવતા તે જ પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય, ઉભયરૂપ અર્થાત્ દ્રવ્ય-પર્યાય સ્વરૂપ જણાય છે; તેથી સમજવાનું એ છે કે જૈન સિદ્ધાંતમાં બધું જ વિવક્ષાવશ અર્થાત્ અપેક્ષાએ કહેવાય છે નહિ કે એકાંતે, તેથી જ્યારે એમ પ્રશ્ન થાય કે પર્યાય શેની બનેલી છે? અને ઉત્તર- દ્રવ્યની = દ્રૌવ્યની, એમ આપવામાં આવે તો જૈન સિદ્ધાંત નહિ સમજવાવાળાને લાગે છે કે વળી પર્યાયમાં દ્રવ્ય ક્યાંથી આવી ગયું? અરે ભાઈ! પર્યાય છે તે દ્રવ્યનું જ વર્તમાન છે અને કોઈપણ વર્તમાન તે દ્રવ્યનું જ બનેલું હોયને! દ્રષ્ટાંત:- જેમ સમુદ્રના મોજાં શેના બનેલા છે? તો કહેવું પડશે કે પાણીના અર્થાત્ સમુદ્રના અને માટીનો ઘડો શેનો બનેલો છે? તો કહેવું પડશે કે માટીનો, તેવી જ રીતે સોનાના કુંડલાદિક આકારો રૂપ પર્યાયો શેની બનેલી છે? તો કહેવું પડશે કે સોનાની; હવે પૂછીએ કે જ્ઞેયાકારરૂપ પર્યાયો શેની બનેલી છે? તો કહેવું પડશે કે જ્ઞાનની અને તે જ્ઞાન સામાન્ય જ જ્ઞાયક છે. આવી જ દ્રવ્ય-પર્યાયરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા છે કે જે સમજ્યા વગર મિથ્યાત્વનો દોષ ઉભો જ રહેવાનો છે, તેથી જ આ વસ્તુવ્યવસ્થા સૌ પ્રથમ સ્પષ્ટ સમજવી અત્યંત આવશ્યક છે.) એટલા માટે જે વેળા ભેદ વિવક્ષિત થાય છે તે વેળા અભેદ ગૌણ થઈ જવાથી ઉત્પાદાદિક ત્રણે પ્રતીત થવા લાગે છે, તેથી જે વેળા દ્રવ્યાર્થિકનયદ્વારા અભેદતા વિવક્ષિત થાય છે તે સમયે ભેદ ગૌણ થઈ જવાથી ઉત્પાદાદિક ત્રણેમાંથી કોઈની પ્રતીતિ થતી નથી પણ માત્ર એક સત્ જ સત્ પ્રતીતિમાન થાય છે.”

જૈન સિદ્ધાંતમાં ત્રિકાળીધ્રુવરૂપવસ્તુ અથવા પર્યાયરહિતનું દ્રવ્ય લક્ષમાં લેવાની આવી છે રીત. કારણ અભેદ દ્રવ્યમાંથી કાંઈપણ કાઢવું હોય તો તે માત્ર પ્રજ્ઞાથી = બુદ્ધિથી જ (લક્ષ કરવાથી-મુખ્ય ગૌણ કરવાથી જ) કાઢી શકાય છે અન્યથા નહિ, જે આપણે આગળ ઉપર વિચારીશું.

આગળ શંકાકાર નવી શંકા કરે છે-

ગાથા ૨૧૮:- અન્વયાર્થ:- “શંકાકાર નું કહેવું એમ છે કે-નિશ્ચયથી ઉત્પાદ અને વ્યય એ બન્ને જ અંશસ્વરૂપ ભલે હોય પરંતુ ત્રિકાલગોચર જે દ્રૌવ્ય છે તે કેવી રીતે અંશાત્મક થશે? જો એમ કહો -તો” આ શંકાનું સમાધાન:-

ગાથા ૨૧૯:- અન્વયાર્થ:- “એમ કહેવું એ ઠીક નથી, કારણ કે વાસ્તવમાં એ ત્રણે અંશો સ્વયં સત્ જ છે પરંતુ સત્ના નથી, કારણ કે -અહીં સત્ એ અર્થાન્તરોની માફક એક એક થઈને અનેક છે, એમ નથી.”

ભાવાર્થ:- “ઉપરની શંકા ઠીક નથી, કારણ કે જૈન સિદ્ધાંતમાં સત્ના ઉત્પાદ, વ્યય અને દ્રૌવ્યરૂપ અંશ માન્યા નથી પરંતુ સત્ પોતે જ ઉત્પાદવ્યયદ્રૌવ્યાત્મક માન્યું છે (અર્થાત્ દ્રવ્યને એક, અખંડ, અભેદરૂપ જ માન્યું છે જે વાસ્તવિકતા છે અને તે પોતે જ ઉત્પાદવ્યયરૂપ થાય છે) ઉત્પાદ, વ્યય અને દ્રૌવ્ય એ ત્રણે પ્રત્યેક જુદા જુદા પદાર્થોની માફક મળીને અનેક નથી, પરંતુ વિવક્ષાવશ જ (અર્થાત્ ભેદનયે કરી અથવા મુખ્ય-ગૌણ કરી) એ ત્રણે ભિન્ન-ભિન્નરૂપથી પ્રતીત થાય છે. તેનું સ્પષ્ટીકરણ:-

ગાથા ૨૨૦:- અન્વયાર્થ:- “આ વિષયમાં આ ઉદાહરણ છે કે -અહીં જો ઉત્પાદરૂપથી પરિણત સત્ જે સમયે ઉત્પાદદ્વારા લક્ષમાણ થાય છે તે સમયે વસ્તુને કેવળ ઉત્પાદમાત્ર કહેવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:- પદાર્થ, અનંતધર્માત્મક છે, શબ્દ વા ન્યાત્મકજ્ઞાનના અંશદ્વારા તેના સંપૂર્ણ ધર્મો વિષયભૂત થઈ શકતા નથી તેથી એ અનંત ધર્મોમાં જે જ્ઞાનાંશ વા શબ્દદ્વારા જે કોઈપણ એક ધર્મ વિષયભૂત થાય છે તે જ્ઞાનાંશ વા શબ્દદ્વારા (અર્થાત્ પ્રજ્ઞા = બુદ્ધિ દ્વારા) વસ્તુ તે સમયે કેવળ તે જ ધર્મમય જાણવામાં આવે છે વા કહેવામાં આવે છે, (જેમ કે આત્માને જ્ઞાનમાત્ર કહેતાં તેનો માત્ર જ્ઞાનગુણ જ લક્ષમાં નથી લેવાનો પણ પૂર્ણ વસ્તુ યાને કે પૂર્ણ આત્મા જ, જ્ઞાનમાત્ર કહેતા ગ્રહણ કરવો) એ ન્યાયાનુસાર જે સમયે નવિન નવિન રૂપથી પરિણત સત્ ઉત્પાદરૂપ, જ્ઞાન તથા શબ્દદ્વારા વિવક્ષિત થાય છે તે સમયે તે સત્ કેવળ ઉત્પાદમાત્ર કહેવામાં આવે છે.”

ત્યાં કોઈ એમ કહે કે ધ્રુવ તો ઉત્પાદ-વ્યયથી અલગ હોવો જ જોઈએ અથવા રાખવો જ જોઈએ, દ્રવ્યને કેવળ ઉત્પાદમાત્ર કેમ કહો છો? તો ઉત્તર એ છે કે વસ્તુના (સત્ના) એક અંશ ને લક્ષમાં લઈને અર્થાત્ મુખ્ય કરીને કથન કરવામાં આવે તો બાકીના તમામ અંશો તેમાં જ અંતરગર્ભિત થઈ જાય છે, અર્થાત્ એકને મુખ્ય કરતાં બાકીના બધા આપમેળે જ અત્યંત ગૌણ થઈ જાય છે અને તે મુખ્ય અંશથી જ પૂર્ણ વસ્તુનો વ્યવહાર થાય છે અર્થાત્ પ્રતિપાદન, પ્રસ્તુતિ થાય છે, ત્યાં પ્રતિપાદન અન્ય અંશોને છોડીને એક અંશનું નથી થતું પરંતુ એક અંશને મુખ્ય અને અન્યોને ગૌણ કરીને થાય છે અને આ જ જૈનસિદ્ધાંતની પ્રતિપાદનની શૈલી છે કે જેને સ્યાદ્વાદ કહેવાય છે કે જે જૈનસિદ્ધાંતનો પ્રાણ છે.

ગાથા ૨૨૧:- અન્વયાર્થ:- “અથવા જે સમય અહીં વ્યયરૂપથી પરિણત તે સત્ કેવળ વ્યય દ્વારા નિશ્ચયરૂપથી લક્ષ્યમાણ થાય છે તે સમય તે જ સત્ નિશ્ચયથી કેવળ વ્યય માત્ર શું નહિ થાય? અવશ્ય થશે”

ગાથા ૨૨૨:- અન્વયાર્થ:- “અથવા જે સમય ધ્રૌવ્યરૂપથી પરિણત સત્ (કેવળ) ધ્રૌવ્ય દ્વારા લક્ષ્યમાણ થાય છે તે સમય ઉત્પાદવ્યયની માફક તે જ એ સત્ ધ્રૌવ્યમાત્ર છે, એવું જ પ્રતીત થાય છે.”

અર્થાત્ પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર દ્રવ્યાર્થિકચક્ષુવાળાને જ્યાં પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય, માત્ર સામાન્યરૂપ જ જણાય છે અર્થાત્ ધ્રુવરૂપ જ જણાય છે ત્યાં પર્યાયાર્થિકચક્ષુવાળાને તે જ પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય માત્ર પર્યાયરૂપ જ જણાય છે અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ જ જણાય છે અને પ્રમાણચક્ષુથી જોવામાં આવતા તે જ પ્રમાણરૂપ દ્રવ્ય, ઉભયરૂપ અર્થાત્ દ્રવ્ય-પર્યાય સ્વરૂપ જણાય છે અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્યરૂપ જણાય છે; તેથી સમજવાનું એ છે કે જૈન સિદ્ધાંતમાં દરેક કથન વિવક્ષાવશ જ અર્થાત્ અપેક્ષાએ જ કહેવાય છે નહિ કે એકાંતે, તેથી જ્યારે એમ પ્રશ્ન થાય કે પર્યાય શેની બનેલી છે? અને ઉત્તર-દ્રવ્યની = ધ્રૌવ્યની, એમ આપવામાં આવે તો જૈન સિદ્ધાંત નહિ સમજવાવાળાને લાગે છે કે વળી પર્યાયમાં દ્રવ્ય ક્યાંથી આવી ગયું? અરે ભાઈ! પર્યાય છે તે દ્રવ્યનું જ વર્તમાન છે અને કોઈપણ વર્તમાન તે દ્રવ્યનું જ બનેલું હોયને! આવું છે જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર ત્રિકાળી ધ્રુવ વસ્તુનું સ્વરૂપ, અન્યથા નહિ, અન્યથા લેતાં તે જિનમતબાહ્ય છે. દ્રષ્ટાંત -

ગાથા ૨૨૩:- અન્વયાર્થ:- “આ વિષયમાં ઉદાહરણ આ છે કે -અહીં માટીરૂપ દ્રવ્ય, સત્તાત્મક ઘટ દ્વારા લક્ષ્યમાણ થતું કેવળ ઘટરૂપ જ કહેવામાં આવે છે, તથા ત્યાં જ અસત્તાત્મક પિંડરૂપ દ્વારા લક્ષ્યમાણ થતું કેવળ પિંડરૂપ જ કહેવામાં આવે છે.” અને હવે માટીરૂપ (ધ્રુવરૂપ) જણાવે છે.

ગાથા ૨૨૪:- અન્વયાર્થ:- “અથવા તે માટી રૂપ દ્રવ્ય જો અહીં કેવલ મૃતિકાપણથી લક્ષ્યમાણ થાય છે તો તે માટી જ કહેવામાં આવે છે, એ પ્રમાણે એક સત્ના જ ઉત્પાદાદિક ત્રણે એ સત્માં અંશ છે.”

આ રીતથી એક અભેદ સત્રૂપ વસ્તુ ને અલગ અલગ વિવક્ષાઓથી જોતાં તે પૂર્ણ વસ્તુ જ તે સ્વરૂપ કહેવાય છે; જેમ કે ઘટને માત્ર માટીરૂપ અર્થાત્ ત્રિકાળી ધ્રુવરૂપ જોતાં તે પૂર્ણ વસ્તુ (ઘટ) માત્ર માટીરૂપ જ જણાય છે, અર્થાત્ તેમાંથી ઘટત્વ અથવા તો પિંડત્વ કાઢી નાખવું નથી પડતું તે આપોઆપ જ માટીત્વમાં અંતર્ભૂત થઈ જાય છે, અત્યંત ગૌણ થઈ જાય છે અને આ જ રીત છે ત્રિકાળી ધ્રુવ દ્રવ્યને દ્રવ્ય દ્રષ્ટિથી નિહાળવાની, અન્ય રીત નથી તે જ આગળ જણાવે છે.

ગાથા ૨૨૫:- અન્વયાર્થ:- “પરંતુ વૃક્ષમાં ફળ, ફૂલ તથા પત્રની માફક કોઈ અંશરૂપ એક ભાગથી સત્નો ઉત્પાદ અથવા સંહાર અર્થાત્ વ્યય તથા ધ્રૌવ્ય નથી.”

અર્થાત્ વાસ્તવમાં દ્રવ્યમાં ધ્રુવ અને પર્યાય એવા બે ભાગ નથી અને એના ક્ષેત્રભેદ (ભિન્નપ્રદેશ) પણ નથી પરંતુ એક જ વસ્તુને અપેક્ષાએ-ભેદનથી તેમ કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:- “પરંતુ જે પ્રમાણે વૃક્ષમાં ફળ, ફૂલ તથા પત્ર વગેરે ભિન્ન-ભિન્ન અંશોથી રહે છે અને

તે વૃક્ષ પણ તેનાં સંયોગથી ફળ-ફૂલ-પત્રાદિવાળું કહેવામાં આવે છે તે પ્રમાણે સત્ના કોઈ એક અંશથી જુદા ઉત્પાદ-વ્યય-દ્રૌવ્ય નથી તથા ન તો જુદા-જુદા અંશાત્મક ઉત્પાદ-વ્યય-દ્રૌવ્યથી, દ્રવ્ય ઉત્પાદ-વ્યય-દ્રૌવ્યવાળું જ કહેવાય છે. તેથી શંકાકારનું - 'ઉત્પાદવ્યયને અંશાત્મક માનવા અને દ્રૌવ્યને અંશાત્મક ન માનવો' એ કથન (શંકા) ઠીક નથી''

હવે શંકાકાર શંકા કરે છે કે -ઉત્પાદાદિક ત્રણે અંશોના હોય છે કે અંશીના (દ્રવ્યના = સત્ના) હોય છે? તથા એ ત્રણે સત્નાત્મક અંશ છે કે જુદા અસત્નાત્મક અંશ છે? તેનું સમઘાન આપે છે:-

ગાથા ૨૨૭:- અન્વયાર્થ:- “એમ કહેવું ઠીક નથી કારણ કે જૈન સિદ્ધાંતમાં નિશ્ચયથી અનેકાંત જ બળવાન છે પણ સર્વથા એકાંત બળવાન નથી. માટે અનેકાંતપૂર્વક બધાંય કથન અવિરુદ્ધ હોય છે તથા અનેકાંત વિના બધાય કથન વિરુદ્ધ થઈ જાય છે.”

અર્થાત્ ક્યારેય કોઈએ માત્ર શબ્દો ને પકડીને એકાંત અર્થ ન કાઢવો જોઈએ કારણ કે જૈન સિદ્ધાંતમાં દરેક શબ્દ-દરેક વાક્ય કોઈ ને કોઈ અપેક્ષા વગર નથી હોતો તેથી કરીને તે શબ્દો અથવા વાક્યો ને તે તે અપેક્ષા પ્રમાણે સમજીને ગ્રહણ કરવા આવશ્યક છે, એકાંત ગ્રહણ ન કરતાં, અનેકાંત સ્વરૂપ જૈનસિદ્ધાંત અનુસાર જ અર્થ સમજવા યોગ્ય છે, અન્યથા એકાંતના દોષથી મિથ્યાત્વનો દોષ જરૂર જ આવે છે કે જે અનંત ભવભ્રમણ વધારવા શક્તિમાન છે અને તેથી જ એકાંત ગ્રહણ અને એકાંતના આગ્રહથી બચીને પ્રસ્તુત કોઈપણ વિધાન ને, અનેકાંત સ્વરૂપ સમજાવ્યા અનુસાર ગ્રહણ કરીને ત્વરાથી સંસારથી મુક્ત થવા યોગ્ય છે અર્થાત્ ત્વરાએ મોક્ષમાર્ગ પર ચાલવા અનેકાંત જ સહાયભૂત થવા યોગ્ય છે.

ગાથા ૨૨૮:- અન્વયાર્થ:- “અહીં કેવલ અંશોના ન ઉત્પાદ તથા ન વ્યય તથા ન દ્રૌવ્ય થાય છે, તથા અંશીના પણ એ ઉત્પાદાદિ ત્રણે થતા નથી પરંતુ નિશ્ચયથી અંશથી યુક્ત અંશીના એ ઉત્પાદાદિક ત્રણે થાય છે.”

અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યય-દ્રૌવ્યરૂપ દ્રવ્ય કહ્યું છે તે પૂર્ણ અભેદ છે અને તે અભેદરૂપ જ પરિણમે છે અને તે પૂર્ણ દ્રવ્ય જ ઉત્પાદાદિક રૂપ થાય છે; તેમાં કોઈ અંશરૂપ વિભાગો નથી, તે માત્ર અપેક્ષાએ કહેવાય છે.

ગાથા ૨૨૯:- ભાવાર્થ:- “શંકાકારનું કહેવું એમ છે કે - શબ્દ વા અર્થ દ્રષ્ટિએ ઉત્પાદાદિ એક પદાર્થમાં બની શકે છે તેમ દ્રૌવ્ય અને ઉત્પાદ-વ્યય કોઈ એક પદાર્થમાં સિદ્ધ થઈ શકતા નથી કારણ કે ઉત્પાદ-વ્યય અનિત્યપણાના સાધક છે તથા દ્રૌવ્ય નિત્યપણાનો સાધક છે, તેથી દ્રૌવ્ય અને ઉત્પાદવ્યય એ બંને પરસ્પર વિરોધી હોવાથી તેને એક પદાર્થના માનવા એ પ્રત્યક્ષબાધિત છે. તેનું સમાઘાન-”

ગાથા ૨૩૦-૨૩૧:- અન્વયાર્થ:- “(દ્રૌવ્ય અને ઉત્પાદ-વ્યય પરસ્પર વિરોધી છે તે વાત) ઠીક

છે, પરંતુ જો નિશ્ચયથી એ ત્રણેને ક્ષણભેદ અર્થાત્ બિન્નબિન્ન સમય હોય તો અથવા નિશ્ચયથી સત્ પોતે જ નાશ પામતું હોત (અર્થાત્ સત્ પરિવર્તિત ન થતાં નાશ પામતું હોત), તથા સત્ પોતે જ ઉત્પન્ન થતું હોત (અર્થાત્ સત્ પરિવર્તિત ન થતાં નાશ થઈ નવું ઉત્પન્ન થતું હોત) તો પરસ્પર વિરુદ્ધ કથન થાત. પરંતુ એ ઉત્પાદાદિક ત્રણેનો ક્ષણભેદ અથવા સ્વયં સત્નું જ નાશ પામવું કે ઉત્પન્ન થવું તે કોઈપણ ઠેકાણે કોઈ હેતુથી કંઈ પણ, કોઈનું પણ, કોઈપણ પ્રકારથી થતું નથી, કારણ કે આ ઠેકાણે તેનું દ્રષ્ટાંત પણ નહિ મળવાથી, તેના સાધક પ્રમાણનો અભાવ છે”

ગાથા ૨૩૮:- અન્વયાર્થ:- “ન્યાયબળથી એ સિદ્ધ થયું કે એ ત્રણે (ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ) એક કાળવર્તી છે, કારણ કે- જે વૃક્ષપણું જે છે તે જ અંકુરરૂપથી ઉત્પન્ન અને બીજરૂપથી નષ્ટ થવાવાળું છે.”

અર્થાત્ પૂર્ણ દ્રવ્ય જ એક પર્યાયથી નષ્ટ થઈ બીજી પર્યાયરૂપ પરિવર્તિત થતું રહે છે અને તેથી જ તેને ધ્રુવ કહેવાય છે જ્યારે પૂર્વ પર્યાયને વ્યયરૂપ અને વર્તમાન પર્યાયને ઉત્પાદરૂપ કહેવાય છે. અર્થાત્ તે દ્રવ્યમાં ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ રૂપ કોઈ અલગ અંશ નથી માત્ર વસ્તુ-વ્યવસ્થા સમજાવવા માટે ભેદ પાડીને જણાવેલ છે કે- જે કોઈ દ્રવ્ય છે તે દ્રવ્ય છે, અર્થાત્ પરિણામે છે, અર્થાત્ પરિવર્તિત થતું રહે છે, અને તે પરિવર્તિત થતાં દ્રવ્યને ધ્રુવ કહેવાય છે જ્યારે એનાં પરિણામને-અવસ્થાને પર્યાય (ઉત્પાદ-વ્યય) રૂપ કહેવાય છે.

ગાથા ૨૪૩:- અન્વયાર્થ:- “પ્રકૃતકથનમાં એમ માનવામાં આવ્યું છે કે- સત્ને કોઈ અન્ય (પૂર્વ) પર્યાયથી વિનાશ તથા કોઈ અન્ય (વર્તમાન) પર્યાયથી ઉત્પાદ તથા એ બંનેથી બિન્ન કોઈ સદૃશપર્યાયથી (દ્રવ્ય સામાન્યરૂપ કે જેની બન્ને પર્યાયો બનેલી છે અને જે સામાન્યરૂપ હોવાથી એવું ને એવું જ ઉપજે છે તેથી તેને સદૃશ-પર્યાયરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ કહેવાય છે) ધ્રૌવ્ય હોય છે.” હવે આનું જ ઉદાહરણ જણાવે છે:-

ગાથા ૨૪૪:- અન્વયાર્થ:- “અહીં ઉદાહરણ વૃક્ષની માફક છે કે- જેમ તે વૃક્ષ સતાત્મક અંકુરરૂપથી પોતે જ (એટલે વૃક્ષ પોતે જ અર્થાત્ દ્રવ્ય પોતે જ) ઉત્પન્ન છે બીજરૂપથી નષ્ટ છે (પૂર્વ પર્યાયથી નષ્ટ કહેવાય છે) તથા બન્ને અવસ્થાઓમાં વૃક્ષપણાથી ધ્રૌવ્ય (અર્થાત્ સમજવાનું એ છે કે વૃક્ષરૂપ ધ્રૌવ્ય કોઈ પર્યાયથી બિન્ન અપરિણામી વિભાગ નથી, પરંતુ જે પર્યાય છે તે વિશેષ છે અને તેનું જ સામાન્ય અર્થાત્ તે જેની બનેલી છે તેને જ ધ્રૌવ્ય કહેવાય છે અર્થાત્ અન્ય કોઈ અપરિણામી ધ્રૌવ્ય જુદું નથી, તે ખાસ સમજવાનું છે કે- તે દ્રવ્ય જ છે કે જેની પર્યાય બનેલી છે, તે દ્રવ્યપણાથી ધ્રૌવ્ય) એમ પણ છે અર્થાત્ વૃક્ષમાં (એટલે દ્રવ્યમાં) જુદી-જુદી અપેક્ષાએ એ ત્રણે (બીજ, અંકુર અને વૃક્ષપણું) અર્થાત્ વ્યય, ઉત્પાદ અને ધ્રૌવ્યપણું) એક સમયમાં હોય છે.” આવું છે જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર વસ્તુનું સ્વરૂપ કે જે દરેક મોક્ષેચ્છુએ સ્વીકાર કરવું જ પડશે.

ભાવાર્થ:- “...બીજ નાં અભાવ વા અંકુરના ઉત્પાદરૂપ બન્ને અવસ્થાઓમાં સામાન્યપણે વૃક્ષત્વ મોજુદ છે....” એટલે સમજવાનું એ છે કે વિશેષરૂપ અવસ્થાઓ (પર્યાયો) સામાન્યરૂપ (દ્રવ્ય) ની જ બનેલ છે.

ગાથા ૨૪૬:- અન્વયાર્થ:- “જે કારણથી ઉત્પાદ અને વ્યય એ બન્નેનો આત્મા સ્વયં સત્, એ જ છે (અર્થાત્ ઉત્પાદ, વ્યયરૂપ પર્યાય સત્ રૂપ દ્રવ્યની જ બનેલ છે કે જેને સામાન્ય રૂપ ધ્રૌવ્ય કહેવાય છે.) એટલા માટે એ બન્ને તથા વસ્તુ અર્થાત્ ધ્રૌવ્ય એ ત્રણે સત્ જ છે, સત્થી અન્ય નથી અર્થાત્ ભિન્ન નથી (ભિન્ન પ્રદેશી નથી)”વાસ્તવમાં વસ્તુ અભેદ હોવાથી જ આવી વસ્તુવ્યવસ્થા ઘટિત થાય છે. હવે સારાંશ-

ગાથા ૨૪૭:- અન્વયાર્થ:- “પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ ઉત્પાદ છે, વ્યય છે તથા ધ્રૌવ્ય છે પરંતુ દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ ન ઉત્પાદ છે, ન વ્યય છે તથા ન ધ્રૌવ્ય છે.”

તેથી કરીને અમે જ્યારે દ્રવ્ય-પર્યાય સ્વરૂપ વસ્તુનું એટલે કે પ્રમાણરૂપ દ્રવ્યને માત્ર દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાએ ત્રિકાળી ધ્રુવ કહીએ છીએ ત્યારે કોઈને પ્રશ્ન થશે કે- આમાં પ્રમાણનું દ્રવ્ય કેમ લેવામાં આવે છે? તો તેનો ઉત્તર એ છે કે- જેવી આપની દ્રષ્ટિ હશે, તેવું જ દ્રવ્ય આપને દેખાશે, અર્થાત્ જે દ્રવ્યને પ્રમાણદ્રષ્ટિથી જુએ છે તેને તે દ્રવ્ય = વસ્તુ પ્રમાણરૂપ દેખાશે, જે પર્યાયદ્રષ્ટિથી જુએ તેને તે દ્રવ્ય માત્ર પર્યાયરૂપ જણાશે અને તે જ પ્રમાણના દ્રવ્યને જે દ્રવ્યાર્થિક નયના ચક્ષુથી નીરખવામાં આવે તો તે પૂર્ણ વસ્તુ (પૂર્ણ દ્રવ્ય) માત્ર ત્રિકાળી ધ્રુવરૂપ જ જણાશે કે જે પર્યાયથી નિરપેક્ષરૂપ સામાન્યમાત્ર જ છે; આ જ જૈન સિદ્ધાંતની અદ્ભૂતતા છે, કમાલ છે અને આ જ રીત છે પર્યાય રહિત દ્રવ્ય પામવાની. તેથી કરીને સર્વે જનોને અમારી વિનંતી છે કે સૌ પ્રથમ આપ ‘જેમ છે તેમ’ વસ્તુ-વ્યવસ્થા સમજશો એટલે આપના પ્રશ્નનો ઉત્તર, આપને આપોઆપ જ મળી જશે અને તેથી કરીને જ આ વાત આટલી વિસ્તારથી સમજાવેલ છે અને તેમાં પુનરાવર્તનનો દોષ સેવીને પણ ફરી-ફરી તેજ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે- વસ્તુ-વ્યવસ્થા અને સ્યાદ્વાદ શૈલી સમજ્યા વગર શબ્દો અને વાક્યોના અર્થો સમજવા અત્યંત કઠિન છે અને અનેકાંત સ્વરૂપ વસ્તુવ્યવસ્થા સમજ્યા બાદ તે સાવ સહેલું છે, આ જ વાત આગળ દ્રઢ કરાવે છે.

ગાથા ૨૫૪ અન્વયાર્થ:- “(ઉત્પાદ-વ્યય) તથા ધ્રૌવ્યપણ નિયમથી ઉત્પાદ-વ્યય એ બંને વિના થતો નથી કારણ કે ત્યાં વિશેષના અભાવમાં સતાત્મક સામાન્યનો પણ અભાવ થાય છે.” અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ વિશેષ ધ્રૌવ્યરૂપ સામાન્યનું જ બનેલ છે કે જેથી કરીને એકના અભાવમાં બીજાનો પણ અભાવ હોય છે.

ભાવાર્થ:- “વસ્તુ સામાન્ય-વિશેષાત્મક છે, વિશેષ નિરપેક્ષ સામાન્ય તથા સામાન્યનિરપેક્ષ વિશેષ એ કોઈ વસ્તુ જ ઠરતી નથી, ધ્રૌવ્ય સામાન્ય રૂપ છે અને ઉત્પાદ-વ્યય વિશેષરૂપ છે. તેથી

ઉત્પાદ-વ્યય વિના દ્વૈવ્ય પણ બની શકતો નથી, કારણ ઉત્પાદવ્યયાત્મક વિશેષ વિના દ્વૈવ્યાત્મક સામાન્યની પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી- એટલા માટે-”

ગાથા રપપ અન્વયાર્થ:- “એ પ્રમાણે અહીં આગળ ઉત્પાદાદિક ત્રણેની વ્યવસ્થા ઘણી સારી છે પરંતુ એ ઉત્પાદાદિક ત્રણેમાંથી કોઈ એકના નકારને કહેવાવાળો પોતાના પક્ષનો પણ ઘાતક થાય છે. તેથી કેવળ ઉત્પાદાદિક કેવળ એકની વ્યવસ્થા માનવી ઠીક નથી.”

અત્રે સ્પષ્ટ થાય છે કે અગર કોઈ અભેદ દ્રવ્યમાંથી પર્યાયને કાઢવાનો પ્રયત્ન કરશે અર્થાત્ જેને પર્યાયરહિત દ્રવ્ય ઇષ્ટ હશે તો તેને પૂર્ણ દ્રવ્યનો જ લોપ થઈ જશે અર્થાત્ તે માત્ર ભ્રમમાં જ રહી જશે, તેથી કરીને પર્યાયરહિત દ્રવ્ય કાઢવાની રીત જે ઉપર જણાવેલ છે તેમ દ્રવ્યાર્થિકનયના ચક્ષુથી અર્થાત્ દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી છે, માત્ર દ્રવ્યને જ ધ્યાનમાં લેતા તે પૂર્ણ દ્રવ્ય કે જેને આપ પ્રમાણનું દ્રવ્ય પણ કહી શકો છો, તેવું પૂર્ણ દ્રવ્ય જ માત્ર દ્રવ્યરૂપ અર્થાત્ ધ્રુવરૂપ જ જણાશે, તેનું જ લક્ષ થશે, માટે પર્યાય રહિત દ્રવ્ય જોઈએ તો તેની રીત આવી જ છે; અન્ય કોઈ રીતે તો દ્રવ્યનો જ અભાવ થઈ જશે અને તે પોતે પોતાના પક્ષનો જ ઘાતક બની માત્ર ભ્રમમાં જ રાચશે.

બીજું, કોઈ વર્તમાન પર્યાયને દ્રષ્ટિના વિષય માટે બહાર રાખે તો પૂર્ણ દ્રવ્ય જ બહાર થઈ જશે, આવું છે વસ્તુ સ્વરૂપ, આવી છે વસ્તુવ્યવસ્થા જૈન સિદ્ધાંતની કે જે અનેકાંતરૂપ છે, એકાંતરૂપ નહિ; આ રીતથી દ્રવ્યને પરિણામી નહીં માનવાવાળાને શું દોષ આવશે? ઉત્તર-

ગાથા રપટ અન્વયાર્થ:- “તથા નિશ્ચયથી કેવળ એક દ્વૈવ્યપક્ષને વિશ્વાસ કરવા-માનવાવાળાને પણ દ્રવ્ય પરિણામી બનશે નહિ તથા તેનું પરિણામીપણું ન હોવાથી તે દ્વૈવ્ય, દ્વૈવ્ય પણ રહી શકશે નહિ.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે જે કોઈ દ્વૈવ્યરૂપ દ્રવ્યને અપરિણામી માનતાં હોય તો, તે તેવું એકાંતે નથી કેમકે જો દ્વૈવ્ય અપરિણામી હોય તો દ્રવ્યનો જ અભાવ થશે અને તેથી દ્વૈવ્યનો પણ અભાવ જ થશે કારણ કે કોઈપણ વસ્તુ તેના વર્તમાન વગર ન હોય અર્થાત્ કોઈપણ દ્રવ્ય (દ્વૈવ્ય) તેની અવસ્થા (વર્તમાન = પર્યાય) વગર ન જ હોય અને જો એવું કલ્પવામાં આવે તો તે દ્રવ્યનો (દ્વૈવ્યનો) જ અભાવ થઈ જશે; તેથી તે દ્વૈવ્યને જરૂર પરિણામી માનવું પડશે અને તે પરિણામ (અર્થાત્ ઉપાદાનરૂપ દ્વૈવ્યનું કાર્ય-તેની અવસ્થા) ને જ ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ પર્યાય કહેવાય છે. જ્યારે તેમાં (પર્યાયમાં) રહેલ સામાન્યભાવ (અર્થાત્ પર્યાય જેની બનેલ છે તે ભાવ) ને દ્વૈવ્ય કહેવાય અને તેનું લક્ષણ છે આ તેવું જ છે અને આ લક્ષણ અપેક્ષાએ તેને અપરિણામી પણ કહેવાય પરંતુ અન્યથા નહિ, અન્યથા સમજતાં તો મિથ્યાત્વનો જ દોષ આવશે. ઉપસંહાર:-

ગાથા ર૬૦ અન્વયાર્થ:- “ઉપરના દોષોના ભયથી તથા પ્રકૃત આસ્તિકતાને ઇચ્છાવાળા પુરુષોએ અહીં આગળ ઉત્પાદાદિક ત્રણેનો ઉપર કહેલો અવિનાભાવ જ માનવો જોઈએ.”

અર્થાત્ આ વાત લક્ષમાં લેવા જેવી છે કે- જે કોઈ આ રીતથી વસ્તુ-વ્યવસ્થા ન માનતાં હોય તેઓને મિથ્યાત્વી જ સમજવાં અર્થાત્ જે કોઈ આત્માર્થી છે તેઓએ અત્રે જણાવેલ વસ્તુ-વ્યવસ્થાને જ સમ્યક સમજીને અપનાવવી પરમ આવશ્યક છે, અન્યથા મિથ્યાત્વના દોષને કારણે પોતાનો અનંત સંસાર ઉભો જ રહેશે અર્થાત્ અનંત દુઃખથી છૂટકારો નહિ જ મળે.

બીજું પંચાધ્યાયી શાસ્ત્રમાં આ સિવાય પણ આ જ વાતોને પુષ્ટ કરવાવાળી અનેક ગાથાઓ છે પરંતુ વિસ્તારભયના કારણે હવે આપણે અમુક જ મહત્વની ગાથાઓ જોઈશું; તેથી વિસ્તારરુચિવાળાએ આ શાસ્ત્રનો પૂર્ણપણે અભ્યાસ કરવા જેવો છે.

ગાથા ૩૦૩ અન્વયાર્થ:- “તેથી જે સત્ વિધિરૂપ (અર્થાત્ અન્વયરૂપ, ધ્રુવરૂપ, સામાન્યરૂપ, દ્રવ્યરૂપ) અથવા નિષેધરૂપ (અર્થાત્ વ્યતિરેકરૂપ-ઉત્પાદવ્યયરૂપ-વિશેષરૂપ-પર્યાયરૂપ) પણ કહ્યું છે તે જ સત્ (વસ્તુ = દ્રવ્ય) અહીં પરસ્પરની અપેક્ષાએ કોઈ એકમાં કોઈ બીજો ગર્ભિત થઈ જવાથી કહી શકાય છે. અર્થાત્ પરસ્પર સાપેક્ષ હોવાથી એક બીજામાં ગર્ભિત થઈ જાય છે.”

અર્થાત્ નિષેધરૂપ પર્યાય છે તે વિધિરૂપ ધ્રુવની જ બનેલ છે અને તેથી કરીને તે બન્ને એક બીજામાં ગર્ભિત થઈ જાય છે અને અપેક્ષા અનુસાર કોઈએક જ (દ્રવ્યાર્થિકનય અને પર્યાયાર્થિકનયથી) જણાય છે જ્યારે પ્રમાણ ચક્ષુથી ઉભય અર્થાત્ બન્ને જણાય છે.

ભાવાર્થ:- “એ પ્રમાણે વસ્તુ અન્વય-વ્યતિરેકાત્મક સિદ્ધ થવાથી જે સમયે વસ્તુ વિધિરૂપ કહી જાય છે તે સમયે નિષેધરૂપ વિશેષધર્મ ગૌણરૂપે એ વિધિમાં ગર્ભિત થઈ જાય છે (અર્થાત્ ધ્રુવમાં પર્યાય ગર્ભિત થઈ જાય છે) એમ સમજવું. તથા જે સમયે તે જ વસ્તુ નિષેધરૂપથી વિવક્ષિત થાય છે તે સમયે વિધિરૂપ સામાન્ય પણ એ જ નિષેધમાં ગૌણરૂપથી ગર્ભિત થઈ જાય છે (અર્થાત્ પર્યાયમાં ધ્રુવ ગર્ભિત થઈ જાય છે-અર્થાત્ પર્યાય ધ્રુવની જ બનેલ છે) એમ સમજવું. કારણ અસ્તિ-નાસ્તિ સર્વથા પૃથક નથી પરંતુ પરસ્પર સાપેક્ષ છે, તેથી વિવક્ષિતની મુખ્યતામાં અવિવક્ષિત ગૌણરૂપથી ગર્ભિત રહે છે.”

જૈન સિદ્ધાંતમાં અભાવ કરવાની આવી રીત છે કે જે મુખ્ય-ગૌણરૂપ વ્યવસ્થા છે, અન્યથા નહિ; તેથી જેને અન્ય રીતનો આગ્રહ છે-પક્ષ છે તેને નિયમથી મિથ્યાત્વી જાણવો.

ગાથા ૩૦૭ અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે-વિધિ જ સ્વયં (અર્થાત્ અન્વય જ સ્વયં, ધ્રુવ જ સ્વયં, સામાન્ય જ સ્વયં, દ્રવ્ય જ સ્વયં) યુક્તિવશાત (અર્થાત્ પર્યાયાર્થિકનયથી, પર્યાયદ્રષ્ટિથી, ભેદદ્રષ્ટિથી) નિશ્ચયથી (અત્રે યાદ રાખવું નિશ્ચયથી જણાવેલ છે) નિષેધરૂપ (અર્થાત્ વ્યતિરેકરૂપ, ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ, વિશેષરૂપ, પર્યાયરૂપ) થઈ જાય છે. તથા એ જ પ્રમાણે નિષેધપણ (અર્થાત્ વ્યતિરેકરૂપ, ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ, વિશેષરૂપ, પર્યાયરૂપ) પોતે જ યુક્તિવશથી (અર્થાત્ દ્રવ્યાર્થિકનયથી, દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી, અભેદદ્રષ્ટિથી) વિધિરૂપ (અર્થાત્ અન્વયરૂપ, ધ્રુવરૂપ, સામાન્યરૂપ, દ્રવ્યરૂપ) થઈ જાય છે.”

હવે આ ગાથાથી અધિક પ્રમાણ શું જોઈએ વસ્તુવ્યવસ્થા સમજવા માટે. અત્રે એ જ જણાવ્યું છે કે દ્રવ્યદ્રષ્ટિ અથવા પર્યાયદ્રષ્ટિ અનુસાર એક જ વસ્તુ ક્રમે દ્રવ્યરૂપ (ધ્રુવરૂપ) અથવા પર્યાયરૂપ (ઉત્પાદરૂપ, વ્યયરૂપ) જણાય છે, ત્યાં કોઈ ક્ષેત્ર અપેક્ષાએ વિભાગ નથી અને આ જ રીત છે જૈન સિદ્ધાંતની પર્યાય રહિત દ્રવ્યને જોવાની, તેથી જ આચાર્ય ભગવંતે આગળની ગાથામાં કહ્યું છે કે -

ગાથા ૩૦૮ અન્વયાર્થ:- “એ પ્રમાણે અહીં તત્ત્વને જાણવાવાળા કોઈપણ જૈન તત્ત્વવેદી એવા હોય છે તે સ્યાદવાદી કહેવાય છે. તથા એનાથી અન્યથા જાણવાવાળા સિંહમાણવક (બિલ્લી = બિલાડી ને સિંહ માનવાવાળા) કહેવાય છે.”

ભાવાર્થ:- “એ પ્રમાણે અનેકાંતાત્મક તત્ત્વને વિવક્ષાવશ વિધિ વ નિષેધરૂપ જાણવા કોઈ જૈન જ સાચો તત્ત્વજ્ઞાની તથા સ્યાદવાદી કહેવાય છે, પણ એથી અન્યપ્રકારે વસ્તુ સ્વરૂપને જાણવાવાળો પુરુષ સાચો તત્ત્વજ્ઞાની વા સ્યાદવાદી કહી શકાય નહીં, પરંતુ સિંહમાણવક કહેવાય. અર્થાત્ જૈમ બિલાડીને સિંહ કહેવામાં આવે છે પરંતુ વાસ્તવમાં તે સિંહ નથી પણ બિલાડી જ છે, એ જ પ્રમાણે ઉપરોક્તરૂપે તત્ત્વને ન જાણતાં અન્યપ્રકારે જાણવાવાળા પુરુષોને પણ ઉપચારથી જ તત્ત્વજ્ઞાની કહી શકાય, પણ વાસ્તવમાં નહિ.”

અર્થાત્ આ વાત લક્ષમાં લેવા જેવી છે કે- જે કોઈ અત્રે જણાવેલ રીતથી વસ્તુ-વ્યવસ્થા ન માનતાં હોય તેઓને નિયમથી મિથ્યાત્વી જ સમજવાં; આગળ પણ આચાર્ય ભગવંત આ જ વસ્તુ-વ્યવસ્થા દ્રઢ કરાવે છે. જેમ કે:-

ગાથા ૩૩૧ ભાવાર્થ:- “તદ્ભાવ અને અતદ્ભાવને (પરસ્પર) નિરપેક્ષ માનવાથી પૂર્વોક્ત કાર્ય-કારણભાવના અભાવ નો પ્રસંગ આવે છે, પરંતુ જો બંનેને (પરસ્પર) સાપેક્ષ માનવામાં આવે તો “તદિદં” (આ તેવું જ છે) “તદિદં ન” (આ તેવું નથી) એ આકારવાળા તત્ભાવ અને અતત્ભાવ પ્રતીતિમાં કાર્ય-કારણ તથા ક્રિયા-કારક એ બધાં સિદ્ધ થઈ જાય છે. સારાંશ કે-”

ગાથા ૩૩૨ અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે સત્ અસત્ની માફક તત્ તથા અતત્ પણ વિધિ-નિષેધરૂપ હોય છે પરંતુ નિરપેક્ષપણે નથી કારણ પરસ્પર સાપેક્ષપણે તત્-અતત્ એ બન્ને પણ તત્ત્વ છે.” અન્યથા અર્થાત્ નિરપેક્ષપણે તે અતત્ત્વ જ છે તે સમજવું આવશ્યક છે.

ગાથા ૩૩૩ અન્વયાર્થ:- “પૂર્વોક્ત કથનનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે કે- જે સમયે કેવળ તત્ત્વની વિધિ મુખ્ય થાય છે તે સમયે કથંચિત્ અપૃથક હોવાના કારણથી અતત્ ગૌણ થઈ જાય છે તેથી વસ્તુ સામાન્યરૂપે તન્માત્ર કહેવામાં આવે છે.” આ જ રીત છે ત્રિકાળી ધ્રુવ ભગવાન આત્માની પ્રાપ્તિની.

ગાથા ૩૩૪ અન્વયાર્થ:- “તથા જે સમયે પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ કેવળ અતત્ એ વિવક્ષા કરવા યોગ્ય વિધિ મુખ્ય થાય છે તે સમયે તત્ એ સ્વયં ગૌણ થવાથી અવિવક્ષિત રહે છે તેથી વસ્તુને અતન્માત્ર કહેવામાં આવે છે.”

આવું છે જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર વસ્તુનું સ્વરૂપ જે સમજ્યા વગર વિકૃત ધારણાઓનો અંત શક્ય જ નથી કે જે મોક્ષમાર્ગના પ્રવેશ અર્થે અત્યંત આવશ્યક છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન માટે વિકૃત ધારણાઓનો અંત અને સમ્યક ધારણાનો સ્વીકાર અત્યંત આવશ્યક છે.

ગાથા ૩૩૭ અન્વયાર્થ:- “ઠીક છે, પરંતુ નિશ્ચયથી ‘સર્વથા’ એ પદપૂર્વક સર્વ કથન સ્વપરના ઘાત માટે છે, પરંતુ સ્યાત્પદ દ્વારા યુક્ત સર્વ પદો સ્વપરના ઉપકાર માટે છે.” અર્થાત્ સ્યાદવાદ સિવાય કોઈનોય ઉદ્ધાર નથી આ વાત સર્વ જૈનોએ તો જરાપણ ભૂલવા જેવી નથી જ.

ગાથા ૩૩૮ અન્વયાર્થ:- “હવે તેનો ખુલાસો આ છે કે જેમ સત્ સ્વતઃસિદ્ધ છે (નિત્ય છે) તે જ પ્રમાણે તે પરિણમનશીલ પણ છે (ઉત્પાદ-વ્યયરૂપ = અનિત્ય પણ છે) તેથી એક જ સત્ બે સ્વભાવવાળું હોવાથી (અત્રે બે સ્વભાવવાળું જણાવેલ છે-બે ભાગવાળું ન સમજવું) તે નિત્ય તથા અનિત્યરૂપ છે.” નહિ કે એક ભાગ અપરિણામી અને એક ભાગ પરિણામી, અપેક્ષાએ ધ્રુવને અપરિણામી કહેવાય પરંતુ તેમ મનાય નહિ.

ગાથા ૩૩૯-૩૪૦ અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે - જે સમયે અહીં કેવળ વસ્તુ (ધ્રુવ = દ્રવ્ય) દ્રષ્ટિગત થાય છે પરિણામ દ્રષ્ટિગત થતા નથી તે સમયે ત્યાં દ્રવ્યાર્થિકનયની અપેક્ષાએ વસ્તુપણાનો નાશ નહિ થવાથી સંપૂર્ણ વસ્તુ (અત્રે ધ્યાનમાં લેવા જેવી વાત એ છે કે સંપૂર્ણ વસ્તુ જણાવેલ છે તેમાંથી કાંઈપણ કાઢવામાં આવેલ નથી-સંપૂર્ણ વસ્તુ એટલે પ્રમાણનો વિષય) નિત્ય છે (ધ્રુવ છે). અથવા જે સમયે અહીં નિશ્ચયથી કેવળ પરિણામ દ્રષ્ટિગત થાય છે, વસ્તુ (ધ્રુવ = દ્રવ્ય) દ્રષ્ટિગત થતી નથી તે સમયે પર્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ નવિન પર્યાયની ઉત્પત્તિ તથા પૂર્વ પર્યાયનો અભાવ થવાથી સંપૂર્ણ વસ્તુ જ અનિત્ય છે (અર્થાત્ પર્યાયરૂપ છે).”

તેથી સમજવાનું એ છે કે જે પર્યાયાર્થિકનયના વિષયરૂપ પર્યાય છે તેમાં જ દ્રવ્ય અંતર્ગત = ગર્ભિત થઈ જવાથી તે પર્યાય તે દ્રવ્યની જ બનેલ છે તેમ કહી શકાય છે અને તે જ દ્રવ્ય જે શુદ્ધનયે કરી શુદ્ધ જોવામાં આવે તો તે જ પંચમભાવ અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવ છે. આથી કોઈને પ્રશ્ન થાય કે સમયસાર ગાથા-૧૩ માં જણાવેલ છે કે “નવ પદાર્થમાં (તત્ત્વમાં) છુપાયેલ આત્માજ્યોતિ” તે શું છે? તો તેનો ઉત્તર છે કે- તે શુદ્ધ નયે કરી પરમપારિણામિક ભાવ જ છે, આ વાત આગળ આપણે વિસ્તારથી સમજીશું.

ગાથા ૪૧૧ અન્વયાર્થ:- “નિશ્ચયથી અભિન્નપ્રદેશ હોવાથી કથંચિત્ સત્ (ધ્રુવ = દ્રવ્ય) અને પરિણામમાં અદ્વૈતતા છે તથા દીપક અને પ્રકાશની માફક સંજ્ઞા-લક્ષાદિદ્વારા ભેદ હોવાથી સત્ અને પરિણામમાં દ્વૈત પણ છે” અર્થાત્ દ્રવ્ય અને પર્યાય તે બન્ને અભિન્ન પ્રદેશી હોવાથી અભેદરૂપ છે અને લક્ષણ દ્વારા ભેદ પાડી શકાતા હોવાથી -ભેદરૂપ વ્યવહાર થતો હોવાથી ભેદરૂપ પણ છે, તેથી કથંચિત્ ભેદ-અભેદરૂપ કહેવાય છે.

ગાથા ૪૧૨ અન્વયાર્થ:- “અથવા સત્ અને પરિણામની દ્વૈતતા જળ અને તેની તરંગોની માફક અભિન્ન તથા ભિન્ન પણ છે, કારણ કે-જળ તથા કલ્લોલોમાંથી જે સમયે કલ્લોલો અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે છે તે સમયે કલ્લોલો ઉદય થાય છે તથા વિલીન થાય છે તેથી એ જળથી કથંચિત્ ભિન્ન છે, તથા જે સમયે જળની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે છે તે સમયે એ કલ્લોલો ઉદયમાન તથા વિલયમાન જ થતી નથી પણ કેવળ જળ જ જળ પ્રતીતિમાન થાય છે, તેથી એ જળથી કથંચિત્ અભિન્ન પણ છે એ પ્રમાણે સત્ (ધ્રુવ) અને પરિણામ પણ કથંચિત્ ભિન્ન તથા કથંચિત્ અભિન્ન છે.” આ જ રીત છે ત્રિકાળી ધ્રુવ ભગવાન આત્માની પ્રાપ્તિની, અન્યથા નહિ કારણ કે અન્યથા માનતાં મિથ્યાત્વનો દોષ આવે છે; હવે આગળ ઘટ અને મૃતિકાનું દ્રષ્ટાંત જણાવે છે.-

ગાથા ૪૧૩ અન્વયાર્થ:- “અથવા ઘટ અને મૃતિકાના દ્વૈતના માફક એ સત્ અને પરિણામનું દ્વૈત, દ્વૈત હોવા છતાં પણ અદ્વૈત છે કારણ કે -કેવળ માટીપણાના રૂપથી નિત્ય છે તથા કેવળ ઘટપણાના રૂપથી અનિત્ય છે.”

ગાથા ૪૧૪ અન્વયાર્થ:- “સારાંશ એ છે કે-સત્ના વિષયમાં પ્રત્યભિજ્ઞાનપ્રમાણ પ્રાપ્ત હોવાથી સત્ નિત્ય છે, જેમ કે ‘આ તે જ છે’ તથા નિયમથી ‘આ તે નથી’ એ પ્રતીતિથી સત્ નિત્ય નથી અર્થાત્ અનિત્ય છે.”

ગાથા ૫૯૧ ભાવાર્થ:- “નયોની પરસ્પર સાપેક્ષતા તે નયોના અન્યથારૂપથી ન થવાવાળા અવિનાભાવની ઘોતક (પ્રકાશક) છે, કારણ કે -જેના વિના જેની સિદ્ધ ન થાય, તેને અવિનાભાવ કહે છે અર્થાત્ સામાન્ય વિના વિશેષની તથા વિશેષ વિના સામાન્યની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી, તેથી સામાન્યને વિષય કરવાવાળો જે દ્રવ્યાર્થિક નય છે તથા વિશેષને વિષય કરવાવાળો જે પર્યાયાર્થિકનય છે તે બન્નેમાં પરસ્પર સાપેક્ષપણું છે.”

અમે અહીં દ્રવ્યગુણપર્યાયયુક્ત સત્ સ્વરૂપ વસ્તુ અર્થાત્ ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રૌવ્ય સ્વરૂપ સત્રૂપ દ્રવ્યની વ્યવસ્થા પુરેપુરી સમજાવેલ છે એમ સમજાવે, તે જેના અર્થે સમજાવેલ છે તે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનના વિષય ઉપર થોડો વિચાર કરીશું અને તેનો શાસ્ત્ર આધાર જોઈશું.





સમ્યગ્દર્શનું સ્વરૂપ

‘સમ્યગ્દર્શન’ એ મોક્ષમાર્ગના દરવાજા સમાન છે અને પૂર્ણ ભેદજ્ઞાન સ્વરૂપ સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન થયા વગર મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ શક્ય જ નથી; આવા ભેદજ્ઞાનયુક્ત-સ્વાત્માનુભૂતિયુક્ત સમ્યગ્દર્શનને જ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે અને તે જ મોક્ષમાર્ગના પ્રવેશ માટે વાસ્તવિક પરવાનો છે અને આ પરવાનો મળ્યા બાદ એ જીવ નિયમથી અર્ધ પુદ્ગલપરાવર્તન કાળમાં સિદ્ધ થઈ જ જાય છે, તેથી કરીને આ જીવનમાં સૌપ્રથમ માં પ્રથમ જો કાંઈ કરવાયોગ્ય હોય તો તે છે સમ્યગ્દર્શન.

પ્રથમ આપણે સમ્યગ્દર્શનનું સ્વરૂપ સમજીશું; સમ્યગ્દર્શન એટલે દેવ-ગુરુ-ધર્મનું સ્વરૂપ જેમ છે તેમ સમજવું, અન્યથા નહિ અને જ્યાં સુધી કોઈપણ આત્મા પોતાનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજતો નથી અર્થાત્ સ્વની અનુભૂતિ કરતો નથી ત્યાં સુધી દેવ-ગુરુ-ધર્મનું યથાર્થ સ્વરૂપ પણ જાણતો નથી પરંતુ તે માત્ર દેવ-ગુરુ-ધર્મના બાહ્ય સ્વરૂપની જ શ્રદ્ધા કરે છે અને તે તેને જ સમ્યગ્દર્શન સમજે છે પરંતુ તેવી દેવ-ગુરુ-ધર્મની બાહ્ય સ્વરૂપની જ શ્રદ્ધા યથાર્થ શ્રદ્ધા નથી અને તેથી તે નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ નથી કારણ કે જે એકને(આત્માને) જાણે છે તે સર્વેને(જીવ-અજીવ વગેરે નવ તત્ત્વો અને દેવ-ગુરુ-ધર્મનું યથાર્થ સ્વરૂપને) જાણે છે અન્યથા નહિ કારણ કે અન્યથા છે તે વ્યવહાર(ઉપચાર) કથન છે અને તેથી તે સમ્યગ્દર્શન ભવના અંત માટે કાર્યકારી નથી. અર્થાત્ એક આત્માને જાણતાં જ તે જીવ સાચા દેવ તત્ત્વનો અંશે અનુભવ કરે છે અને તેથી તે સાચા દેવને અંતરથી ઓળખે છે અને તેમ સાચા દેવને જાણતાં જ અર્થાત્ (સ્વાત્માનુભૂતિ સહિતની) શ્રદ્ધા થતાં જ તે જીવ તેવા દેવ બનવાના માર્ગે ચાલતા સાચા ગુરુને પણ અંતરથી ઓળખે છે અને સાથે-સાથે તે જીવ તેવા દેવ બનવાનો માર્ગ બતાવતા સાચા શાસ્ત્રને પણ ઓળખે છે.

માટે પ્રથમ તો શરીરને, આત્મા ન સમજવો અને આત્માને, શરીર ન સમજવું અર્થાત્ શરીરમાં આત્માબુદ્ધિ હોવી તે મિથ્યાત્વ છે; શરીર તે પુદ્ગલ (જડ) દ્રવ્યનું બનેલ છે અને આત્મા તે અલગ જ (ચેતન) દ્રવ્ય હોવાથી પુદ્ગલને આત્મા સમજવો અથવા આત્માને પુદ્ગલ સમજવું તે વિપરીત સમજણ છે. બીજી રીતે પુદ્ગલથી ભેદજ્ઞાન અને સ્વના અનુભવરૂપ જ ખરેખરું સમ્યગ્દર્શન હોય છે અને તે કર્મથી

જોવામાં આવે તો કર્મોની પાંચ/સાત પ્રકૃતિનો ઉપશમ, ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષયને સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે; પરંતુ છદ્મસ્થને કર્મોનું જ્ઞાન તો થતું નથી, માટે આપણે તો પ્રથમ કસોટીથી અર્થાત્ પુદ્ગલથી ભેદજ્ઞાન અને સ્વાનુભવરૂપ (આત્માનુભૂતિરૂપ) જ સમ્યગ્દર્શન સમજવું.

તેથી કરીને પ્રશ્ન થાય કે સમ્યગ્દર્શન કરવા માટે, શું કરવું જરૂરી છે?

ઉત્તર:- ભગવાને કહ્યું છે કે સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે તો એ વાત સમજવી જરૂરી છે. **શ્રી નિયમસારમાં** કહ્યું છે કે:-

ગાથા ૪૭ અન્વયાર્થ:- “જેવા સિદ્ધ આત્માઓ છે તેવા ભવલીન (સંસારી) જીવો છે, જેથી (તે સંસારી જીવો સિદ્ધ આત્માઓની માફક) જન્મ-મરણથી રહિત અને આઠ ગુણોથી અલંકૃત છે” આ વાત શુદ્ધ દ્રવ્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ છે કે જે સમ્યગ્દર્શનનું સ્વરૂપ સમજવા ઉપયોગી છે.

ગાથા ૪૮ અન્વયાર્થ:- “જેમ લોકાગ્રે સિદ્ધભગવંતો અશરીરી, અવિનાશી, અતિન્દ્રિય, નિર્મળ અને વિશુદ્ધાત્મા (વિશુદ્ધસ્વરૂપી) છે, તેમ સંસારમાં (સર્વ) જીવો જાણવા”

ગાથા ૧૫ અન્વયાર્થ:- “મનુષ્ય, નારક, તિર્યચ અને દેવરૂપ પર્યાયો તે વિભાવપર્યાયો કહેવામાં આવ્યા છે; કર્મોપાધિ રહિત પર્યાયો તે સ્વભાવપર્યાયો કહેવામાં આવ્યા છે.”

ગાથા ૪૯ અન્વયાર્થ:- “આ (પૂર્વોક્ત) બધા ભાવો ખરેખર વ્યવહારનયનો આશ્રય કરીને (સંસારી જીવોમાં વિદ્યમાન) કહેવામાં આવ્યા છે; શુદ્ધ નયથી સંસારમાં રહેલા સર્વ જીવો સિદ્ધ સ્વભાવી છે.”

શ્લોક ૭૩ શ્લોકાર્થ:- “શુદ્ધનિશ્ચયનયથી મુક્તિમાં તેમ જ સંસારમાં તફાવત નથી” આમ જ ખરેખર તત્ત્વ વિચારતાં (પરમાર્થ વસ્તુ સ્વરૂપનો વિચાર અથવા નિરૂપણ કરતાં) શુદ્ધ તત્ત્વના રસિક પુરુષો કહે છે.”

ગાથા ૫૦ અન્વયાર્થ:- “પૂર્વોક્ત સર્વભાવો પરસ્વભાવો છે, પરદ્રવ્ય છે, તેથી હેય છે; અંત:તત્ત્વ એવું સ્વદ્રવ્ય- આત્મા ઉપાદેય છે.”

ગાથા ૧૦૬ અન્વયાર્થ:- “આ રીતે જે સદા જીવ અને કર્મના ભેદનો અભ્યાસ કરે છે, તે સંયત નિયમથી પ્રત્યાખ્યાન ધારણ કરવાને શક્તિમાન છે.”

ગાથા ૧૦ અન્વયાર્થ:- “જીવ ઉપયોગમય છે. ઉપયોગ જ્ઞાન અને દર્શન છે. જ્ઞાનોપયોગ બે પ્રકારનો છે; સ્વભાવજ્ઞાન અને વિભાવજ્ઞાન.”

યોગસાર દોહા ૨૧ અન્વયાર્થ:- “જે જિન છે તે આત્મા છે-એ સિદ્ધાંતનો સાર છે એમ તમે સમજો. એમ સમજીને હે યોગીઓ ! તમે માયાચારને છોડો.

યોગસાર દોહા ૨૨ અન્વયાર્થ:- “જે પરમાત્મા છે તે જ હું છું અને જે હું છું તે જ પરમાત્મા છે. એમ જાણીને હે યોગી ! અન્ય વિકલ્પ ન કરો.”

ઉપર જણાવેલ ગાથાઓના સંદર્ભમાં વિચારીશું તો લાગશે કે દેખીતી રીતે તો સંસારી જીવો શરીરસ્થ છે અને સિદ્ધના જીવો મુક્ત છે, તો સંસારીને સિદ્ધ જેવા કહ્યાં, તે કઈ અપેક્ષાએ?

ઉત્તર- તે શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયની અપેક્ષાએ, જેમ કે સંસારી જીવો શરીરસ્થ હોવા છતાં, તેમનો આત્મા એક જીવત્વ રૂપ પારિણામિક ભાવરૂપ હોય છે. તે જીવત્વરૂપ ભાવ છદ્મસ્થને (અશુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયે કરી) અશુદ્ધ હોય છે અને તે અશુદ્ધ જીવત્વ ભાવ અર્થાત્ અશુદ્ધરૂપે પરિણામેલ આત્મામાંથી અશુદ્ધિને (વિભાવભાવને) ગૌણ કરતાં જ, જે જીવત્વરૂપ ભાવ શેષ રહે છે તેને જ ‘પરમપારિણામિકભાવ’, ‘શુદ્ધભાવ’, ‘શુદ્ધાત્મા’, ‘કારણપરમાત્મા’, ‘કારણશુદ્ધપર્યાય’, ‘સિદ્ધસદૃશભાવ’, ‘સ્વભાવભાવ’ વગેરે અનેક નામોથી ઓળખાય છે અને તે ભાવની અપેક્ષાએ જ સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે એમ કહેવાય છે; હવે આપણે તે જ વાત દ્રષ્ટાંતથી જોઈશું.

જેમ ડહોળાં પાણીમાં શુદ્ધ પાણી છુપાયેલ છે એવા નિશ્ચયથી જે કોઈ તેમાં ફટકડી (ક્તકફળ = ALUM) ફેરવે છે તો અમુક સમય બાદ તેમાં (પાણીમાં) રહેલ ડહોળરૂપ માટી તળીયે બેસી જવાથી, પૂર્વનું ડહોળું પાણી સ્વચ્છરૂપ જણાય છે. તેવી જ રીતે, જે અશુદ્ધરૂપ (રાગ-દ્વેષરૂપ) પરિણામેલ આત્મા છે તેમાં, વિભાવરૂપ અશુદ્ધભાવને પ્રજ્ઞાછીણીથી = બુદ્ધિપૂર્વક ગૌણ કરતાં જ જે શુદ્ધાત્મા ધ્યાનમાં આવે છે અર્થાત્ જ્ઞાનમાં વિકલ્પરૂપે આવે છે, તેને ભાવભાસન કહે છે અને તે શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ થતાં જ જીવને સમ્યગ્દર્શન થાય છે અર્થાત્ તે જીવ તે શુદ્ધઆત્મરૂપમાં (સ્વભાવમાં = સ્વરૂપમાં) ‘હું પણું’ કરતાં જ, કે જે પહેલા શરીરમાં ‘હું પણું’ કરતો હતો, તે જીવને સમ્યગ્દર્શન થાય છે; આ રીત છે સમ્યગ્દર્શનની અર્થાત્ ‘જે જીવ રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામેલ હોવાં છતાં પણ માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ (દ્રવ્યાત્મામાં જ = સ્વભાવમાં જ) ‘હું પણું’ (એકત્વ) કરે છે અને તેનો જ અનુભવ કરે છે, તે જ જીવ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે અર્થાત્ તે જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે.’

બીજું દ્રષ્ટાંત- જેમ દર્પણમાં (અરીસામાં) અલગ અલગ જાતનાં અનેક પ્રતિબિંબો હોય છે પરંતુ તે પ્રતિબિંબોને ગૌણ કરતાં જ સ્વચ્છ દર્પણ દ્રષ્ટિમાં આવે છે તેવી જ રીતે આત્મામાં અર્થાત્ જ્ઞાનમાં જે જ્ઞેય હોય છે તે જ્ઞેયોને ગૌણ કરતાં જ નિર્વિકલ્પરૂપ જ્ઞાન નો અર્થાત્ “શુદ્ધાત્મા” નો અનુભવ થાય છે; આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે, આ જ રીતથી અશુદ્ધ આત્મામાં પણ સિદ્ધ સમાન, શુદ્ધાત્મા નો નિર્ણય કરવો અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતાં, સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે.

કોઈ એવું માનતાં હોય કે દ્રવ્યમાં શુદ્ધભાગ અને અશુદ્ધભાગ એવા બે ભાગ છે અને જે શુદ્ધભાગ છે તે દ્રવ્ય છે અને અશુદ્ધભાગ છે તે પર્યાય છે તો દ્રવ્યમાં અપેક્ષાએ સમજતાં બે ભાગ નહીં પરંતુ બે ભાવ છે કે જે વાત અમે પ્રથમ જ શાસ્ત્રની ગાથાઓથી નિઃસંદેહ સાબિત કરેલ જ છે. તે બે ભાવ એવી રીતે છે કે જે વિશેષ છે, તે પર્યાય કહેવાય છે કે જે વિભાવભાવ સહિત હોવાથી અશુદ્ધ કહેવાય છે અને જે તેનો

જ સામાન્યભાવ છે કે જે પરમપારિણામિકભાવ રૂપ છે, તે દ્રવ્ય કે જે ત્રિકાળ શુદ્ધ જ હોય છે; એ અપેક્ષાએ દ્રવ્ય શુદ્ધ અને પર્યાય અશુદ્ધ એમ કહેવાય પરંતુ બે ભાગરૂપ નહીં.

જેમ છદ્મસ્થ જીવોને આત્માના દરેક પ્રદેશે અનંત અનંત કાર્મણ વર્ગણાઓ છે અને તે કાર્મણ વર્ગણાઓ આત્માના સર્વે પ્રદેશો સાથે ક્ષીર-નીરવત (દૂધમાં પાણીની માફક) સંબંધથી બંધાયેલી હોવાની અપેક્ષાએ આત્માનો કોઈપણ પ્રદેશ શુદ્ધ નથી. અર્થાત્ જો કોઈ એમ કહે કે આત્માના મધ્યના આઠ સ્થક પ્રદેશ તો નિરાવરણ જ હોય છે, તો તેઓને અમે જણાવીએ છીએ કે જો આત્માનો માત્ર એકપણ પ્રદેશ નિરાવરણ હોયતો, તે પ્રદેશમાં એટલી શક્તિ છે કે તે સર્વ લોકાલોક જાણી લે કારણ જો એક પણ પ્રદેશ નિરાવરણ હોયતો તે પ્રદેશે કેવળજ્ઞાન અને કેવળદર્શન માનવાનો પ્રસંગ આવશે અને તેથી કરીને તે આત્મા સર્વ લોકાલોક સહજ રીતથી જ જાણતો થઈ જશે. પરંતુ પ્રગટમાં જોતાં આપણને જણાય છે કે એવું તો કોઈ જ જીવમાં ઘટતું જણાતું નથી, આથી કરીને જીવના મધ્યના આઠ સ્થક પ્રદેશ નિરાવરણ હોય છે, તે વાતનું નિરાકરણ થાય છે, તે વાત સત્ય નથી; જેનું પ્રમાણ છે ધવલા પુસ્તક ૧૨માં-પૃષ્ઠ ૬માંક ૩૬૫ થી ૩૬૮, તે જ્ઞાસુ જીવોને જોઈ લેવા અમારી વિનંતિ છે.



૧૦

સમ્યગ્દર્શનનો વિષય અર્થાત્ દ્રષ્ટિનો વિષય

હવે આપણે જ્ઞેયું કે છન્નસ્થ આત્માના પ્રત્યેક પ્રદેશે અનંત કર્મવર્ગણાઓ હોવાથી તે અશુદ્ધ આત્મા તરીકે જ પરિણમેલ હોય છે, તો તેમાં આ શુદ્ધાત્મા ક્યાં રહે છે? તેનો ઉત્તર એમ છે કે- બેદજ્ઞાનથી (પ્રજ્ઞાછીણીથી) અર્થાત્ જીવ અને પુદ્ગલ વચ્ચેના બેદજ્ઞાનથી અર્થાત્ જીવના લક્ષણથી જીવને ગ્રહણ કરવો અને પુદ્ગલના લક્ષણથી પુદ્ગલને અને પછી તેમાં પ્રજ્ઞારૂપીછીણીથી (તીવ્ર બુદ્ધિથી) બેદજ્ઞાન કરતાં શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત થાય છે.

તે એવી રીતે કે પ્રથમ તો પ્રગટમાં આત્માના લક્ષણથી એટલે જ્ઞાનરૂપ જ્ઞેવા-જ્ઞણવાના લક્ષણથી આત્માને ગ્રહણ કરતાં જ, પુદ્ગલમાત્ર સાથે બેદજ્ઞાન થઈ જાય છે અને પછી તેનાથી આગળ વધતા જીવના જે ચારભાવો છે અર્થાત્ ઉદયભાવ, ઉપશમભાવ, ક્ષયોપશમભાવ અને ક્ષાયિકભાવ તે ચાર ભાવો કર્મની અપેક્ષાથી કહ્યા છે અને કર્મો પુદ્ગલરૂપ જ હોય છે; તેથી તે ચારભાવોને પણ પુદ્ગલનાં ખાતામાં નાંખી, પ્રજ્ઞારૂપ બુદ્ધિથી અર્થાત્ તે ચાર ભાવોને જીવમાંથી ગૌણ કરતાં જ, જે જીવભાવ શેષ રહે છે તેને જ પરમપારિણામિકભાવ, શુદ્ધાત્મા, કારણશુદ્ધપર્યાય, સ્વભાવભાવ, સહજજ્ઞાનરૂપી સામ્રાજ્ય, શુદ્ધ ચૈતન્યભાવ, સ્વભાવદર્શનોપયોગ, કારણસ્વભાવદર્શનોપયોગ, કારણસ્વભાવજ્ઞાનોપયોગ, કારણસમયસાર, કારણ-પરમાત્મા, નિત્યશુદ્ધ નિરંજનજ્ઞાનસ્વરૂપ, દર્શનજ્ઞાનચારિત્રારૂપે પરિણમતું એવું ચૈતન્યસામાન્યરૂપ, ચૈતન્ય-અનુવિધાયી પરિણામરૂપ, સહજગુણમણિની ખાણ, સમ્યગ્દર્શનનો વિષય (દ્રષ્ટિનો વિષય) વગેરે અનેક નામોથી ઓળખાય છે અને તેના અનુભવે જ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે. તે ભાવની અપેક્ષાએ જ સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે એમ કહેવાય છે અર્થાત્ તેના અનુભવને જ નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિ કહેવાય છે કારણ કે તે સામાન્યભાવ સ્વરૂપ હોવાથી તેમાં કોઈ જ વિકલ્પને સ્થાન જ નથી તેથી તેની અનુભૂતિ થતાં જ અંશે સિદ્ધત્વનો પણ અનુભવ થાય છે.

બેદજ્ઞાનની રીત આવી છે કે જેમાં જીવનાં જે ચારભાવોને ગૌણ કર્યા અને જે શુદ્ધ જીવત્વ હાજર થયું તે અપેક્ષાએ તેને કોઈ ‘પર્યાય રહિતનું દ્રવ્ય તે દ્રષ્ટિનો વિષય છે’ એમ પણ કહે છે. અર્થાત્ દ્રવ્યમાંથી કાંઈ જ કાઢવાનું નથી માત્ર વિભાવભાવોને જ ગૌણ કરવાના છે અને તે અપેક્ષાએ કોઈ કહે છે કે ‘વર્તમાન

પર્યાય સિવાયનું આખું દ્રવ્ય તે દ્રષ્ટિનો વિષય છે' અર્થાત્ કથન કોઈપણ હોય પરંતુ વ્યવસ્થા તો અત્રે જણાવેલ છે તેવી, અર્થાત્ ગૌણ કરવાની અને મુખ્ય કરવાની જ છે કે જે પૂર્વે આપણે વિસ્તારથી સમજ્યા જ છીએ.

તેવી જ રીતે જો કોઈ કહે કે- આત્મા બહારથી અશુદ્ધ અને અંદરથી શુદ્ધ તો તેવું કથન અપેક્ષાએ સમજવું, એકાંતે અર્થાત્ વાસ્તવિક રૂપ નહીં કારણ કે જેવો આત્મા બહાર છે તેવો જ અંદર છે, અર્થાત્ આત્માના અંદરના અને બહારના પ્રત્યેક પ્રદેશે (ક્ષેત્રે) અનંતાનંત કાર્માણવર્ગાણાઓ ક્ષીર-નીરવત લાગેલી હોવાથી, જેવી અશુદ્ધિ બહારના ક્ષેત્રે છે તેવી જ અશુદ્ધિ અંદરના ક્ષેત્રે પણ છે. પરંતુ અપેક્ષાએ બહાર એટલે વિશેષભાવરૂપ વિભાવભાવ અને અંદર એટલે સામાન્યભાવરૂપ પરમપારિણામિક ભાવ કે જે ત્રણે કાળે શુદ્ધ જ છે અને તેથી જ વ્યક્તરૂપ આત્મા અશુદ્ધ અને અવ્યક્તરૂપ આત્મા શુદ્ધ છે અને તે અપેક્ષાએ અંદરથી શુદ્ધ અને બહારથી અશુદ્ધ એમ કહી શકાય, અન્યથા નહિ. કોઈ આત્મામાં અંદર એકાંત શુદ્ધ ધ્રુવભાવ શોધતું હોય તો, તેવો એકાંત શુદ્ધ ધ્રુવભાવ આત્મામાં નથી અર્થાત્ કોઈપણ કથન તેની અપેક્ષા સહિત સમજવું અનિવાર્ય છે, નહિ તો એવું માનવાવાળા નિયમથી ભ્રમરૂપ જ પરિણમશે.

તેવી જ રીતે અન્ય કોઈ કહે કે આપ તો દ્રષ્ટિના વિષયમાં પ્રમાણનું દ્રવ્ય લો છો તો દોષ આવશે, તેઓને અમે જણાવીએ છીએ કે પૂર્વે અમે વિસ્તારથી સમજાવ્યા અનુસાર, જેટલા પ્રદેશો (ક્ષેત્ર) પ્રમાણના દ્રવ્યના છે તેટલા જ પ્રદેશો (ક્ષેત્ર) પરમપારિણામિકભાવ રૂપ દ્રષ્ટિના વિષયના છે અર્થાત્ તેટલા જ પ્રદેશો શુદ્ધાત્માના છે. બીજું, તે પ્રમાણના દ્રવ્યને જ અમે શુદ્ધ દ્રવ્યાયાર્થિકનયના ચક્ષુથી જોઈએ છીએ અને તેથી જ અમે તેને જ પરમપારિણામિકભાવ કહીએ છીએ કે જેને આપ પ્રમાણચક્ષુથી જોતાં, પ્રમાણનો વિષય કહો છો અને તે પ્રમાણના વિષયમાં આપ શુદ્ધ અને અશુદ્ધ એવા ભાવ નહિ પરંતુ ભાગ માનો છો, તેથી આપની દ્રષ્ટિમાં દોષ છે, તો તેમાં અમારો કોઈ દોષ નથી. અમે તો તેને જ અર્થાત્ પ્રમાણના દ્રવ્યને જ શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયે કરી તેને જ પરમ શુદ્ધ એવો પરમપારિણામિકભાવરૂપ અનુભવીએ છીએ અને પરમસુખનો અનુભવ કરીએ છીએ. તો તેથી કરીને આપ પણ દ્રષ્ટિ બદલીને તેને જ શુદ્ધ જુઓ અને આપ પણ તેનો અર્થાત્ સત્-ચિત્-આનંદ સ્વરૂપનો આનંદ લો, એવી અમારી વિનંતી છે; આ જ સમ્યગ્દર્શનનું સ્વરૂપ છે અને આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે.

આ કારણથી અમારો આગ્રહ છે કે 'જેમ છે તેમ' વસ્તુવ્યવસ્થા સમજીને પ્રમાણના વિષયનું 'જેમ છે તેમ' જ્ઞાન કરીને પછી તેમાંથી જ શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયનો વિષય ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે. પરંતુ જે અત્રે જણાવેલ યુક્તિ અનુસાર દ્રષ્ટિનો વિષય ન માનતાં, અન્યથા ગ્રહણ કરે છે તે શુદ્ધનયાભાસરૂપ એકાંત શુદ્ધાત્મા ને શોધે છે અને માને છે, તે માત્ર ભ્રમરૂપ જ પરિણમે છે અને તેવો એકાંત શુદ્ધાત્મા કાર્યકારી નથી કારણ તેવો એકાંત શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત જ થતો નથી અને તેથી કરીને તે જીવ ભ્રમમાં જ રહીને અનંત

સંસાર વધારીને અનંત દુઃખોને પ્રાપ્ત કરે છે; જૈન શાસનનાં નયના અજ્ઞાનના કારણે અને સમજ્યા વગર માત્ર શબ્દને જ ગ્રહણ કરી તેના જ આગ્રહને કારણે આવી દશા થાય છે જે અત્યંત કરુણાજનક વાત છે.

અત્રે સમજવેલ શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયનો વિષય છે તે જ ઉપાદેયરૂપ શુદ્ધાત્મા છે અને તે જ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે તેથી જ અર્થાત્ ભેદજ્ઞાન કરાવવા અને શુદ્ધાત્માનો અનુભવ કરાવવા માટે જ નિયમસાર અને સમયસાર જેવાં આધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોમાં તેનો જ મહિમા ગાયેલ છે અને તેનું જ મહિમામંડન કરેલ છે. તેથી તે શાસ્ત્રોમાં પ્રમાણના વિષયરૂપ આત્મામાંથી જેટલા ભાવો પુદ્ગલ આશ્રિત છે અર્થાત્ જેટલા ભાવો કર્માશ્રિત (કર્મની અપેક્ષા રાખવાવાળા) છે તેવા ભાવોને પરભાવ તરીકે વર્ણવ્યા છે અર્થાત્ તેઓને સ્વાંગરૂપભાવો તરીકે વર્ણવ્યા છે કે જે ભાવો હેય છે અર્થાત્ ‘હું પણું’ કરવા યોગ્ય નથી, આ જ અપેક્ષાસહિત હવે આપણે પંચાધ્યાયીની ગાથાઓ જોઈશું.



૧૧

‘પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધ’ની દ્રષ્ટિનો વિષય દર્શાવતી ગાથાઓ

ગાથા ૫૩૨ અન્વયાર્થ:- “આ અસદ્ભૂતવ્યવહારનયને જાણવાનું ફળ એ છે કે અહીં પરાશ્રિતપણે થવાવાળા ભાવક્રોધાદિ સંપૂર્ણ ઉપાધિમાત્ર છોડી બાકીના તેના (જીવના) શુદ્ધગુણો છે એમ માનીને અહીં કોઈ પુરુષ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થઈ શકે.” આ ગાથામાં સમ્યગ્દર્શનનો વિષય જણાવેલ છે અને તેના ભાવવાથી જીવ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થઈ શકે છે તેમ જણાવેલ છે.

ભાવાર્થ:- “આ અસદ્ભૂતવ્યવહારનયનું પ્રયોજન એ છે કે -રાગાદિભાવને જીવના કલ્યાણ છે તે અસદ્ભૂત વ્યવહારનયથી છે પણ નિશ્ચયથી નહિ [નિશ્ચયથી જે ભાવ જેના લક્ષે થાય તે ભાવ તેનો સમજવો, તેથી જે દ્રવ્યરાગાદિભાવ પુદ્ગલરૂપ છે તે કર્મના છે અને ભાવરાગાદિભાવ છે તે જીવના હોવા છતાં, તે કર્મના ઉદયને કારણે હોવાથી તેને કર્મના ખાતામાં નાખી, નિશ્ચયથી તેને પરભાવ કહેવાય છે કારણ કે તે ભાવો સમ્યગ્દર્શન માટે ‘હું પણું’(એકત્વ) કરવા યોગ્ય ભાવો નથી], આથી કોઈ ભવ્યાત્મા ઉપાધિમાત્ર અંશને છોડી (આ ઉપાધિરૂપ અંશ છોડવાની રીત પ્રજ્ઞારૂપ બુદ્ધિથી તેને ગૌણ કરવાની છે બીજી કોઈ નહિ) નિશ્ચયતત્ત્વને ગ્રહણ કરવાનો ઇચ્છક બની સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થઈ શકે છે, કારણ કે સર્વ નયોમાં નિશ્ચયનય જ ઉપાદેય છે પણ બાકીના કોઈ નય નહિ. બાકીના નયો તો માત્ર પરિસ્થિતિવશ પ્રતિપાદ્યવિષયનું નિરૂપણમાત્ર કરે છે તેથી એક નિશ્ચયનય જ કલ્યાણકારી છે.....”

ગાથા ૫૪૫ અન્વયાર્થ:- “જ્ઞેય-જ્ઞાયકમાં સંભવ થવાવાળા સંકરદોષના ભ્રમને ક્ષય કરવો અથવા અવિનાભાવથી સામાન્યને સાધ્ય અને વિશેષને સાધક થવું એ જ આ ઉપચરિત સદ્ભૂતવ્યવહારનયનું પ્રયોજન છે.”

અર્થાત્ પરને જાણતાં સંકરદોષ થાય છે એવા ભ્રમનો નાશ કરવો તે પ્રયોજન છે અને સાથે-સાથે તેમ પણ જણાવેલ છે કે પરને જાણવું તે સ્વમાં જવાની સીડી છે કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે. અર્થાત્ પરને જાણવું તે સમ્યગ્દર્શન થવામાં મદદરૂપ થઈ શકે છે નહિ કે અડચણરૂપ અને માટે કોઈએ ‘પરને જાણતાં આત્મા મિથ્યાદ્રષ્ટિ થઈ જશે’ એવું માનવાને કોઈ કારણ નથી કારણ કે તે જ જ્ઞાનનો સ્વભાવ છે. જેમ સ્વામિકાન્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગાથા ૨૪૭માં જણાવેલ છે કે- “જે બધીય વસ્તુ એક જ્ઞાન જ છે અને

તે જ નાનારૂપથી સ્થિત છે- રહે છે તો એમ માનતાં જ્ઞેય કાંઈ પણ ન ઈર્ષ્યું, અને જ્ઞેય વિના જ્ઞાન જ કેવી રીતે ઠરશે?” ભાવાર્થ- “..... કારણ કે જ્ઞેયને જાણે તે જ જ્ઞાન કહેવાય છે પણ જ્ઞેય વિના જ્ઞાન નથી.”

ભાવાર્થ:- “ઉપચરિતસદ્ભૂતવ્યવહારનયનની અપેક્ષાએ અર્થ વિકલ્પને પ્રમાણ (અર્થાત્ સ્વ-પર ને જાણવાને પ્રમાણ) કહેવાનું પ્રયોજન આ છે કે-એમ કહેવાથી જ્ઞાન અને જ્ઞેયમાં જે સંકરપણાંનો ભ્રમ થતો હતો (અર્થાત્ જેઓને લાગે છે કે આત્મા પરને જાણે છે એમ માનતાં સમ્યગ્દર્શન નહિ થાય, તેવો સંકરપણાંનો ભ્રમ થાય છે) તે ભ્રમનું આ નિવારણ થઈ જાય છે, કારણ કે -જ્ઞાનને અર્થવિકલ્પાત્મક (પરને જાણવાવાળું) કહેવું એ ઉપચરિત સદ્ભૂતવ્યવહારનયની અપેક્ષાથી છે. જ્ઞાન, જ્ઞાયક છે તથા સ્વપર, જ્ઞેય થાય છે તેથી જ્ઞાન અને જ્ઞેયમાં વાસ્તવમાં સંકરતાં થતી નથી (પૂર્વે જેમ અરીસાનું દ્રષ્ટાંત સમજાવ્યું છે તે પ્રમાણે) બીજું પ્રયોજન આ પ્રમાણે છે કે- અર્થવિકલ્પાત્મક વિશેષ જ્ઞાન (પરને જાણવું) સાધક (અર્થાત્ સ્વમાં જવાની સીડી) છે તથા સામાન્ય જ્ઞાન સાધ્ય છે (અર્થાત્ પરને જાણવું તે જ્ઞાયકમાં જવાની સીડી છે યાને કે સમ્યગ્દર્શન કરવા માટેની તે રીત અરીસાના દ્રષ્ટાંતની જેમ જ છે). અર્થાત્ સામાન્યજ્ઞાન, અનુપચરિત સદ્ભૂતવ્યવહારનયનો વિષય સાધ્ય (અર્થાત્ જ્ઞાયક અર્થાત્ પરમપારિણામિક ભાવ, દ્રષ્ટિનો વિષય સાધ્ય) તથા જ્ઞાનને અર્થવિકલ્પાત્મક (અર્થાત્ જ્ઞાન પરને જાણે છે એમ) કહેવું એ ઉપચરિત સદ્ભૂતવ્યવહારનયનો વિષય સાધક (સીડી) છે.”

અત્રે વિશેષ એ છે કે તેથી જ ભેદજ્ઞાન માટે, સમ્યગ્દર્શન માટે કહી શકાય કે-જેમ કોઈ મહેલના ઝરુખામાંથી નિહાળતો પુરુષ, પોતે જ જ્ઞેયો ને નિહાળે છે નહિ કે ઝરુખો; તે જ રીતે આ ઝરુખારૂપી આંખથી જે જ્ઞેયોને નિહાળે છે, તે જ્ઞાયક પોતે જ નહિ કે આંખો અને “તે જ હું છું” “સોહં”, તે “જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપ જ હું છું” અર્થાત્ હું માત્ર જોવા-જાણવાવાળો જ્ઞાયક-જ્ઞાનમાત્ર-શુદ્ધાત્મા છું, આમ લક્ષમાં લેતાં જ્ઞાયકરૂપ સામાન્યજ્ઞાન સાધ્ય થાય છે અને પરને જાણવું તે સાધન (સીડી) રૂપ થાય છે કે જે અર્થવિકલ્પાત્મક જ્ઞાન છે; આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે. જીવને પરને જાણવાવાળો કહીને તેમાંથી પ્રયોજન સિદ્ધ કર્યા બાદ હવે જીવને ક્રોધાદિવાળો કહેવાથી શું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે, તે જણાવે છે અર્થાત્ રાગ જીવમાં થાય છે તેનાથી શું પ્રયોજન છે? -

ગાથા પદ્ય અન્વયાર્થ:- “(વર્ણાદિભાવો જીવના છે) એ પ્રકારનું કહેવું બરાબર નથી કારણ કે જેવી રીતે ક્રોધાદિભાવો (રાગાદિભાવો) જીવના સંભવે છે તેવી રીતે પુદ્ગલાત્મક શરીરના વર્ણાદિક જીવના સંભવી શક્તા જ નથી.”

આપણે જે સમ્યગ્દર્શન માટે ભેદજ્ઞાનની વિધિ સમજ્યા કે- પ્રથમ પુદ્ગલથી ભેદજ્ઞાન અને પછીથી જીવના રાગાદિરૂપ ભાવો કે જે કર્મ = પુદ્ગલ આશ્રિત છે, તેનાથી ભેદજ્ઞાન અને તે ભેદજ્ઞાન પછી જ શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત થાય છે. તેથી જ અહીં જણાવ્યું છે કે શરીરના વર્ણાદિભાવો તો આત્માના છે જ નહિ

પણ જે રાગાદિભાવો છે તે (ભાવરાગાદિભાવો) તો જીવમાં જ થાય છે અર્થાત્ જીવ જ તે રૂપ પરિણામે છે, જીવ કર્મના નિમિત્તે તે રૂપે પરિણામે છે, તેથી જો ભાવરાગાદિભાવો જીવના કહીએ તો કહી શકાય, તેનાથી શું પ્રયોજન સિદ્ધ થાય છે?

ભાવાર્થ:- “(ક્રોધાદિભાવોને જીવના કહેવા તે ન્યાભાસ જ છે તેવી) ઉપર કહેલી શંકા બરાબર નથી કારણ કે -તે ક્રોધાદિભાવ તો જીવમાં થનારા ઔદાયિકભાવરૂપ છે તેથી તે જીવના તદ્દગુણ (જીવનું જ પરિણામન) છે; અને તે જીવનો નૈમિત્તિકભાવ હોવાથી તેને સર્વથા પુદ્ગલનો કહી શકાતો નથી, પણ જીવને વર્ણાદિવાળો કહેવામાં આવે ત્યાં તો વર્ણાદિક સર્વથા પુદ્ગલના જ હોવાથી તેને જીવના કઈ રીતે કહી શકાય?

વળી ક્રોધાદિભાવોને જીવના કહેવામાં તો આ પ્રયોજન છે કે-પરલક્ષે થનારા ક્રોધાદિભાવો ક્ષણિક હોવાથી અને આત્માનો સ્વભાવ નહિ હોવાથી તે ઉપાદેય નથી માટે તેને ટાળવા જોઈએ, આવું સમ્યક્જ્ઞાન થાય છે તેથી (પરંતુ જે લોકો એકાંતે શુદ્ધતાના ભ્રમમાં હોય છે તેઓ ક્રોધાદિ કરવા છતાં, તેને પોતાના નહિ માનીને સ્વચ્છંદી થાય છે તે સમ્યક્જ્ઞાન નથી પણ મિથ્યાત્વ છે) ક્રોધને જીવનો કહેવો તેમાં તો ઉપર્યુક્ત સમ્યક્નય લાગુ પડી શકે છે (અર્થાત્ જે તેને એકાંતે પરના માને છે તે મિથ્યાત્વી છે), પરંતુ જીવને વર્ણાદિવાળો કહેવામાં તો કાંઈ પણ પ્રયોજનની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી, માટે જીવને ક્રોધાદિવાળો કહેનારા અસદ્ભૂતવ્યવહારનયમાં તો ન્યાભાસપણાનો દોષ આવતો નથી પણ જીવને વર્ણાદિવાળો કહેવામાં તો તે દોષ આવે છે તેથી તે ન્યાભાસ છે.”

અમે પૂર્વે સમ્યગ્દર્શનની રીત વિશે ચર્ચા કરતી વખતે જે નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન જણાવેલ તે જ ભાવ વિશેષ સ્પષ્ટ કરતાં આગળ જણાવે છે કે- ત્યારે ત્યાં કોઈપણ નયનું અવલંબન નથી-

ગાથા ૬૪૮ અન્વયાર્થ:- “તે સ્વાનુભૂતિનો મહિમા આ પ્રમાણે છે કે -વ્યવહારનયમાં ભેદ દર્શાવાનારા વિકલ્પો ઉઠે છે અને તે નિશ્ચયનય સર્વ પ્રકારના વિકલ્પોને નિષેધ કરવાવાળો હોવાથી (નેતિ-નેતિ રૂપ હોવાથી) એક પ્રકારથી તેમાં નિષેધાત્મક વિકલ્પ થાય છે, તથા વાસ્તવિકપણે જોવામાં આવે તો સ્વસમયસ્થિતિમાં (સ્વાનુભૂતિમાં) ન (વ્યવહારનયનો વિષયભૂત) વિકલ્પ છે કે ન (નિશ્ચયનયનો વિષયભૂત) નિષેધ છે, પરંતુ કેવળ ચેતનાનું સ્વાત્માનુભવન છે”

અમુક લોકો પ્રશ્ન કરે છે કે નિષેધ વગરનો દ્રષ્ટિનો વિષય કઈ રીતે હોય? તો તેઓ ને અમે જણાવીએ છીએ કે- દ્રષ્ટિના વિષયમાં ન ભેદરૂપ વિકલ્પ છે (અર્થાત્ અભેદ દ્રવ્યનું ગ્રહણ છે) અને ન તો નિષેધરૂપ વિકલ્પ છે અર્થાત્ જેનો (અશુદ્ધ ભાવોનો = વિભાવભાવોનો) નિષેધ કરવાનો હોય છે, તેના ઉપર દ્રષ્ટિ જ નથી તેથી જ તેઓ, અત્યંત ગૌણ થઈ જાય છે અને દ્રષ્ટિ, માત્ર દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા ઉપર જ હોય છે કે જે નિર્વિકલ્પ જ હોય છે અને તે જ સમ્યગ્દર્શનની વિધિ છે; તેથી કહી શકાય કે નિષેધ ન કરતાં, તેના ઉપરથી દ્રષ્ટિ જ હટાવી લેવાની છે. આ છે વિધિ- સમ્યગ્દર્શનની, તેથી જેને નિષેધનો આગ્રહ હોય તેઓએ તે છોડી દેવો કારણ કે નિષેધ એ પણ નિશ્ચયનયનો પક્ષ છે જ્યારે સમ્યગ્દર્શનનો

વિષય પક્ષાતિત છે, નયાતિત છે તેથી દરેક પ્રકારનો પક્ષ અને આગ્રહ છોડ્યા વગર સમ્યગ્દર્શન થવું જ શક્ય નથી.

બીજું સમજવાનું એ છે કે વસ્તુ જેમ છે તેમ સમજવી પડશે અર્થાત્ આત્મામાં રાગાદિ થાય છે, તો તે કઈ અપેક્ષાએ અને નિયમસાર અને સમયસાર જેવાં અધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોમાં જે એમ લખ્યું છે કે તે રાગાદિક જીવનાં નથી તો તે પણ કોઈ અપેક્ષાએ જ જણાવેલ છે, એકાંતે નહિ; તે માત્ર સમ્યગ્દર્શનના વિષય ઉપર દ્રષ્ટિ કરાવવા અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન કરાવવા જ જણાવેલ છે; કોઈ તેને એકાંતે લઈને સ્વચ્છંદે પરિણમે તો તે તેમની મહાન ભૂલ છે કે જેનું ફળ અનંત સંસાર છે તે જ વાત આગળ જણાવે છે.

ગાથા ૬૬૩ અન્વયાર્થ:- “તથા અહીં કેવળ સામાન્યરૂપ વસ્તુ (પરમપારિણામિકભાવ) નિશ્ચયથી નિશ્ચયનયનું કારણ છે તથા કર્મરૂપ કલંકથી રહિત જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માની (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માની) સિદ્ધિ ફળ છે.”

તેથી સમજવાનું એ છે કે આવા અધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોનો કોઈપણ વસ્તુને એકાંતે પ્રરૂપવાનો આશય જરા પણ નથી અને તેથી તેને એકાંતે તેમ ન લેવું પરંતુ તેનો આશય માત્ર સમ્યગ્દર્શનનો જે વિષય છે તે આત્મભાવમાં (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મામાં-કારણશુદ્ધપર્યાયમાં-કારણપરમાત્મામાં) ‘હું પણું’ કરાવવું અને અન્ય સર્વે ભાવોમાંથી ‘હું પણું’ ના જે ભાવો છે કે જે બંધનના કારણ છે તે દૂર કરવાં, અર્થાત્ જીવને તે બંધના કારણોમાં અથવા બંધના ફળમાં ‘હું પણું’ કરતો અટકાવવો અને પરમપારિણામિકભાવરૂપ જીવમાં ‘હું પણું’ કરાવીને તેને સમ્યગ્દર્શની બનાવવો, મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ અપાવવો. માત્ર તે જ અપેક્ષાએ આ શાસ્ત્રોમાં રાગાદિ વગેરે ભાવો જીવના નથી એમ જણાવેલ છે, તેને તેમ એકાંતે ન સમજવું; જે કોઈ તેને એકાંતે તેમ સમજે અને પ્રરૂપે તો તેને જૈન સિદ્ધાંતની બહાર જ સમજવો અર્થાત્ મિથ્યાત્વી જ સમજવો. સમ્યગ્દર્શન પછી સમ્યક્જ્ઞાન કેવું હોય છે તે જણાવે છે:-

ગાથા ૬૭૩ અન્વયાર્થ:- “એકસાથ સામાન્ય વિશેષને વિષય કરવાવાળું જ્ઞાન સમ્યક્જ્ઞાન કહેવાય છે કારણ કે જ્ઞાન આદર્શ (દર્પણ) સમાન છે તથા જ્ઞેય, પ્રતિબિંબ સમાન છે.”

ભાવાર્થ:- “જેમ દર્પણ અને દર્પણમાં રહેલા પ્રતિબિંબનો યુગપત્ પ્રતિભાસ થાય છે. તે જ પ્રમાણે સામાન્ય-વિશેષ ને યુગપત્ વિષય કરવાવાળું જ્ઞાન, સમ્યક્જ્ઞાન કહેવાય છે, અન્ય નહીં; (અર્થાત્ કોઈ કહે કે આત્મા પરને જાણતો નથી એવી વ્યવસ્થા હોવાથી આત્મા પરને જાણે છે એમ કહેવું મિથ્યાત્વ સમાન છે, તો અત્રે જણાવે છે કે તે, તેમ નથી) કારણ કે જ્ઞાનને દર્પણ સમાન (અર્થાત્ જે કોઈ કહે કે જ્ઞાન પરને જાણે છે એવું ન લેવું તો તેઓને અત્રે જણાવે છે કે જે તેમ લેવામાં આવે તો, જ્ઞાનની જ સિદ્ધિ નહિ થાય) તથા તેમાં રહેલા વિષય ને (અર્થાત્ જ્ઞેયને) પ્રતિબિંબ સમાન માનવામાં આવ્યો છે.----”



૧૨

આત્મજ્ઞાનરૂપ સ્વાત્માનુભૂતિ પરોક્ષ કે પ્રત્યક્ષ

કોઈને પ્રશ્ન થાય કે જે સ્વાત્માનુભૂતિનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું કે જે નિશ્ચયસમ્યગ્દર્શન છે, તે પ્રત્યક્ષ છે કે પરોક્ષ છે અને તે કયા પ્રકારના ક્ષયોપશમિક જ્ઞાનથી થાય છે? તેના ઉત્તરરૂપ પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૭૦૬ અન્વયાર્થ:- “તથા વિશેષમાં આ છે કે સ્વાત્માનુભૂતિના વખતમાં જેટલા પ્રથમનાં તે મતિજ્ઞાન અને શ્રુતજ્ઞાન એ બે રહે છે તેટલાં, તે બધાંય સાક્ષાત્ પ્રત્યક્ષની માફક પ્રત્યક્ષ છે, અન્ય એટલે પરોક્ષ નથી.”

ભાવાર્થ:- “તથા એ મતિ અને શ્રુતજ્ઞાનોમાં પણ આટલી વિશેષતા છે કે- (પહેલાં આ બન્ને જ્ઞાનને પરોક્ષ તરીકે પ્રતિપાદિત કરેલ છે તેથી હવે તેની વિશેષતા જણાવે છે અર્થાત્ અપવાદ જણાવે છે). જે સમયે એ બન્નેમાંથી કોઈ એક જ્ઞાનદ્વારા સ્વાત્માનુભૂતિ થાય છે તે સમયે એ બન્ને જ્ઞાન પણ અતિન્દ્રિયસ્વાત્માને પ્રત્યક્ષ કરે છે તેથી તે બન્ને જ્ઞાન પણ સ્વાત્માનુભૂતિના સમયમાં પ્રત્યક્ષરૂપ છે પણ પરોક્ષ નથી.”

અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન એ અનંતાનુબંધી કષાય ચોકડી અને દર્શનમોહના ઉપશમ, ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષયથી થાય છે, પરંતુ તેની સાથે જ નિયમથી સમ્યક્જ્ઞાનરૂપ શુદ્ધોપયોગ ઉત્પન્ન થતો હોવાથી તે શુદ્ધોપયોગ ને જ સ્વાત્માનુભૂતિ કહેવાય છે કે જે જ્ઞાનાવરણીયના ક્ષયોપશમરૂપ હોય છે અને તે શુદ્ધોપયોગ અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિ વિભાવ રહિત આત્માની અર્થાત્ શુદ્ધાત્માની હોવાથી તેને નિર્વિકલ્પ સ્વાત્માનુભૂતિ કહેવાય છે; અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિના કાળે મનોયોગ હોવાં છતાં ત્યારે મન પણ અતિન્દ્રિયરૂપે પરિણમવાથી તેને નિર્વિકલ્પ સ્વાત્માનુભૂતિ કહેવાય છે.



૧૩

સ્વાત્માનુભૂતિ આત્માના કયા પ્રદેશે

કોઈને પ્રશ્ન થાય કે સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ અનુભવ અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં ‘હું પણું’ -અતિન્દ્રિયજ્ઞાન શરીરમાં કયા ભાગમાં થાય છે? ઉત્તર:- તેના ઉત્તરરૂપે **પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધની** છ ગાથાઓમાં જણાવેલ છે કે હૃદયકમળમાં રહેલાં ભાવમન અને દ્રવ્યમનમાં.

ગાથા ૭૧૧-૭૧૨ અન્વયાર્થ:- “તેનો ખુલાસો આ પ્રમાણે છે કે -આ શુદ્ધસ્વાનુભૂતિના સમયમાં સ્પર્શન, રસના, ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્ર એ પ્રમાણે પાંચે ઈન્દ્રિયો ઉપયોગી માની નથી પરંતુ ત્યાં કેવળ મન જ ઉપયોગી માનવામાં આવ્યું છે તથા અહીં નિશ્ચયથી પોતાના અર્થની અપેક્ષાથી નોઈન્દ્રિય છે બીજું નામ જેનું એવું તે મન, દ્રવ્યમન તથા ભાવમન એ પ્રમાણે બે પ્રકારનું છે.”

ગાથા-૭૧૩-”જે હૃદયકમળમાં ઘનાંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગમાત્ર છે પ્રમાણ જેનું એવું દ્રવ્યમન હોય છે તે અચેતન હોવા છતાં પણ જ્ઞાનના વિષયને ગ્રહણ કરતી વેળા ભાવમનને સહાયતા કરવા સમર્થ થાય છે, અર્થાત્ દ્રવ્યમન, ભાવમનને સહાયતા કરે છે.”

અર્થાત્ કોઈને લાગે કે મને અનુભવ હૃદયના ભાગમાં જ થાય છે પરંતુ એવું એકાન્તે નથી કારણ કે દ્રવ્યમન હૃદયકમળમાં ભલે હોય પરંતુ ભાવમનરૂપ આત્માનો ક્ષયોપશમ તે આત્માના સર્વે પ્રદેશે હોવાથી અનુભૂતિ સંપૂર્ણ આત્માની હોય છે અને તે સર્વપ્રદેશે હોય છે.

ગાથા ૭૧૪ અન્વયાર્થ:- “સ્વ આવરણના ક્રમપૂર્વક ઉદયભાવીક્ષયથી જ લબ્ધિ અને ઉપયોગસહિત જે કેવળ આત્મઉપયોગરૂપ જ આત્માનો પરિણામ છે તે ભાવમન છે.” અર્થાત્ ભાવમન આત્માના સર્વપ્રદેશે છે.

ગાથા ૭૧૫-૭૧૬ અન્વયાર્થ:- “સ્પર્શ, રસના, ઘ્રાણ, ચક્ષુ અને શ્રોત્ર એ પાંચે ઈન્દ્રિયો એક મૂર્તિક પદાર્થોને જાણવાવાળી છે તથા મન, મૂર્તિક તથા અમૂર્તિક બન્ને પદાર્થોને જાણવાવાળું છે. તેથી અહીં આ કથન નિર્દોષ છે કે -સ્વાત્માગ્રહણમાં નિશ્ચયથી મન જ ઉપયોગી છે, પરંતુ આટલું વિશેષ છે કે- વિશિષ્ટદશામાં (અતિન્દ્રિય જ્ઞાનમાં = સ્વાત્માનુભૂતિમાં) તે મન પોતે જ જ્ઞાનરૂપ થઈ જાય છે.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે જે ભાવમન કહ્યું છે તે આત્માના જ્ઞાનનો જ ક્ષયોપશમરૂપ એક ઉપયોગ વિશેષ છે, અન્ય કાંઈ નથી, અજીવ દ્રવ્ય નથી અને તે ભાવમન આત્માનો વિશિષ્ટ ક્ષયોપશમ હોવાથી તે આત્માના સર્વપ્રદેશે હોય છે પરંતુ દ્રવ્યમન હૃદયકમળમાં હોવાથી તે અપેક્ષાએ સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ અનુભવ હૃદયકમળમાં થાય છે એમ કહેવાય.



૧૪

ઈન્દ્રિયજ્ઞાન જ્ઞાન નથી?

બીજું ઘણાં લોકો એવું માને છે કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન તો જ્ઞાન જ નથી, તો તેમાં સમજવાનું એ છે કે જે દ્રવ્યઈન્દ્રિય અને નોઈન્દ્રિયરૂપ મન છે તે પુદ્ગલનું બનેલું હોવાથી, તે અપેક્ષાએ એવું કહી શકાય કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન તો જ્ઞાન જ નથી અથવા ઈન્દ્રિયજ્ઞાન ખંડખંડ જ્ઞાનરૂપ હોવાથી તે અપેક્ષાએ પણ એવું કહી શકાય કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન તો જ્ઞાન (અખંડજ્ઞાન) જ નથી, પરંતુ ખરેખર જોતાં તે પુદ્ગલરૂપ અણવ ઈન્દ્રિયો જ્ઞાનના નિમિત્ત માત્ર છે પરંતુ જ્ઞાન તો આત્માનું લક્ષણ હોઈને અન્ય કોઈપણ દ્રવ્યમાં હોતું જ નથી. તો પછી પ્રશ્ન થશે કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન થાય છે કઈ રીતે?

તેનો ઉત્તર એવો છે કે- ખરેખર જે ભાવઈન્દ્રિય અને ભાવનોઈન્દ્રિય રૂપ આત્માના જ્ઞાનનું (અર્થાત્ આત્માનું) ક્ષયોપશમરૂપ વિશિષ્ટ પરિણમન છે, તે જ જ્ઞાન કરે છે અને તે જ્ઞાનને ઈન્દ્રિયની અપેક્ષાએ, આત્માએ કરેલ જ્ઞાનને, ઈન્દ્રિયજ્ઞાન અને નોઈન્દ્રિયજ્ઞાન એવી સંજ્ઞા મળે છે. ખરેખર જ્ઞાન તો આત્માનું લક્ષણ છે અન્ય કોઈ દ્રવ્ય જ્ઞાન કરતું જ નથી, તેથી સમજવાનું એ છે કે માત્ર તે શરીરસ્થ આત્મા જ જ્ઞાન કરે છે કે જે વાત **પરમાત્મપ્રકાશ**-ત્રિવિધ આત્માધિકાર ગાથા ૪૫માં પણ જણાવેલ છે કે- “જે આત્મારામ શુદ્ધનિશ્ચયનયથી અતિદ્વિય જ્ઞાનમય છે તો પણ અનાદિ બંધના કારણે વ્યવહારનયથી ઈન્દ્રિયમય શરીરને ગ્રહણ કરીને પોતાની પાંચ ઈન્દ્રિયો દ્વારા રૂપાદિ પાંચેય વિષયોને જાણે છે, અર્થાત્ ઈન્દ્રિયજ્ઞાનરૂપ પરિણમીને ઈન્દ્રિયોથી રૂપ, રસ, ગંધ, શબ્દ, સ્પર્શને જાણે છે...” અને તેને જ અપેક્ષાએ ઈન્દ્રિયજ્ઞાન કહેવાય છે, તેથી વાસ્તવમાં ઈન્દ્રિયજ્ઞાન જ્ઞાનની અપેક્ષાએ આત્મા જ છે અન્ય કોઈ નહિ અને તેથી ઈન્દ્રિયજ્ઞાન જ્ઞાન જ છે; એ જ વાત **પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધ**ની ગાથાઓમાં આગળ દેઢ કરે છે.-

ગાથા ૭૧૭-૭૧૮ અન્વયાર્થ:- “નિશ્ચયથી સૂત્રથી જે મતિજ્ઞાન છે તે ઈન્દ્રિય અને મનથી ઉત્પન્ન થાય છે તથા મતિજ્ઞાનપૂર્વક શ્રુતજ્ઞાન થાય છે, એવું જે કહ્યું છે તે કથન અસિદ્ધ નથી. સારાંશ- આ છે કે નિશ્ચયથી ભાવમન, જ્ઞાનવિશિષ્ટ થતું થકું પોતે જ અમૂર્ત છે તેથી એ ભાવમન દ્વારા થવાવાળું અહીં આત્મદર્શન અતિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષ કેમ ન હોય?”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન કે અતિન્દ્રિયજ્ઞાન, જ્ઞાન નિયમથી આત્માનું જ હોય છે અન્ય કોઈ દ્રવ્યનું નહિ, કારણ કે જ્ઞાનતો આત્માનું લક્ષણ છે. તેથી એમ પણ કહી શકાય કે ઈન્દ્રિયજ્ઞાન સ્વમાં જવાની સીડી છે કારણ કે ઈન્દ્રિય ભલે પુદ્ગલરૂપ અણવ હોય પરંતુ તેના નિમિત્તે જે જ્ઞાન થાય છે તે વિશેષ જ્ઞાનને અર્થાત્ તે જ્ઞાનાકારને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં સામાન્યજ્ઞાન અથાત્ જ્ઞાયક હાજર જ હોય

છે કે જે દ્રષ્ટિનો વિષય છે કે જેમાં હું પણ કરતાં જ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે કારણ કે સ્થૂલથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે.

ભાવાર્થ:- “-----સારાંશ આ છે કે -સ્વાત્મરસમાં નિમગ્ન થવાવાળું ભાવમન પોતે જ અમૂર્ત હોઈને સ્વાનુભૂતિના સમયમાં આત્મપ્રત્યક્ષ કરવાવાળું કહેવામાં આવ્યું છે. જેમ શ્રેણી ચઢતા સમયે જ્ઞાનની જે નિર્વિકલ્પ અવસ્થા છે તે નિર્વિકલ્પઅવસ્થામાં ધ્યાનની અવસ્થાસંપન્ન શ્રુતજ્ઞાન વા એ શ્રુતજ્ઞાનની પહેલાનું મતિજ્ઞાન અતિન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ હોય છે, તે જ પ્રમાણે સમ્યગ્દષ્ટિજીવ ચોથા ગુણસ્થાનથી માંડીને સાતમા ગુણસ્થાનવર્તી છે તેમનું મતિશ્રુતજ્ઞાનાત્મક ભાવમન પણ સ્વાનુભૂતિના સમયમાં વિશેષ દશાસંપન્ન થવાથી શ્રેણીના જેવું તો નથી, પરંતુ તેની ભૂમિકાને યોગ્ય નિર્વિકલ્પ તો થાય છે. તેથી એ મતિશ્રુતજ્ઞાનાત્મક ભાવમનને સ્વાનુભૂતિના સમયમાં પ્રત્યક્ષ માનવામાં આવે છે ત્યાં એ જ કારણ છે કે-મતિશ્રુતજ્ઞાન વિના કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી પરંતુ અવધિ -મન:પર્યયજ્ઞાન વિના થઈ શકે છે.”

સ્વાત્મરસમાં નિમગ્ન થવાવાળું ભાવમન અર્થાત્ વિકલ્પયુક્ત આત્મામાંથી (= પર્યાયમાંથી) વિકલ્પને (= વિશેષને) ગૌણ કરતાં જ અર્થાત્ વિકલ્પને, નિર્વિકલ્પમાં નિમગ્ન કરતાં (= ડુબાડતા) જ સામાન્યરૂપ આત્મા અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવની અનુભૂતિ થાય છે કે જેને નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિ કહેવાય છે કે જે અતિન્દ્રિય પ્રત્યક્ષ હોય છે કે જે અનુભવની વિધિ છે અર્થાત્ તે જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે.

હવે આપણે **પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની** (પં. દેવકીનંદજીકૃત હિંદી ટીકાના આધાર ઉપરથી સરળ ગુજરાતી ટીકા અનુવાદક સોમચંદ અમથાલાલ શાહ-પ્રકાશક ભગવાન શ્રી કુંદકુંદ-કહાન જૈનશાસ્ત્રમાળા પુષ્પ-૩૨-આવૃત્તિ-૧) ગાથાઓથી, આ જ બધાં ભાવો દ્રઢ કરીશું:-

ગાથા ૪૬૧-૪૬૨ અન્વયાર્થ:- “અથવા ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન, દેશપ્રત્યક્ષ હોય છે તેથી વાસ્તવમાં તે અસ્તિકય, આત્માના સુખાદિકની માફક સ્વસંવેદનપ્રત્યક્ષ કેવી રીતે થઈ શકે છે? ઠીક છે, પરંતુ પ્રથમનાં મતિ અને શ્રુત એ બે જ્ઞાન, પર પદાર્થોને જાણતાં સમયે પરોક્ષ છે તથા દર્શનમોહનીયનો ઉપશમ, ક્ષય તથા ક્ષયોપશમ થવાના કારણથી સ્વાનુભવકાળમાં પ્રત્યક્ષ છે.”

ગાથા ૧૧૧૮ અન્વયાર્થ:- “શંકાકારનું ઉપરોક્ત કથન ઠીક છે, કારણ કે- જે ઇન્દ્રિયોના સંબંધથી પદાર્થનું જ્ઞાન થાય છે તે જ્ઞાન અસંયમજનક થતું નથી પરંતુ એ વિષયોમાં જે રાગાદિ બુદ્ધિ ઉત્પન્ન થતી હતી તેને ન થવા દેવી એ જ ઇન્દ્રિયસંયમ છે.”

અર્થાત્ કોઈએ ઇન્દ્રિયજ્ઞાનથી ડરવાની જરૂર નથી અર્થાત્ ઇન્દ્રિયજ્ઞાનનો નકાર કરવાની જરૂર નથી કારણ કે તે આત્માનો જ એક ઉપયોગ વિશેષ છે અને તેથી જ તે જ્ઞાન અસંયમજનક થતું નથી પરંતુ એ જ્ઞાનના વિષયોમાં જે રાગાદિ બુદ્ધિ ઉત્પન્ન થાય છે, તેને ન થવા દેવી, એ જ સંયમ છે અને એ જ કર્તવ્ય છે.

૧૫

પર્યાય પરમપારિણામિકભાવની જ બનેલ છે

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથાઓ:-

ગાથા ૬૧ અન્વયાર્થ:- “સ્વયં અનાદિસિદ્ધ સત્માં (આત્મામાં) પણ પારિણામિક શક્તિથી (પરિણામિકભાવથી) સ્વાભાવિકીક્રિયા તથા વૈભાવિકીક્રિયા થાય છે.”

ભાવાર્થ:- “આગમમાં જીવના પાંચ ભાવો કહ્યા છે તેમાં એક પારિણામિકભાવ છે તેને પારિણામિકશક્તિ પણ કહેવામાં આવે છે, તેની બે પ્રકારની પર્યાય થાય છે; એક સ્વાભાવિક તથા બીજી વૈભાવિક, (અત્રે જે એક દ્રવ્યની બે પર્યાયો કહી છે, તે અપેક્ષાએ બે છે વાસ્તવમાં બે ન સમજવી કારણ કે એક દ્રવ્યની એક જ પર્યાય હોય છે પરંતુ તેને સામાન્ય અને વિશેષ એવી બે અપેક્ષાએ બે પર્યાય કહી છે, તેમાં સામાન્ય ને સ્વાભાવિક પર્યાય કહેવાય છે અને વિશેષને વૈભાવિક પર્યાય કહેવાય છે. અર્થાત્ તે વિશેષ પર્યાય સામાન્યભાવની જ બનેલ હોવાથી અર્થાત્ તે પરમપારિણામિકભાવ ની જ બનેલ હોવાથી, વાસ્તવમાં પર્યાય એક જ હોય છે) આ બંને જીવની પોતાની અપેક્ષાએ પારિણામિકભાવ છે. આ નિશ્ચયકથન છે (જુઓ જયધવલા ભાગ-૧ પૃષ્ઠ-૩૧૯ તથા ધવલાટીકા ભાગ-૫ પૃષ્ઠ ૧૯૭-૨૪૨-૨૪૩) અને કર્મના ઉદ્દયની અપેક્ષા બતાવવા માટે જીવના વિકારીભાવને (અર્થાત્ વિભાવભાવરૂપ વિશેષ ભાવને) ઔદયિકભાવ કહેવામાં આવે છે, આ વ્યવહારકથન છે.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે નિશ્ચયનયે (અભેદનયે) જીવને એક માત્ર પારિણામિકભાવ જ હોય છે, પરંતુ વ્યવહારનયે (ભેદનયે) તે જ ભાવને સામાન્ય અપેક્ષાએ પરમપારિણામિકભાવ અને વિશેષ અપેક્ષાએ ઔદેયિકાદિ ચારભાવરૂપ કહેવાય છે. અર્થાત્ વિશેષરૂપ ઔદેયિકાદિ ચારભાવરૂપ પર્યાય સામાન્યભાવની જ બનેલી હોય છે અર્થાત્ તે પરમપારિણામિકભાવની જ બનેલ હોય છે અર્થાત્ ઔદેયિકાદિ સર્વ વિશેષભાવરૂપ હું = પરમપારિણામિકભાવ જ પરિણમું છું અને તેથી મારે = પરમપારિણામિકભાવે જ મારામાં = પરમપારિણામિકભાવમાં જગૃતિ રાખવાની છે અને પોતાને ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, ભય, પરિગ્રહ, વાસના, વગેરેથી બચાવવાનો છે, કે જેને સંવરભાવ કહેવાય છે કે જેના થકી નિર્જરા થાય છે.

THAT MEANS, I=PURE AWARENESS = પરમપારિણામિકભાવ = જ્ઞાયકભાવ AM GETING MANIFESTED AS ALL THE FEELINGS LIKE PAIN, HAPPINESS, ETC. AND AS KNOWLEDGE, MEMORY, ETC.= ઔદૈયિકાદિ સર્વ વિશેષભાવ BUT I SHALL BE AWARE OF MYSELF AND RESTRAIN MYSELF FROM BEING GETTING INVOLVED IN SINS, LUST, ANGER, EGO, DECEIT, CRUELTY, FEAR, POSSESSIVENESS, ETC. FOR SAVING MYSELF OF BONDAGE, UNLIMITED PAIN AND SUFFERINGS.

ગાથા ૬૩-૬૪ અન્વયાર્થ:- “શંકાકાર કહે છે કે -જ્ઞે અનાદિ સત્માં વૈભાવિકીક્રિયા (અર્થાત્ વિભાવભાવરૂપ ઔદૈયિકભાવ) પણ પરિણમનશીલતાથી થાય છે. (અર્થાત્ તે ભાવ પણ પારિણામિકભાવ જ હોય છે) તો નિશ્ચયથી તેમાં સ્વાભવિકીક્રિયાથી (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવથી) વિશેષતા રાખવાવાળો કયો વિશેષ ભેદ રહેશે? તથા પદાર્થોને જાણવાવાળું જ્ઞાન આત્માનું સ્વલક્ષણ છે તેથી તે જ્ઞાનની આ શેયના આકારે થવારૂપ ક્રિયા કેવી રીતે વૈભાવિકીક્રિયા થઈ શકે છે?”

આ જ વાત સમયસાર ગાથા-૬માં પણ કર્તા કર્મનું અનન્યપણું જણાવીને સમજવેલ છે, ત્યાં એમ સમજવું કે કર્મ (જ્ઞેયાકાર = ચારભાવ = પર્યાય = વિશેષભાવ), કર્તા(સામાન્યભાવ = પરમપારિણામિકભાવ = જ્ઞાયકભાવ) ના જ બનેલ હોવાથી કર્તા કર્મનું અનન્યપણું જણાવેલ છે અને બીજું સમયસાર ગાથા-૬માં જાણવાવાળો તે હું અર્થાત્ આત્મા જ્યારે પરને જાણે છે ત્યારે તે જે જ્ઞેયાકાર છે તે ખરેખર જ્ઞાનાકાર જ છે અને તે જ્ઞાનાકારમાં પણ જ્યારે આકારરૂપ વિકલ્પને ગૌણ કરવામાં આવે તો તે જ્ઞાયક જ છે અર્થાત્ તે જ “પરમપારિણામિક ભાવ”છે, “કારણશુદ્ધપર્યાય”છે તે જ વાત અત્રે દ્રઢ થાય છે.

તે જ વાત સમયસાર ગાથા-૧૩ પણ જણાવેલ છે- તેમાં દ્રષ્ટિનો વિષય ‘નવ તત્ત્વમાં (પર્યાય માં) છુપાયેલ આત્મજ્યોતિરૂપ કહ્યો છે.’ અર્થાત્ અવ્યક્ત વ્યક્તમાં જ છુપાયેલ છે અર્થાત્ વ્યક્ત અવ્યક્તનું જ બનેલ છે છતાં કહેવાય એમ જ કે વ્યક્તને અવ્યક્ત સ્પર્શતું જ નથી, આ જ ખુબી છે જૈનશાસનના નયચક્રની અને આ જ અપેક્ષાએ અવ્યક્તના બોલ સમજવાં જરૂરી છે, અન્યથા નહિ અર્થાત્ એકાંતે નહિ કારણ કે એકાંતતો અનંત પરાવર્તનનું કારણ થવા સક્ષમ છે. તેથી અમે જ્યારે પ્રશ્ન કરીએ કે તે પર્યાય શેની બનેલી છે? અને ઉત્તરમાં અમે જણાવીએ છીએ કે “પરમપારિણામિક ભાવની”અર્થાત્ જે પર્યાય છે તે દ્રવ્યની જ (અર્થાત્ ધ્રુવની જ, પરમપારિણામિક ભાવની જ) બનેલ છે કે જેના વિશે અમે પૂર્વે અનેક આધારો સહિત સમજવેલ જ છે, તે જ વાત અત્રે દ્રઢ થાય છે.

આ જ વાત સમયસાર શ્લોક ૨૭૧માં પણ જણાવેલ છે- શ્લોકાર્થ: “જે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હું

છું તે જ્ઞેયોના જ્ઞાનમાત્ર જ ન જ્ઞાણવો: (પરંતુ) જ્ઞેયોના આકારે થતા જ્ઞાનના કલ્લોલરુપે પરિણમતો તે જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતામય વસ્તુમાત્ર જ્ઞાણવો” અર્થાત્ જ્ઞેય છે તે જ્ઞાનમય છે, જ્ઞાન છે તે જ્ઞાતામય છે અને તે જ્ઞાતા-જ્ઞાન-જ્ઞેયની એકરૂપતાથી સાબિત થાય છે કે પર્યાય (જ્ઞેય) જ્ઞાતા (પરમપારિણામિકભાવ) ની બનેલી છે. એટલે કે ચાર ભાવ (પર્યાય = વિભાવભાવ) તે એક પરમપારિણામિકભાવના જ બનેલા છે એટલે કે ચારેય ભાવોનું (પર્યાયનું) સામાન્ય તે પરમપારિણામિકભાવ છે. એટલે કે જેમ જ્ઞેયમાં જ્ઞાતા હાજર છે તેમ દરેક પર્યાયમાં જ્ઞાતા = પરમપારિણામિકભાવ હાજર જ છે- - - -તે પર્યાય તેની જ (જ્ઞાન-જ્ઞેય-જ્ઞાતા) બનેલી છે. અર્થાત્ ચાર ભાવો (પર્યાય = વિભાવભાવ) ને ગૌણ કરતા જ્ઞાયક = પરમપારિણામિકભાવ પ્રાપ્ત થાય છે કે જે દ્રષ્ટિનો વિષય છે. આ રીતે દરેક પર્યાયમાં પૂર્ણ દ્રવ્ય હાજરાહાજૂર છે જ, માત્ર તેની દ્રષ્ટિ કરતા આવડવું જોઈએ; આથી જ દ્રષ્ટિ અનુસાર એમ કહી શકાય કે જે દ્રવ્ય છે તે જ પર્યાય છે (તે પર્યાય દ્રષ્ટિ) અથવા જે પર્યાય છે તે જ દ્રવ્ય છે (તે દ્રવ્ય દ્રષ્ટિ).

જ્ઞાન (આત્મા) સામાન્યવિશેષાત્મક હોય છે. જ્ઞાનસામાન્યભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) નિર્વિકલ્પ હોય છે જ્યારે જ્ઞાન વિશેષભાવ (ચારભાવરૂપ) સવિકલ્પ હોય છે; જેથી કરીને જ્ઞાનસામાન્યભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) માં ‘હું પણું’ કરતા જ નિર્વિકલ્પ અનુભૂતિ હોય છે. આ જ સમ્યગ્દર્શનની વિધિ (રીત) છે.

ગાથા ૬૬-૬૭ અન્વયાર્થ:- “(વૈભાવિકી તથા સ્વાભાવિકી એ બન્ને ક્રિયાઓ = પર્યાયો જ્યારે પારિણામિક જ છે તો તેમાં કાંઈ જ અંતર નથી) એ પ્રમાણે કહેવું ઠીક નથી કારણ કે બદ્ધ અને અબદ્ધ જ્ઞાનમાં તફાવત છે, તેમાંથી મોહનીયકર્મથી આવરીત જ્ઞાનને (અર્થાત્ ઔદયિકરૂપ વિશેષ ભાવોને) બદ્ધ કહે છે તથા એ મોહનીયકર્મથી અનાવરીત જ્ઞાનને (અર્થાત્ સામાન્યજ્ઞાનને, જ્ઞાયકરૂપજ્ઞાનને, પરમપારિણામિકભાવરૂપ જ્ઞાનને તથા કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપજ્ઞાનને) અબદ્ધ કહે છે. જે જ્ઞાન મોહકર્મથી આવરીત એટલે જોડાયેલું છે તે જેમ ઈષ્ટ અને અનિષ્ટ અર્થના સંયોગથી પોતાની મેળે જ રાગદ્વેષમય થાય છે તેમ જ તે પ્રત્યેક પદાર્થને ક્રમે ક્રમે વિષય કરવાવાળું હોય છે અર્થાત્ તે સર્વ પદાર્થોને એકસાથે વિષય કરવાવાળું હોતું નથી.” આ જ વિષયને ગાથા-૧૩૦ માં વિશેષ સ્પષ્ટ કરેલ છે તેથી તે હવે જોઈશું.

ગાથા ૧૩૦ અન્વયાર્થ:- “પરગુણ આકારરૂપ પારિણામિકી ક્રિયા અંધ કહેવાય છે, તથા એ ક્રિયાના થવાથી જ એ બંને-જીવ અને કર્મોનું પોતપોતાના ગુણોથી વ્યુત થવું થાય છે તે અશુદ્ધતા કહેવાય છે.” અર્થાત્ પારિણામિકી ક્રિયા એટલે જ પારિણામિકી ભાવરૂપ (પર્યાયરૂપ) જીવ જ પરિણમે છે.

ભાવાર્થ:- “દરેક દ્રવ્યમાં પારિણામિકભાવ હોય છે, જીવ અને પુદ્ગલમાં તેના બે પ્રકારની ક્રિયા થાય છે એક શુદ્ધ તથા બીજી અશુદ્ધ. દરેક દ્રવ્ય તે ક્રિયા પોતે સ્વયં કરતું હોવાથી તે ક્રિયા પારિણામિકભાવે

છે. જેમ જીવમાં ક્રોધ થાય છે તે સ્વ અપેક્ષાએ પારિણામિકભાવ (ક્રિયા) છે (અર્થાત્ ઔદયિકભાવ ખરેખર તો પરમપારિણામિક ભાવનો જ બનેલો છે) (જૂઓ જયધવલ ભા.૧ પા.૩૧૯ તથા શ્રી ષટખંડાગમ પુસ્તક પ પૃષ્ઠ ૧૯૭-૨૪૨-૨૪૩) વળી વિકારીભાવોમાં કર્મના ઉદયની અપેક્ષા બતાવવી હોય ત્યારે તે પર્યાયને ઔદયિકી પણ કહેવાય છે (આ જ વાત પૂર્વે અમે જણાવેલ કે ઔદાયિકીભાવરૂપ પર્યાય ખરેખર પારિણામિકભાવની જ બનેલ છે કે જે તેનો સામાન્યભાવ કહેવાય છે) પરંતુ તેથી કાંઈ એમ ન સમજવું કે જીવમાં પરનો કોઈપણ ગુણ આવી જાય છે.

બીજું જે ભાવ (વિભાવભાવ) જીવમાંથી નીકળી જવા યોગ્ય હોય તે પોતાનું સ્વરૂપ નહિ હોવાથી નિશ્ચયનયે તે પોતાના નથી તેને પરભાવ, પરગુણાકાર વગેરે નામથી ઓળખવામાં આવે છે, આ અપેક્ષાએ જીવના વિકારીભાવને નિશ્ચયનયથી પુદ્ગલપરિણામ કહેવામાં આવે છે, કારણ કે તે જીવનો સ્વભાવ નથી અને પુદ્ગલના સંબંધથી થાય છે તેથી એ વિકારભાવ નિશ્ચયબંધ છે. એ વિકારી પારિણામિકીક્રિયા થતાં પોતાના ગુણથી ચ્યુત થવું તે અશુદ્ધતા છે.”

અર્થાત્ જે જીવનો પરમપારિણામિક ભાવ છે અર્થાત્ જે જીવનું સહજ પરિણામન છે તે જ પરલક્ષે અશુદ્ધતારૂપ પરિણામીને નિશ્ચયબંધરૂપ થાય છે અને તેથી જ તે અશુદ્ધતાને ગૌણ કરતાં જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે તે હાજર જ હોય છે અને તે જ અપેક્ષાએ સમયસાર ગાથા ૧૩માં પણ જણાવ્યું છે કે “નવતત્ત્વમાં છુપાયેલ આત્મજ્યોતિ” અર્થાત્ તે નવતત્ત્વરૂપ જે જીવનું પરિણામન છે (પર્યાય છે) તેમાંથી અશુદ્ધિઓને ગૌણ કરતાં જ જે શેષ રહે છે તે જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા છે, તે જ કારણશુદ્ધપર્યાય છે, તે જ દ્રષ્ટિનો વિષય છે.



૧૬

સ્વભાવપર્યાય અને વિભાવપર્યાય

અમે જે પૂર્વે જણાવ્યું કે સ્વભાવપર્યાય અને વિભાવપર્યાય તેમ બે પર્યાય અપેક્ષાએ કહેવાય છે, અર્થાત્ બંને એક જ પર્યાય (વસ્તુ, દ્રવ્ય) નું અનુક્રમે સામાન્યરૂપ અને વિશેષરૂપ છે, પરંતુ એમ નથી કે સ્વાભાવિકશક્તિ અને વૈભાવિકશક્તિ એક જ કાળમાં હોય છે, કારણ કે તેમ માનતાં, બન્ને પર્યાય વિશેષરૂપ થઈ જતાં, એક દ્રવ્યની એક કાળમાં બે પર્યાયનો પ્રસંગ આવશે અને કાર્યકારણભાવના નાશનો પ્રસંગ આવશે કે જેથી બંધ મોક્ષના અભાવનો પ્રસંગ આવશે, તે જ હવે આગળ જણાવે છે.

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૯૨ અન્વયાર્થ:- “એ સ્વભાવિકી અને વૈભાવિકી શક્તિનો એક કાળમાં સદ્ભાવ માનતાં ન્યાયથી પણ ઘણો મોટો દોષ આવશે, કારણ કે યુગપત્ સ્વભાવિક અને વૈભાવિકભાવને માનવાથી કાર્ય-કારણભાવનો નાશ તથા બંધ મોક્ષના નાશ થવાનો પ્રસંગ આવે છે.”

ભાવાર્થ:- “વૈભાવિકી શક્તિની વિભાવ અને સ્વભાવરૂપ બે અવસ્થા માનવાથી બંધ અને મોક્ષની વ્યવસ્થા સિદ્ધ થઈ જાય છે તથા એ વિભાવ અને સ્વભાવ અવસ્થાઓ ક્રમવર્તી છે તેથી બંધ અને મોક્ષનાં કાર્ય-કારણ ભાવો જુદા જુદા છે એમ પણ સિદ્ધ થાય છે. પરંતુ બંને શક્તિઓને યુગપત્ માનવાથી ન તો કાર્ય-કારણભાવ બની શકશે તથા ન તો બંધ-મોક્ષની વ્યવસ્થા જ બની શકશે.”

આપણે જે પૂર્વે જોઈ ગયા છીએ, તે જ અત્રે જણાવેલ છે કે જો છદ્મસ્થ જીવમાં સ્વભાવપર્યાય અને વિભાવપર્યાય એવી બે પર્યાય માનવામાં આવે તો જે કાર્ય-કારણરૂપ વ્યવસ્થા છે તે સિદ્ધ જ નહિ થાય અર્થાત્ જે આત્મામાં પ્રત્યેક પ્રદેશે કર્મો છે અને તેના નિમિત્તે તે અશુદ્ધરૂપ પરિણામે છે તેવો કાર્ય-કારણભાવ અને તે કર્મોનો અભાવ થતાં જ તે જીવ શુદ્ધરૂપે પરિણામે છે તેવાં બંધ અને મોક્ષ પણ સિદ્ધ નહિ થાય. તેથી છદ્મસ્થ જીવમાં વિશેષરૂપ વિભાવપરિણામન અને સામાન્યરૂપ સ્વભાવ-પરિણામન જ માનવું યોગ્ય છે કે જે સામાન્યરૂપ સ્વભાવપરિણામન ના બળે તે જીવ કર્મોના નિમિત્તે થતાં ભાવમાં “હું પણાં” થી છુટી અર્થાત્ તેમાં ‘હું પણું’ નહિ કરતાં, માત્ર પરમપારિણામિકભાવમાં જ ‘હું પણું’ કરે છે અને તે વિભાવરૂપ ભાવોને ક્ષણિક અને હેયરૂપ માની કર્મોના નાશ માટેની શક્તિ મેળવે છે અને આગળ તેવો જ પુરુષાર્થ ફરી ફરી કરીને સર્વ કર્મોનો નાશ કરીને, તેવાં ભાવોથી સર્વથા, સર્વકાળ માટે મૂકાય છે, મુક્ત થાય છે; તે જ મોક્ષ છે.

૧૭

નવ તત્ત્વની સાચી શ્રદ્ધાનું સ્વરૂપ

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથાઓ:-

ગાથા ૧૩૩-૧૩૪-૧૩૫:- “વાસ્તવમાં અહીં શુદ્ધ નયની અપેક્ષાએ જીવ શુદ્ધ પણ છે (અર્થાત્ એકાંતે શુદ્ધ નથી અથવા તો તેનો એક ભાગ શુદ્ધ અને એક અશુદ્ધ એવું પણ નથી પરંતુ અપેક્ષાએ જીવ શુદ્ધ પણ છે) તથા કથંચિત્ બદ્ધાબદ્ધનય એટલે વ્યવહારનયથી જીવ અશુદ્ધ છે એ પણ અસિદ્ધ નથી (અર્થાત્ વ્યવહારનયથી જીવ અશુદ્ધ છે). સંપૂર્ણ શુદ્ધનય એક, અભેદ અને નિર્વિકલ્પ છે તથા વ્યવહારનય અનેક, ભેદરૂપ અને સવિકલ્પ છે. એ શુદ્ધનયનો વિષય ચેતનાત્મક શુદ્ધ જીવ વાચ્ય છે અને વ્યવહારનયના વિષયરૂપ તે જીવ આદિ નવ પદાર્થો કહેવામાં આવ્યા છે.”

આપણે શરુઆતમાં જ જે સમજ્યા કે વસ્તુ એક અભેદ છે અને તેને જ્ઞેવાની દ્રષ્ટિ અનુસાર તે જ વસ્તુ શુદ્ધ અથવા અશુદ્ધ, અભેદ અથવા ભેદરૂપ જણાય છે, તે જ વાત અત્રે સિદ્ધ કરેલ છે. હવે સમયસાર ગાથા ૧૩ ના જે ભાવ છે કે “નવ તત્ત્વમાં છુપાયેલી આત્મ (-ચૈતન્ય) જ્યોતિ”તે જ ભાવ વ્યક્ત કરે છે-.

ગાથા ૧૫૫ અન્વયાર્થ:- “અર્થાત્ એક જીવ જ જીવ-અજીવાદિક નવ પદાર્થરૂપ થઈને વિરાજમાન છે અને એ નવ પદાર્થની અવસ્થાઓમાં પણ જ્ઞે વિશેષ અવસ્થાઓની વિવક્ષા ન કરવામાં આવે તો (અર્થાત્ વિશેષરૂપ વિભાવ ભાવોને જ્ઞે ગૌણ કરવામાં આવે તો) કેવળ શુદ્ધ જીવ જ છે (કેવળ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા જ છે અર્થાત્ તે કેવળ કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ દ્રષ્ટિનો વિષય જ છે અર્થાત્ તે વિશેષ અવસ્થાઓ-પર્યાયો પરમપારિણામિકભાવની જ બનેલ છે એ જ વાત સિદ્ધ થાય છે).”

ગાથા ૧૬૦-૧૬૩:- “સોપરકિતથી ઉપાધિસહિત સુવર્ણ ત્યાજ્ય નથી કારણ કે તેનો ત્યાગ કરતાં સર્વ શૂન્યતાદિ દોષોનો પ્રસંગ આવે છે (તે જ રીતે જ્ઞે અશુદ્ધરૂપ પરિણામેલ જીવ અર્થાત્ અશુદ્ધ પર્યાયનો જ્ઞે ત્યાગ કરવામાં આવે તો ત્યાં પૂર્ણ દ્રવ્યનો જ ત્યાગ થઈ જતાં, સર્વશૂન્યતાદિ નો દોષ આવશે અર્થાત્ તે અશુદ્ધ પર્યાયમાં જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા છુપાયેલ હોવાથી જ્ઞે તે અશુદ્ધ પર્યાયનો ત્યાગ કરશો તો, પૂર્ણ દ્રવ્યનો જ લોપ થઈ જશે અને તેથી તે અશુદ્ધ પર્યાયનો ત્યાગ ન કરતાં, માત્ર અશુદ્ધિને જ ગૌણ કરવી અને તેમ કરતાં જ, પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા કે જે દ્રષ્ટિનો વિષય છે તે ઉપલબ્ધ થશે), (બીજું) આવું કથન પણ પરીક્ષા કરવાથી સિદ્ધ નથી થઈ શકતું કે -જે સમયે સુવર્ણ, પર્યાયથી શુદ્ધ

છે તે સમયે જ તે શુદ્ધ છે (અર્થાત્ જે અશુદ્ધરૂપ પરિણામેલ સંસારી જીવોને એકાંતે અશુદ્ધ જ માને છે અને શુદ્ધોપયોગ માત્ર ૧૩માં ગુણસ્થાનકથી જ માને છે, તેને શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ થવાની જ નથી અર્થાત્ તેવા જીવને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થતી જ નથી અને બીજું, જેઓ પર્યાયને અશુદ્ધ માનીને પર્યાયને દ્રષ્ટિના વિષયમાં સામેલ કરતાં નથી અને એકાંતે શુદ્ધ-ધ્રુવ શોધે છે, તેને પણ તેની પ્રાપ્તિ થવાની જ નથી અર્થાત્ તેવા જીવને પણ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થતી જ નથી.) કારણ કે -(એકાંત)શુદ્ધ દ્રવ્યની પ્રાપ્તિ ન થતાં તેની પ્રાપ્તિના હેતુનું પણ અદર્શન સિદ્ધ થાય છે [અર્થાત્ જો ખાણમાંથી નીકળેલ અશુદ્ધ સુવર્ણનો અસ્વીકાર કરો તો તેમાં છુપાયેલ શુદ્ધ સુવર્ણની પ્રાપ્તિ પણ થઈ શકવાની નથી; તેવી જ રીતે અશુદ્ધ જીવમાં (પર્યાયમાં) જ શુદ્ધાત્મા છુપાયેલ છે તેમ જાણવું.]

(હવે શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિની રીત બતાવે છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની રીત બતાવે છે) જે સમયે તે અશુદ્ધ સુવર્ણના રૂપોમાં કેવળ શુદ્ધ સુવર્ણ દ્રષ્ટિ ગોચર કરવામાં આવે છે (અર્થાત્ અશુદ્ધ પર્યાયમાં દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ કેવળ શુદ્ધાત્મા = પરમપારિણામિકભાવ દ્રષ્ટિ ગોચર કરવામાં આવે છે) તે સમયે પરદ્રવ્યની ઉપાધિ દ્રષ્ટિ ગોચર થતી નથી (અર્થાત્ પર્યાયરૂપ પરિણામેલ દ્રવ્યની અશુદ્ધિ ગૌણ થતાં જ પૂર્ણ સાક્ષાત્ શુદ્ધાત્મા જ જણાય છે) પરંતુ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણથી પોતાનું અભિષ્ટ એ કેવળ શુદ્ધ સુવર્ણ જ દ્રષ્ટિગોચર થાય છે. [તેથી જ બીજાને જે દ્રવ્ય પ્રમાણનું ભાસે છે, તે જ દ્રવ્યમાં અમને પરમપારિણામિકભાવ રૂપ શુદ્ધાત્માના દર્શન થાય છે; તેથી કહી શકાય કે- તેમાં બીજાનો દોષ માત્ર એ છે કે- જ્યારે તેને (દ્રવ્યને) શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયે ગ્રહણ કરવાનું છે ત્યારે પણ તેઓ તેને પ્રમાણદ્રષ્ટિથી જ ગ્રહણ કરે છે, કારણ કે તેઓની ધારણામાં દ્રવ્ય બે ભાગવાળું છે કે જેમાંનો એક ભાગ શુદ્ધ અને બીજો અશુદ્ધ છે. બીજાની આવી માન્યતાની ભૂલ હોવાથી, અમે જ્યારે પૂર્ણદ્રવ્યની વાત કરીએ ત્યારે તેઓને તેમાં પ્રમાણના દ્રવ્યનાં જ દર્શન થાય છે અને જ્યારે અમે તે જ પ્રમાણના દ્રવ્યને શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયે ગ્રહણ કરીને તેને શુદ્ધાત્મા = પરમપારિણામિકભાવ કહીએ, ત્યારે તેઓ પર્યાયથી ભિન્ન, અપરિણામિ = કુટસ્થ શોધે છે, કે જેનું અસ્તિત્વ જ નથી, જે કદી શુદ્ધ ભાગરૂપ અર્થાત્ એકાંત શુદ્ધરૂપ મળવાનો જ નથી] એટલા માટે સિદ્ધ થાય છે કે- જેમ તે અશુદ્ધ સુવર્ણમાળામાં અન્ય ઘાતુઓનો સંયોગ છતાં પણ વાસ્તવમાં પરસંયોગ વિનાનું ભિન્નરૂપથી શુદ્ધ સુવર્ણનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે તેવી જ રીતે જીવાદિક નવ પદાર્થોમાં શુદ્ધ જીવનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ છે.” અન્યથા નહિ, અર્થાત્ તે અશુદ્ધ પર્યાયો સિવાય તે કાળે જીવત્વ અન્ય કાંઈ જ નથી તે પૂર્ણ જીવ જ તે રૂપ પરિણામેલ છે, માટે તેમાં જ શુદ્ધાત્મા છુપાયેલ છે. આ જ ભાવના અનુસંધાન રૂપ દ્રષ્ટાંતો હવે પછીની ગાથાઓમાં આપેલ છે, તે ટૂંકમાં જણાવીએ છીએ:-

ગાથા ૧૬૬:- માં કીચડ સહિત જળનું ઉદાહરણ છે, તે કીચડ સહિત જળમાં જ શુદ્ધ જળ છુપાયેલ છે.

ગાથા ૧૬૭:- માં અગ્નિનું દ્રષ્ટાંત છે, ઉપચારથી અગ્નિનો આકાર તેના બળતણ અનુસાર થવા

છતાં, તે માત્ર અગ્નિ જ છે અન્ય કાંઈપણ રૂપ નથી અર્થાત્ બળતાણરૂપ નથી, આ જ વાત સમયસાર ગાથા ૬માં પણ જણાવેલ છે કે જ્ઞાન જ્ઞેયરૂપ પરિણમવાં છતાં પણ તે જ્ઞાયક જ છે.

ગાથા ૧૬૮:- માં દર્પણનું દ્રષ્ટાંત છે, દર્પણમાં અલગ અલગ પ્રતિબિંબ હોવા છતાં, તેને ગૌણ કરાતાં જ માત્ર સ્વચ્છ દર્પણ જ છે, વાસ્તવમાં ત્યાં અન્ય કોઈ નથી.

ગાથા ૧૬૯:- માં સ્ફટીકનું દ્રષ્ટાંત છે, તે સ્ફટીકમાં કોઈપણ ઝાંચ પડે, તેથી કરીને તે તેવા રંગનું ભાસવા છતાં, સ્વરૂપથી તે તેવા રંગનું થઈ જતું નથી; સ્વરૂપથી તે સ્વચ્છ જ રહે છે.

ગાથા ૧૭૦:- માં જ્ઞાનનું દ્રષ્ટાંત છે, જ્ઞાન જ્ઞેયને જાણતાં જ્ઞેયરૂપ થતું નથી, પણ જેવું તેમાં જ્ઞેયને ગૌણ કરો તો, ત્યાં જ્ઞાયક જ હાજર છે; આ જ રીત છે સમ્યગ્દર્શનની, આ જ વાત સમયસાર શ્લોક ૨૭૧માં પણ જણાવેલ છે.

ગાથા ૧૭૧:- માં સમુદ્રનું દ્રષ્ટાંત છે, સમુદ્રની વાયુથી પ્રેરિત લહેરો ઉઠતી હોવા છતાં, તે માત્ર સમુદ્રરૂપ જ રહે છે, વાયુરૂપ થતી નથી; પરંતુ સમુદ્રરૂપ જ રહે છે.

ગાથા ૧૭૨:- માં નમકનું દ્રષ્ટાંત છે, નમક રસોઈમાં અન્યરૂપ થઈ જતું નથી, છતાં અજ્ઞાની જીવ તે નમકનો સ્વાદ લઈ શકતો નથી જ્યારે જ્ઞાનીજીવ ભેદજ્ઞાનથી નમકનો સ્વાદ (શુદ્ધાત્માનો સ્વાદ) લઈ લે છે. આ જ વાતને આગળની ગાથાઓમાં દ્રઢ કરાવે છે તે હવે જ્ઞેયશું:-

ગાથા ૧૭૮ અન્વયાર્થ:- “એ નવ પદાર્થોથી ભિન્ન સર્વથા શુદ્ધદ્રવ્યની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી, (માટે કોઈએ તેવા ભ્રમમાં રહેવાની જરૂર નથી કે પર્યાયથી ભિન્ન સર્વથા શુદ્ધ દ્રવ્ય ઉપલબ્ધ થશે) કારણ કે- સાધનનો અભાવ હોવાથી એ શુદ્ધ દ્રવ્યની ઉપલબ્ધિ થઈ શકતી નથી,” આ જ વાત અમે પૂર્વે જણાવેલ છે કે તે અશુદ્ધ પર્યાયો સિવાય અન્ય કોઈ દ્રવ્ય જ નથી, અત્યારે તો તે પૂર્ણ દ્રવ્ય જ તે પર્યાયરૂપમાં વ્યક્ત થઈ રહેલ છે તે પર્યાયોથી ભિન્ન કોઈ શુદ્ધભાવની સિદ્ધિ થાય કઈ રીતે? અર્થાત્ જ્ઞેય થાય તો તે માત્ર ભ્રમમાં જ થાય, અન્યથા નહિ તે જ વાત અત્રે જણાવેલ છે.

ગાથા ૧૮૬ અન્વયાર્થ:- “તેથી શુદ્ધતત્ત્વ (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા) કાંઈ એ નવતત્ત્વોથી વિલક્ષણ (અર્થાત્ ભિન્ન) અર્થાંતરરૂપ નથી પરંતુ કેવળ નવ તત્ત્વ સંબંધી વિકારોને બાદ કરતાં (અર્થાત્ ગૌણ કરતાં) એ નવ તત્ત્વ જ શુદ્ધ છે”

અર્થાત્ તે નવ તત્ત્વ જ પરમપારિણામિક ભાવના બનેલા હોવાથી અર્થાત્ ધ્રુવરૂપ શુદ્ધાત્મા જ તે નવતત્ત્વરૂપ પરિણમેલ હોવાથી તે નવતત્ત્વમાં જ છુપાયેલ છે, અર્થાત્ તે નવતત્ત્વમાંથી અશુદ્ધિ ને ગૌણ કરતાં જ દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા હાજર જ છે.

ગાથા ૧૮૯ અન્વયાર્થ:- “પુણ્ય અને પાપ સહિત એ સાત તત્ત્વોને જ નવ પદાર્થ કહેવામાં આવ્યા છે, તથા ભૂતાર્થનયે આશ્રય કરેલા સમ્યગ્દર્શનના વાસ્તવિક વિષય છે.” અર્થાત્ દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ છે.

ભાવાર્થ:- “પૂર્વે ગાથા ૧૮૬માં કહ્યું હતું કે-નવતત્ત્વોથી શુદ્ધાત્મા કોઈ જુદો પદાર્થ નથી. પણ તે નવ તત્ત્વો સંબંધી વિકારોને છોડતાં (ગૌણ કરતાં-બાદ કરતાં) એ નવતત્ત્વ જ શુદ્ધ છે (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા છે) નવ તત્ત્વો સંબંધી વિકારો ને કેવી રીતે છોડાય તેનો ઉપાય આ ગાથામાં દર્શાવ્યો છે કે-ભૂતાર્થનય વડે તે નવ તત્ત્વોનો આશ્રય કરવો તે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે (દ્રષ્ટિનો વિષય છે). શ્રી સમયસારની ગાથા ૧૧માં પણ કહ્યું છે કે ‘વ્યવહારનય અભૂતાર્થ છે તથા શુદ્ધનય ભૂતાર્થ છે એમ ઋષીશ્વરોએ (ભગવાને) દર્શાવ્યું છે, જે જીવ ભૂતાર્થનો આશ્રય કરે છે તે જીવ નિશ્ચયથી સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે’ ત્યાર પછી એ જ શાસ્ત્રની ગાથા ૧૩માં કહ્યું કે “ભૂતાર્થનયથી જાણેલ જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ અને મોક્ષ એ નવ તત્ત્વો સમ્યક્ત્વ છે.” વળી એ ગાથાની ટીકામાં કહ્યું છે કે આ નવ તત્ત્વોમાં ભૂતાર્થનયથી એક જીવ જ પ્રકાશમાન છે, એમ તે એકપણે પ્રકાશતો શુદ્ધનયદ્વારા અનુભવાય છે અને જે આ અનુભૂતિ તે આત્મખ્યાતિ જ છે તથા આત્મખ્યાતિ તે સમ્યગ્દર્શન છે આ ગાથામાં ‘ભૂતાર્થનયે આશ્રય કરેલા નવ પદાર્થો સમ્યગ્દર્શનના વાસ્તવિક વિષય છે’ એમ કહ્યું છે પણ એ માત્ર કથનપદ્ધતિનો ભેદ છે-આશયભેદ નથી. અહીં ‘ભૂતાર્થનયે આશ્રય કરેલા નવપદાર્થો સમ્યગ્દર્શનના વિષય છે’ એમ કહેવાનું કારણ એ છે કે- શંકાકારે પ્રથમ ગાથા ૧૪૨ થી ૧૪૯માં નવ પદાર્થો બની શકતા નથી એમ કહ્યું હતું, અને ત્યાર પછી ગાથા ૧૭૯-૧૮૦માં એ નવપદાર્થોને આત્માથી સર્વથા ભિન્ન હોવાનું કહ્યું હતું, આ બંને કથનો દોષયુક્ત છે એમ દ્રઢ કરવા માટે આવી પદ્ધતિ અહીં ગ્રહણ કરી છે.

આગળ ગાથા ૨૧૮-૨૧૯માં શંકાકાર ફરીથી કહે છે કે જ્યારે નવતત્ત્વોમાં સમ્યગ્દ્રષ્ટિને નિશ્ચયથી માત્ર આત્માની ઉપલબ્ધિ થાય છે અને એ જ શુદ્ધઉપલબ્ધિ છે તો પછી સમ્યગ્દર્શનનો વિષય-નવપદાર્થ શી રીતે બની શકે? તેનું સમાધાન ગાથા ૨૨૦ થી ૨૨૩માં એમ કર્યું છે કે- મિથ્યાદ્રષ્ટિ તથા સમ્યગ્દ્રષ્ટિ બંનેને નવ પદાર્થોનો અનુભવ તો છે પરંતુ મિથ્યાદ્રષ્ટિને તે (અનુભવ) વિશેષરૂપે (અર્થાત્ વિભાવભાવરૂપ પર્યાયરૂપે) તથા સમ્યગ્દ્રષ્ટિને તે (અનુભવ) સામાન્યરૂપે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મારૂપે) થાય છે તેથી તે બંનેમાં એ અનુભવના સ્વાદનો તફાવત છે, અને એ વાત ગાથા ૨૨૪ થી ૨૨૫માં દ્રષ્ટાંત આપીને સિદ્ધ કરી છે.

નવતત્ત્વોમાં સામાન્યપણે આત્માને સમ્યગ્દ્રષ્ટિ કેવો જાણે છે તે ગાથા ૧૯૪થી ૧૯૬માં જણાવ્યું છે. અને ત્યાર પછી શુદ્ધનયના વિષયરૂપ આત્માનું સ્વરૂપ શ્રીસમયસારની ગાથા ૧૪ને અનુસરીને ગાથા ૨૩૪ થી ૨૩૭માં આપ્યું છે, વળી ગાથા ૪૦૩ તથા પંચાધ્યાયી પૂર્વાર્ધ ગાથા ૫૩૨ના ભાવાર્થમાં પણ શુદ્ધનયના આશ્રયથી જ ધર્મ થાય એમ કહ્યું છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન થાય એમ સમજવું).

એ પ્રમાણે ભૂતાર્થનયના આશ્રયથી જ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થઈ શકે છે એમ આ ગાથામાં જણાવ્યું છે. આ કથન અધ્યાત્મભાષાથી છે, આગમભાષામાં ઉપાદાન તથા નિમિત્ત બંનેને જણાવવામાં આવે છે. તેથી ત્યાં ‘જીવ અને કર્મ’ વગેરેની અવસ્થા કેવી હોય ત્યારે સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય? તે જણાવવામાં આવે છે” અર્થાત્ દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્માની ઉપલબ્ધિ નવ તત્ત્વને જાણતાં કેવી રીતે થાય છે તે અત્રે દરેકને સ્પષ્ટ સમજાવેલ છે.

ગાથા ૧૯૨ અન્વયાર્થ:- “જીવના સ્વરૂપને ચેતના કહે છે તે ચેતના અહીં સામાન્યરૂપથી એટલે દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ નિરંતર એક પ્રકારે હોય છે (તેને જ પરમપારિણામિક ભાવ, શુદ્ધાત્મા, કારણશુદ્ધપર્યાય વગેરે નામોથી ઓળખાય છે, તે વસ્તુનો સામાન્યભાવ છે અર્થાત્ વસ્તુને પર્યાયથી જોતાં તે પર્યાયનો સામાન્યભાવ છે) તથા વિશેષરૂપથી એટલે પર્યાયદ્રષ્ટિએ તે ચેતના ક્રમપૂર્વક બે પ્રકારની છે (અર્થાત્ ઔદયિક, ઉપશમ, ક્ષયોપશમ ભાવરૂપ અશુદ્ધ અથવા ક્ષાયિક ભાવરૂપ શુદ્ધ એમ બે પ્રકારની હોય છે) પણ તે યુગપત એટલે એક સાથે નહિં (અર્થાત્ જ્યારે ક્ષાયિકભાવ વિશેષ ભાવરૂપ હોય છે ત્યારે તે ઔદયિક વગેરેરૂપ નથી હોતો અર્થાત્ બંને સાથે નથી હોતા).”

અર્થાત્ શુદ્ધતત્ત્વ અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા એ કાંઈ નવતત્ત્વોથી વિલક્ષણ અર્થાત્ ભિન્ન અર્થાતરૂપ નથી પરંતુ કેવળ નવ તત્ત્વ સંબંધી વિકારોને બાદ કરતાં જ અર્થાત્ ગૌણ કરતાં જ એ નવ તત્ત્વ જ શુદ્ધ છે અર્થાત્ તે પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા જ છે અર્થાત્ તે જ દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ છે અર્થાત્ તે અપેક્ષાએ નવ તત્ત્વને જાણતાં સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે.



૧૮

સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ

હવે સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ જણાવે છે; પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથાઓ:-

ગાથા ૨૧૫ અન્વયાર્થ:- “તથા કેવળ આત્માની ઉપલબ્ધિ (અર્થાત્ ‘હું આત્મા છું’ એવી સમજ) પણ સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ બની શકતી નથી પરંતુ જો તે ઉપલબ્ધિ ‘શુદ્ધ’ વિશેષણસહિત હોય અર્થાત્ શુદ્ધ આત્મોપલબ્ધિ હોય (અર્થાત્ માત્ર ‘શુદ્ધાત્મા’ માં જ ‘હું પણું’ હોય) તો જ તે સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ થઈ શકે છે. જો તે આત્મોપલબ્ધિ અશુદ્ધ હોય તો તે સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ બની શકતી નથી.”

આપણે જો ભેદજ્ઞાનની વાત પૂર્વે કરેલ તે જ અત્રે જણાવેલ છે, ભેદજ્ઞાનરૂપ સ્વ અને પર બે અપેક્ષાએ હોય છે; એક, પરદ્રવ્યરૂપ કર્મો, શરીર, ઘર, મકાન, દુકાન, પત્ની, પુત્ર વગેરેથી હું ભિન્ન છું તેવું અન્ય દ્રવ્ય સાથેનું ભેદજ્ઞાનરૂપ સ્વ-પર હોય છે. અને તે પછીથી જો બીજું સ્વ-પર છે તે જ સમ્યગ્દર્શનનું કારણ અને લક્ષણ છે અને તે બીજા ભેદજ્ઞાનરૂપ સ્વ-પરમાં, સ્વરૂપ માત્ર શુદ્ધાત્મા તે સ્વ અને પરરૂપ તમામ અશુદ્ધભાવો, કે જે કર્મો (પુદ્ગલ) ના નિમિત્તે થાય છે; તે અશુદ્ધભાવો થાય છે તો મારાંમાં જ અર્થાત્ આત્મા જ તે ભાવરૂપ પરિણામે છે, પરંતુ તે ભાવોમાં ‘હું પણું’ કરવા જેવું નથી કારણ કે તે પરના નિમિત્તે થાય છે અને બીજું તે ક્ષણિક છે કારણ કે તે સિદ્ધોના આત્મામાં ઉપલબ્ધ નથી. તેથી તે ભાવો ત્રિકાળરૂપ નથી અને તેથી માત્ર ત્રિકાળી ધ્રુવરૂપ શુદ્ધાત્મા કે જે ત્રણે કાળે દરેક જીવોમાં ઉપલબ્ધ છે અને તે જ અપેક્ષાએ ‘સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે’ એમ કહેવાય છે તે ભાવમાં જ અર્થાત્ તે ‘શુદ્ધાત્મા’ માં જ ‘હું પણું’ કરતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે અને તેથી જ શુદ્ધ આત્માની ઉપલબ્ધિને સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ કહ્યું છે.

ગાથા ૨૨૧ અન્વયાર્થ:- “વસ્તુ (એટલે પૂર્ણવસ્તુ, તેનો કોઈ એક ભાગ એમ નહીં) સમ્યગ્જ્ઞાનીઓને સામાન્યરૂપથી (પરમપારિણામિકભાવરૂપથી, શુદ્ધદ્રવ્યાયર્થિકનયના વિષયરૂપથી, શુદ્ધાત્મારૂપથી અર્થાત્ કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપથી) અનુભવમાં આવે છે તેથી તે વસ્તુ (એટલે પૂર્ણવસ્તુ) કેવળ સામાન્યરૂપથી શુદ્ધ કહેવાય છે, તથા વિશેષ ભેદોની અપેક્ષાએ અશુદ્ધ કહેવાય છે”

ભાવાર્થ:- “મિથ્યાદ્રષ્ટિ જીવને રાગ તથા પર સાથે એકત્વબુદ્ધિ રહેવાથી પરવસ્તુમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણાની કલ્પના રહ્યા કરે છે તથા તે એવા અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષના કારણથી વસ્તુના વસ્તુપણાનો પ્રતિભાસ ન કરતાં માત્ર ઇષ્ટ-અનિષ્ટપણાડૂપથી જ (અર્થાત્ માત્ર વિશેષભાવોનો જ અનુભવ કરે છે કારણ તે પર્યાયદ્રષ્ટિ જ હોય છે) વસ્તુ નો અનુભવ કરે છે ત્યારે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષનો અભાવ (અર્થાત્ તેને માત્ર શુદ્ધ દ્રવ્યાયાર્થિકનયની દ્રષ્ટિ હોવાથી, રાગદ્વેષ ગૌણ કરી, શુદ્ધનો જ અનુભવ કરે છે તેથી સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને અજ્ઞાનમય રાગદ્વેષનો અભાવ) થયો હોવાથી તે પર વસ્તુમાં ઇષ્ટ-અનિષ્ટ કલ્પનાથી રહિત થઈને વસ્તુપણાનો જ અનુભવ કરે છે (માત્ર શુદ્ધાત્માનો-સામાન્યભાવનો જ અનુભવ કરે છે).”

ગાથા ૨૩૪-૨૩૭ અન્વયાર્થ:- “એક જ્ઞાનનું જ પાત્ર હોવાથી તથા બદ્ધ-સ્પૃષ્ટાદિ ભાવોનો અપાત્ર હોવાથી (અર્થાત્ તેમાં ‘હું પણું’ નહિ હોવાથી) સમ્યગ્દ્રષ્ટિ પોતાને પ્રત્યક્ષપૂર્વક સ્પષ્ટ પ્રકારથી વિશેષ (વિભાવભાવ) રહિત, અન્યના સંયોગરહિત, ચળાચળતા રહિત તથા અન્યપણાથી રહિત (અર્થાત્ ઔદેયિક આદિ ભાવોથી રહિત) સ્વાદનો આસ્વાદ કરે છે. તથા બંધ રહિત, તથા અસ્પૃષ્ટ, શુદ્ધ, સિદ્ધ સમાન (તેથી જ તેને દેશે સિદ્ધત્વનો અનુભવ થાય છે), શુદ્ધ સ્ફટિક સમાન, સદાય આકાશ સમાન પરિગ્રહ રહિત ઇન્દ્રિયોથી ઉપેક્ષિત અનંત જ્ઞાન-દર્શન-વીર્યમય અતિન્દ્રિયસુખાદિક અનંત સ્વાભાવિક ગુણો સહિત પોતાના આત્માનું શ્રદ્ધાન કરવાવાળો હોય છે. તેથી જોડે વાસ્તવમાં સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ જ્ઞાનમૂર્તિવાળો છે તો પણ પ્રસંગથી અર્થાત્ પુરુષાર્થની નિર્બળતાથી તેને અન્ય પદાર્થોની પણ ઇચ્છા થઈ જાય છે તોપણ તેને કૃતાર્થ જેવા પરમ ઉપેક્ષાભાવ વર્તે છે.”



૧૯

સમ્યગ્દ્રષ્ટિને ભોગ બંધનું કારણ નથી

આગળ, ચોથા અને પાંચમા ગુણસ્થાનકયુક્ત જીવ ભોગ ભોગવે છે તો કેમ ભોગવે છે અને તેમાં તેને બંધ નથી એ કઇ અપેક્ષાએ કહેવાય છે તેનું સ્પષ્ટિકરણ કરે છે અને કહે છે કે ઇન્દ્રિયજન્યસુખ, વાસ્તવમાં તો દુઃખ જ છે.

ગાથા ૨૩૯ અન્વયાર્થ:- “કારણ કે સુખ જેવા જણાવવાવાળા તે ઇન્દ્રિયજન્યસુખ, દુઃખરૂપ ફળને આપવાવાળાં હોવાથી દુઃખરૂપ જ છે. તેથી તે સુખાભાસ ત્યાગવા યોગ્ય છે, તથા સર્વથા અનિષ્ટ એ દુઃખોનાં જે કર્મ, હેતુ (નિમિત્ત) છે તે પણ ત્યાગવા યોગ્ય છે (અર્થાત્ દુઃખોનાં નિમિત્ત જે કર્મ છે તે પણ ત્યાગવા યોગ્ય છે).”

જે જીવો અજ્ઞાની છે તેને તો ઇન્દ્રિયજન્યસુખરૂપ સુખાભાસ પ્રિય હોવાથી નિયમથી દુઃખરૂપ જ છે કારણ કે દુઃખનું જે કારણ છે તેવાં કર્મો આવા સુખો પ્રત્યેના આકર્ષણથી અને તેવા સુખોને રાચી-માચીને ભોગવવાથી બંધાય છે કે જે કાળાંતરે દુઃખ આપવાવાળા જ બને છે. જ્યારે આત્મજ્ઞાની તેવા સુખોને ઉપેક્ષાભાવથી-પોતાની નિર્બળતા સમજીને ભોગવે છે અને તેથી તેને અલ્પબંધ થાય છે ખરો પણ તે અલ્પની અપેક્ષાએ નહિવત અર્થાત્ બંધ થતો નથી એમ જ કહેવાય છે કારણ કે તેને તે સુખમાં ‘હું પણું’ હોતું નથી અને જેમ રોગીને દવા માટેનો આદર રોગ મટે ત્યાં સુધી જ હોય છે તેમ આત્મજ્ઞાનીને પણ ઇન્દ્રિયજન્યસુખનો આદર પોતાના પુરુષાર્થની નિર્બળતા છે ત્યાં સુધી જ હોય છે અને આત્મજ્ઞાની તેવા સુખને સેવતો થકો પણ તેને પોતાના પુરુષાર્થની નિર્બળતા સમજીને પુરુષાર્થમાં વીર્ય ફોરવવા અંતરથી થનગનતો હોય છે તેથી જ તે અપેક્ષાએ તેવા સુખ તે ભોગવે છતાં તેને બંધકારક નથી તેમ કહેવાય છે.

ગાથા ૨૫૬ અન્વયાર્થ:- “જેમ જળોને ખરાબ રુધિર ચૂસવાથી તૃષ્ણાના બીજભૂત રતિ જ્ઞેવામાં આવે છે તે જ પ્રમાણે (અજ્ઞાની) સંસારી જીવોમાં પણ એ વિષયોમાં સુહૃતપણું (સારું માનવાથી, આદર હોવાથી, આકર્ષણ હોવાથી) માનવાથી તૃષ્ણાના બીજભૂત રતિ (આસક્તિ) જ્ઞેવામાં આવે છે” અર્થાત્ વિષયોની આવી આસક્તિ છોડવા જેવી છે એ વાત અવશ્ય ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે. કારણ કે:-

ગાથા ૨૫૮ અન્વયાર્થ:- “સંપૂર્ણ કથનનો સારાંશ આ છે કે- અહીં જગત જેને સુખ કહે છે તે સર્વ દુઃખ જ છે; તથા તે દુઃખ આત્માનો ધર્મ નહિ હોવાથી સમ્યગ્દ્રષ્ટિઓને તે દુઃખરૂપ સાંસારિક સુખોની અભિલાષા થતી નથી.” અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિઓને સુખના આકર્ષણનો અભિપ્રાય હોતો નથી.

ગાથા ૨૭૧ થી ૨૭૬ અન્વયાર્થ:- “જેમ રોગની પ્રતિક્રિયા કરતો કોઈ રોગી પુરુષ તે રોગઅવસ્થામાં રોગના પદને ઈચ્છતો નથી અર્થાત્ સરોગ અવસ્થાને ચાહતો નથી (અર્થાત્ જ્ઞાની પોતે જાણે છે કે આ જે હું રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામું છું તે મારી રોગગ્રસ્ત અવસ્થા છે કારણ તેણે શુદ્ધાત્માનો સ્વાદ અનુભવેલ છે તો ફરી-ફરી તે તેવી રાગગ્રસ્ત = રોગગ્રસ્ત અવસ્થા કેમ ઈચ્છે? અર્થાત્ નથી ઈચ્છતો) તો પછી બીજી વખત રોગ ઉત્પન્ન થવાની ઈચ્છાના વિષયમાં (અર્થાત્ નવીન કર્મબંધ થાય એવા કારણોમાં તો તે પ્રવર્તે જ શું કામ? અર્થાત્ પુરુષાર્થની નબળાઈ ન હોય તો ન જ પ્રવર્તે) તો કહેવું જ શું? અર્થાત્ ફરીથી રોગની ઉત્પત્તિ તો તે ઈચ્છવાનો જ નથી. એ જ પ્રમાણે જ્યારે ભાવકર્મોદ્વારા પીડિત થતો કર્મજન્ય ક્રિયાઓને કરવાવાળો જ્ઞાની કોઈપણ કર્મપદની ઈચ્છા કરતો નથી તો પછી તે ઈન્દ્રિયોના વિષયોનો અભિલાષી છે એમ ક્યા ન્યાયથી કહી શકાય? -કર્મમાત્રને નહિ ઈચ્છવાવાળા તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિને વેદનાનો પ્રતિકાર પણ અસિદ્ધ નથી (અર્થાત્ પ્રતિકાર હોય છે), કારણ કે -કષાયરૂપ રોગસહિત તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિને વેદનાનો પ્રતિકાર નવીન રોગાદિને ઉત્પન્ન કરવામાં કારણરૂપ કહી શકાતો નથી. (અર્થાત્ તેને તે વેદનાનો પ્રતિકાર અર્થાત્ રોગની દવા તરીકે સેવેલ ભોગ નવીન કર્મોના બંધરૂપ કહી શકાતો નથી) તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ ભોગોનું સેવન કરતો હોવા છતાં પણ વાસ્તવમાં ભોગોનું સેવન કરવાવાળો કહેવાતો નથી કારણ કે રાગરહિત (અર્થાત્ રાગમાં ‘હું પણું’ નથી એવો સમ્યગ્દ્રષ્ટિ) જીવને કર્તાબુદ્ધિ વિના કરેલા કર્મ રાગના કારણ નથી. જોકે કોઈ-કોઈ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને અર્થાત્ જઘન્યવર્તી (અર્થાત્ ચોથા ગુણસ્થાનકવાળા) સમ્યગ્દ્રષ્ટિને કર્મચેતના તથા કર્મફળચેતના હોય છે (અર્થાત્ કર્તા-ભોક્તા ભાવ જોવા મળે છે) તો પણ વાસ્તવમાં તે જ્ઞાનચેતના જ છે (કારણ કે તે દેખીતા કર્તા-ભોક્તા ભાવમાં ‘હું પણું’ ન હોવાથી તેને જ્ઞાનચેતના જ છે) કર્મમાં તથા કર્મફળમાં રહેવાવાળી ચેતનાનું ફળ બંધ થાય છે પરંતુ તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિને અજ્ઞાનમય રાગનો અભાવ હોવાથી (અર્થાત્ રાગમાં ‘હું પણા’નો અભાવ હોવાથી) બંધ થતો નથી તેથી તે જ્ઞાનચેતના જ છે.”



૨૦

નિમિત્ત-ઉપાદાનની સ્પષ્ટતા

હવે આગમભાષાથી સમજાવે છે કે સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ ક્યારે થાય છે? પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૩૭૮ અન્વયાર્થ:- “દૈવ (કર્મ) યોગથી, કાળાદિક લબ્ધિઓની પ્રાપ્તિ થતાં સંસારસાગર (નો કિનારો) નિકટ આવતાં અથવા ભવ્યભાવનો વિપાક થતાં જીવ, સમ્યગ્દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે.”

અત્રે જ્યારે સમ્યગ્દર્શન થાય ત્યારે યથાર્થ નિમિત્તનું જ્ઞાન કરાવેલ છે, અર્થાત્ કાર્યરૂપે તો ઉપાદાન સ્વયં જ પરિણામે છે પરંતુ ત્યારે યથાર્થ નિમિત્તની હાજરી અચૂક જ હોય છે. તેથી કહી શકાય કે “કાર્ય નિમિત્તથી તો થતું જ નથી, પરંતુ નિમિત્ત વગર પણ થતું જ નથી” અને તેથી જ જિનાગમમાં જીવને પતનના કારણભૂત નિમિત્તોથી દૂર રહેવાનો ઉપદેશ ઠેર ઠેર આપેલ છે અને તે યોગ્ય જ છે.

અન્યથા કોઈ એકાંતે એમ માને કે નિમિત્ત તો પરમ અકર્તા જ છે, અને સ્વચ્છંદે કરી ગમે તેવા નિમિત્તોનું સેવન કરે, તો તેને નિયમથી મિથ્યાત્વી અને અનંતસંસારી જ સમજવો કારણ કે તેને નિમિત્તનું યથાર્થ જ્ઞાન જ નથી. તેથી જ કહ્યું કે નિશ્ચયથી કાર્ય નિમિત્તથી તો થતું જ નથી કારણ કે ઉપાદાન સ્વયં જ કાર્યરૂપે પરિણામે છે નહિ કે નિમિત્ત, પરંતુ કાર્ય નિમિત્ત વગર પણ થતું નથી જ કારણ કે જ્યારે કોઈપણ કાર્ય થાય ત્યારે તેને યોગ્ય નિમિત્તની હાજરી અચૂક જ-અવિનાભાવે જ હોય છે અને તેથી જ મુમુક્ષુ જીવ વિવેકે કરી હંમેશા નબળા નિમિત્તોથી બચવાની જ કોશિષો કરે છે કે જે તેના પતનના કારણ બની શકે છે અને આ જ નિમિત્ત ઉપાદાનની યથાર્થ સમજણ છે; નિમિત્ત-ઉપાદાનની વિશેષ છણાવટ આગળ સમયસારના નિમિત્ત-ઉપાદાનના અધિકારમાં પણ કરીશું.



૨૧

ઉપયોગ અને લબ્ધિરૂપ સમ્યગ્દર્શન

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૪૦૪ અન્વયાર્થ:- “આટલું વિશેષ છે કે- સમ્યગ્દર્શન અને સ્વાનુભવ એ બન્નેમાં વિષમવ્યાપ્તિ છે. કારણ કે ‘સમ્યગ્દર્શનની સાથે ઉપયોગરૂપ સ્વાનુભૂતિ હોય જ’ આવી સમવ્યાપ્તિ નથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની હાજરી સમયે સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ અનુભવ હોય પણ છે અને નથી પણ હોતો તેથી સમવ્યાપ્તિ અર્થાત્ અવિનાભાવ ઉપસ્થિતિ નથી હોતી) પરંતુ લબ્ધિમાં અર્થાત્ લબ્ધિરૂપ (જ્ઞાનની લબ્ધ અને ઉપયોગ એવી બે અવસ્થાઓ હોય છે, તેમાં લબ્ધિરૂપ અવસ્થામાં) સ્વાનુભૂતિની સાથે સમ્યગ્દર્શનની સમવ્યાપ્તિ છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની હાજરીમાં જ્ઞાનમાં લબ્ધિરૂપે સ્વાનુભૂતિની હાજરી અવિનાભાવ અર્થાત્ અચૂક જ હોય છે).”

અર્થાત્ પૂર્વે પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા ૨૧૫ માં જણાવ્યા અનુસાર આત્માની ઉપલબ્ધિ ‘શુદ્ધ’ વિશેષણ સહિત હોય અર્થાત્ શુદ્ધોપયોગરૂપ સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ અનુભવ સહિત હોય તો જ તે સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ થઈ શકે છે અને જો તે આત્મોપલબ્ધિ અશુદ્ધ હોય તો તે સમ્યગ્દર્શનનું લક્ષણ બની શકતી નથી પરંતુ તે શુદ્ધોપયોગરૂપ સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ અનુભવનું સાતત્ય ક્ષણિક જ હોવા છતાં તેનું સાતત્ય લબ્ધરૂપ તો સમ્યગ્દર્શનની હાજરી સમયે અચૂક જ હોય છે.



૨૨

સ્વાનુભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા

હવે સ્વાનુભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા વિશે જણાવે છે- પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૪૨૩ અન્વયાર્થ:- “સ્વાનુભૂતિ વિનાની શ્રદ્ધા (અર્થાત્ કોઈ એમ માને કે નવ તત્ત્વની શ્રદ્ધા તે જ સમ્યગ્દર્શન અથવા સાચા દેવ-ગુરુ-ધર્મની શ્રદ્ધારૂપ સમ્યગ્દર્શન માનતાં હોય તો તેવી સ્વાનુભૂતિ વિનાની શ્રદ્ધા) સમીચિન (સાચી-કાર્યકારી) શ્રદ્ધા હોતી નથી તેથી જે સમ્યગ્દર્શનના લક્ષણભૂત શ્રદ્ધા યોગિકરુદ્ધિ-નિરુકિતથી (અર્થાત્ સ્વાનુભૂતિરૂપ યોગ સહિતની) સિદ્ધ અર્થવાળી છે (અર્થાત્ સાચી છે-કાર્યકારી છે) તે પણ વાસ્તવમાં સ્વાનુભૂતિની માફક અવિરુદ્ધ કથન છે (તેવી શ્રદ્ધારૂપ સમ્યગ્દર્શન તે સ્વાનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન જ છે)”

અર્થાત્ સ્વાનુભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા કાર્યકારી નથી અર્થાત્ પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર માત્ર વ્યવહારનયને જ માન્ય કરનારા મોટા ભાગના જૈનો એવું માને છે કે- સમ્યગ્દર્શન એટલે સાત/નવ તત્ત્વોની (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા અથવા સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રની (સ્વાત્માનુભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા. સમ્યગ્દર્શનની આ વ્યાખ્યા વ્યવહારનયના પક્ષની છે અર્થાત્ તેવી સ્વાનુભૂતિ વિનાની શ્રદ્ધા સમીચિન (સાચી-કાર્યકારી) શ્રદ્ધા હોતી નથી તેથી જે સમ્યગ્દર્શનના લક્ષણભૂત શ્રદ્ધા યોગિકરુદ્ધિ-નિરુકિતથી અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ યોગ સહિતની સિદ્ધ અર્થવાળી છે અર્થાત્ સાચી છે = કાર્યકારી છે અને તે સમીચિન (સાચી-કાર્યકારી) શ્રદ્ધા પણ વાસ્તવમાં સ્વાનુભૂતિની માફક અવિરુદ્ધ કથન છે અર્થાત્ તેવી શ્રદ્ધારૂપ સમ્યગ્દર્શન તે સ્વાનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન જ છે. અર્થાત્ જે એકને અર્થાત્ આત્માને જાણે છે તે જ સર્વને અર્થાત્ સાત/નવ તત્ત્વોને અને સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રને જાણે છે કારણ કે એક આત્માને જાણતાં જ તે જીવ સાચા દેવ તત્ત્વનો અંશે અનુભવ કરે છે અને તેથી જ તે સાચા દેવને અંતરથી ઓળખે છે અને તેમ સાચા દેવને જાણતાં જ અર્થાત્ (સ્વાત્માનુભૂતિ સહિતની) શ્રદ્ધા થતાં જ તે જીવ તેવા દેવ બનવાના માર્ગે ચાલતા સાચા ગુરુને પણ અંતરથી ઓળખે છે અને સાથે-સાથે તે જીવ તેવા દેવ બનવાનો માર્ગ બતાવતા સાચા શાસ્ત્રને પણ ઓળખે છે.

નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનની સાચી વ્યાખ્યા આવી હોવા છતાં વ્યવહારનયના પક્ષવાળાને સમ્યગ્દર્શનની આવી સાચી વ્યાખ્યા માન્ય નથી હોતી અથવા તેઓ આવી વ્યાખ્યાનો જ વિરોધ કરે છે અને તેથી કરીને તેઓ સમ્યગ્દર્શન એટલે સાત/નવ તત્ત્વોની કહેવાતી (સ્વાત્મભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા અથવા સાચા દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રની કહેવાતી (સ્વાત્મભૂતિ વગરની) શ્રદ્ધા એટલું જ માનતાં હોઈને તેઓને સ્વાત્મભૂતિ વગરની શ્રદ્ધા અને સ્વાત્મભૂતિ સહિતની શ્રદ્ધા વચ્ચેનો ફરક ખબર હોતો નથી અથવા ખબર કરવા માંગતા નથી; તેથી કરી તેઓ સમ્યગ્દર્શન કે જે ધર્મનો પાયો છે તેના વિશે જ અજ્ઞાણ રહીને આખી જિંદગી ક્રિયા-ધર્મ ઉત્તમ રીતે કરવા છતાં પણ સંસારના અંત માટેનો ધર્મ પામતા નથી કે જે કરુણા ઉપજાવતી વાત છે.



૨૩

સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવનો નિર્વિચિકિત્સાગુણ

સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ, માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરતો હોવા છતાં પોતાને બીજા સંસારી જીવો, જેવો જ અર્થાત્ કર્મોથી મલીન પણ અનુભવ કરતો હોય છે અને તેથી કરીને તે પોતાને અન્ય સંસારી જીવોથી ઉંચો માનીને તેમના પ્રત્યે ઘૃણા વગેરેના ભાવો કરતો નથી, તે જ તેનો નિર્વિચિકિત્સાગુણ છે તેમ જણાવે છે, તે અન્ય સર્વે સંસારી જીવોને પણ પોતાના જેવો જ અર્થાત્ સ્વરૂપથી સિદ્ધ સમાન જ સમજે (જાણે) છે.

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૫૮૪ અન્વયાર્થ:- “જેમ જળમાં કાંઈ (ગદલીમલિનતા) રહે છે. ઠીક, એ જ પ્રમાણે જ્યાં સુધી જીવમાં અશુચિરૂપ એવાં કર્મો છે ત્યાં સુધી હું (અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ = જ્ઞાની) અને તે સર્વ સંસારીજીવો સામાન્યરૂપથી (અર્થાત્ સમાન રીતથી) નિશ્ચયપૂર્વક કર્મોથી મલિન છે (એવો સમ્યગ્દ્રષ્ટિનો નિર્વિચિકિત્સાગુણ).” અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ = જ્ઞાની જીવને કોઈપણ જીવ પ્રત્યે તુચ્છભાવ નથી હોતો પરંતુ સર્વે જીવો પ્રત્યે તેમને સમભાવ = સામ્યભાવ હોય છે તે જ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવનો નિર્વિચિકિત્સાગુણ છે.



૨૪

સમ્યગ્દર્શન માટેની યોગ્યતા

સમ્યગ્દર્શન માટેની જીવની યોગ્યતા વિશે જણાવે છે, પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથાઓ:-

ગાથા ૭૨૪ અન્વયાર્થ:- “એ આઠે મૂળગુણો (વડના ટેટા, પીપર, કઠુમર, ઉમર તથા પાકર એ પાંચે ક્ષીરવૃક્ષને ઉદ્ભવર કહે છે. તે ત્રસ હિંસાના સ્થાન છે તેનો ત્યાગ તથા ત્રણ ‘મકાર’ એટલે કે મધ, માંસ અને મદિરા એ ત્રણનો નિયમથી ત્યાગ એ અષ્ટમૂળગુણ છે; અથવા પાંચ અણુવ્રતોનું પાલન ને મધ-માંસ-મધુનો નિરાતિચાર ત્યાગ તે શ્રાવકના આઠ મૂળગુણ છે-પૂ. ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીના **શ્રાવકધર્મપ્રકાશ** ઉપરના પ્રવચનો પૃષ્ઠ-૪૫) સ્વભાવથી અથવા કુળપરંપરાથી પણ આવે છે અર્થાત્ ગૃહસ્થોને પ્રાપ્ત થાય છે તથા આ સ્પષ્ટ છે કે એ મૂળગુણો વિના જીવોને સર્વ પ્રકારના વ્રત તથા સમ્યક્ત્વ હોઈ શકતાં નથી.” અર્થાત્ મૂળગુણોને જીવની સમ્યગ્દર્શન માટેની યોગ્યતારૂપ કહ્યા.

‘રત્નકરંડક શ્રાવકાચાર’ શ્લોક ૬૬ અનુસાર- “મુનિઓમાં ઉત્તમ ગણધરાદિક દેવ મધત્યાગ, માંસત્યાગ અને મધુત્યાગ સાથે પાંચ અણુવ્રતોને ગૃહસ્થોના આઠ મૂળગુણ કહે છે.”

પૂ. ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીના **શ્રાવકધર્મપ્રકાશ** ઉપરના પ્રવચનો પૃષ્ઠ-૪૫ ઉપર આગળ જણાવે છે કે- “અહીં શ્રાવકને મધ-માંસ વગેરેનો ત્યાગ હોવાનું કહ્યું, પરંતુ એ ધ્યાન રાખવું કે પહેલી ભૂમિકામાં સાધારણ જિજ્ઞાસુને પણ મધ-માંસ-મધુ-રાત્રિભોજન વગેરે તીવ્ર પાપનાં સ્થાનોનો તો ત્યાગ જ હોય જ, ને શ્રાવકને તો પ્રતિજ્ઞાપૂર્વક-નિયમથી તેનો ત્યાગ હોય છે.”

ગાથા ૭૪૦ અન્વયાર્થ:- “ગૃહસ્થોએ પોતાની શક્તિ અનુસાર પ્રતિમારૂપથી વ્રત અથવા વિના પ્રતિમારૂપથી વ્રત, એ પ્રમાણે બન્ને પ્રકારનો સંયમ પણ પાલન કરવો જોઈએ.” અર્થાત્ સર્વે જનોએ માત્ર આત્મલક્ષે અર્થાત્ આત્મપ્રાપ્તિ અર્થે સંયમ પણ પાલન કરવો જોઈએ.

આ જ વાત **પરમાત્મપ્રકાશ**-મોક્ષાધિકાર ગાથા ૬૪માં આ રીતે જણાવેલ છે કે- “પંચપરમેષ્ઠિને વંદન, પોતાના અશુભ કર્મોની નિંદા અને અપરાધોની પ્રાયશ્ચિતાદિ (પ્રતિક્રમણ) વિધિથી નિવૃત્તિ, આ બધું પુણ્યનું કારણ છે, મોક્ષનું કારણ નથી, એટલા માટે પહેલી અવસ્થામાં પાપને દૂર કરવા માટે જ્ઞાની પુરુષ આ બધું કરે છે, કરાવે છે અને કરવાવાળાને સારું જાણે છે તો પણ નિર્વિકલ્પ શુદ્ધોપયોગ અવસ્થામાં જ્ઞાની જીવ આ ત્રણેમાંથી એકપણ ન કરે, ન કરાવે અને કરવાવાળાને સારું ન જાણે (કારણ કે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધોપયોગ અવસ્થામાં જ્ઞાની જીવને કોઈ જ વિકલ્પ નથી હોતા).” અર્થાત્ ભૂમિકા અનુસાર ઉપદેશ હોય છે અન્યથા નહિ, એકાંતે નહિ.

૨૫

શુભોપયોગ નિર્જરાતું કારણ નથી

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૭૬૨ અન્વયાર્થ:- “બુદ્ધિની મંદતાથી આવી પણ આશંકા ન કરવી કે- શુભોપયોગ, એક દેશથી પણ નિર્જરાતું કારણ થાય છે કારણ કે શુભઉપયોગ, અશુભને લાવનાર હોવાથી (અર્થાત્ જ્ઞેઓ શુભ ઉપયોગમાં ધર્મ સમજે છે અને શુભ ઉપયોગથી પણ નિર્જરા માને છે એવો એક વર્ગ જૈન સમાજમાં છે, તેઓને અત્રે સમજવેલ છે કે સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન વિનાનો શુભઉપયોગ નિયમથી આત્મામાં અલ્પ શુભની સાથે સાથે મોહનીયાદિ ધાતી કર્મોનો આસ્રવ પણ કરાવે છે અને તે મોહનીયાદિ ધાતી કર્મો નિયમથી જીવને દુઃખના કરનારા છે, અર્થાત્ અશુભને લાવનારા છે અર્થાત્ શુભઉપયોગ જીવને સંસારથી મુક્ત કરાવતો નથી એમ સમજવવું છે. પરંતુ અત્રે શુભઉપયોગનો નિષેધ ન સમજવો, નહિ તો લોકો સ્વચ્છંદે અશુભ જ આચરશે; અત્રે ઉદ્દેશ શુભ છોડાવી, અશુભ માં લઈ જવાનો નથી પરંતુ નિર્જરા માત્ર શુદ્ધ ઉપયોગથી જ થાય છે તેમ જણાવવું છે અને તેથી જણાવેલ છે કે શુભ ઉપયોગ) તે નિર્જરાનો હેતુ થઈ શકતો નથી તથા ન તો તે શુભ પણ કહી શકાય છે.”

એટલા માટે શુભ ઉપયોગથી નિર્જરા ન સમજવી અને આ ગાથાથી શુભનો નિષેધ પણ ન સમજવો અર્થાત્ શુભ ઉપયોગ તે શુદ્ધ ઉપયોગનું (નિર્જરાનું) કારણ નથી પરંતુ તે શુભ ઉપયોગ શુભ ભાવોનું (અર્થાત્ વિતરાગ દેવ-ગુરુ-શાસ્ત્રના સંયોગનું) કારણ અવશ્ય છે તેથી માત્ર-માત્ર આત્માના લક્ષે અર્થાત્ આત્માની પ્રાપ્તિના અર્થે (સમ્યગ્દર્શન માટે) જે યોગ્યતારૂપ શુભઉપયોગ છે તે અપેક્ષાએ આચરવા યોગ્ય છે કારણ કે જીવને અશુભ ઉપયોગમાં રહેવાનો ઉપદેશ તો કોઈ જ શાસ્ત્ર આપતા નથી અને તેથી કરીને પુણ્ય(શુભ) ને હેય સમજીને સ્વચ્છંદે કોઈ અશુભ ઉપયોગરૂપે પરિણમતો હોય તો તે, પોતાના અનંત સંસારને વધારવાનો જ ઉપાય આચરી રહેલ છે, એમ સમજવું.

અત્રે શુભઉપયોગને નિર્જરાનું કારણ માનેલ નથી, કારણ કે ગુણશ્રેણી નિર્જરાનું એક માત્ર કારણ શુદ્ધોપયોગ જ છે, તે અપેક્ષાએ શુભઉપયોગ (પુણ્ય) હેય છે પરંતુ કોઈ સ્વચ્છંદે અન્યથા સમજીને જ્ઞે

પુણ્યને હેય કહી પાપરૂપે પરિણમે તો, એવો તો કોઈપણ આચાર્ય ભગવંતોનો ઉપદેશ જ નથી અને એવી અપેક્ષા પણ નથી; **રત્નકરંડક શ્રાવકાચાર** શ્લોક ૧૪૮માં પણ જણાવેલ છે કે- “પાપ જીવનો શત્રુ છે અને ધર્મ જીવનો મિત્ર છે, એમ નિશ્ચય કરતો થકો શ્રાવક જો શાસ્ત્રને જાણે છે, તો તે નિશ્ચયથી શ્રેષ્ઠ જ્ઞાતા અથવા કલ્યાણનો જ્ઞાતા થાય છે.” અને **આત્માનુશાસન** ગાથા ૮ માં પણ જણાવેલ છે કે- “પાપથી દુઃખ અને ધર્મથી સુખ એ વાત લૌકિકમાં પણ જગત્ પ્રસિદ્ધ છે અને સર્વ સમજુ મનુષ્યો પણ એમ જ માને છે. તો જેઓ સુખના અર્થી હોય તેમણે પાપ છોડી નિરંતર ધર્મ અંગીકાર કરવો.”

તેથી નિયમથી માત્ર માત્ર આત્મલક્ષે શુભમાં જ રહેવું યોગ્ય છે એવો અમારો અભિપ્રાય છે, જેમ કે **ઈષ્ટોપદેશ** ગાથા ૩માં કહ્યું છે કે- “વ્રતો દ્વારા દેવપદ પ્રાપ્ત કરવું સારું છે, પણ અરે અવ્રતોદ્વારા નરક-પદ પ્રાપ્ત કરવું સારું નથી. જેમ છાયા અને તાપમાં બેસી રાહ જોનારા બંને (પુરુષો) માં મોટો તફાવત છે, તેમ (વ્રત અને અવ્રતનું આચરણ કરનાર બંને પુરુષોમાં મોટો તફાવત છે.)”

આગળ **આત્માનુશાસન** ગાથા ૨૩૯ની ટીકામાં પણ પંડિત શ્રી ટોડરમલજીએ જણાવેલ છે કે- “નિશ્ચય દ્રષ્ટિએ જ્ઞેતાં એક શુદ્ધોપયોગ જ ઉપાદેય છે. શુભાશુભ સર્વ વિકલ્પો ત્યાજ્ય છે. તથાપિ તેવી તથાગ્નિ દશાસંપન્નતા પ્રાપ્ત ન થાય ત્યાં સુધી તે જ દશાની (શુદ્ધોપયોગરૂપ દશાની) પ્રાપ્તિના લક્ષ્યપૂર્વક પ્રશસ્ત યોગ (શુભઉપયોગરૂપ) પ્રવૃત્તિ ઉપાદેય છે. અર્થાત્ શુભ વચન, શુભ અંતઃકરણ અને શુભ કાયા-પરિસ્થિતિ આદરણીય છે-પ્રશંસનીય છે. પરંતુ મોક્ષમાર્ગનો સાક્ષાત્ કારણ નથી તો પણ શુદ્ધોપયોગ પ્રત્યે વૃત્તિનો પ્રવાહ કોઈ અંશે લક્ષિત થયો છે, તેવા લક્ષવાન જીવને પરંપરાએ કારણરૂપ થાય છે.” અને **આત્માનુશાસન** ગાથા ૨૪૦માં પણ જણાવેલ છે કે- “પ્રથમ અશુભોપયોગ છૂટે તો તેના અભાવથી પાપ અને તજ્જનિત પ્રતિકૂળ વ્યાકુળતારૂપ દુઃખ સ્વયં દૂર થાય, અને અનુક્રમે શુભના પણ છૂટવાથી પુણ્ય, તથા તજ્જનિત અનુકૂળ વ્યાકુળતા-જેને સંસાર પરિણામી જીવો સુખ કહે છે, તેનો પણ અભાવ થાય.....” માટે કોઈ સ્વચ્છંદે અશુભ ઉપયોગરૂપે ન પરિણમે એવી અમારી વિનંતિ છે કારણ કે એમ કરતાં તો આપના ભવના પણ ઠેકાણા નહીં રહે, જે વાત અત્યંત કરુણા ઉપજાવે તેવી છે.



૨૬

સમ્યગ્દર્શન વિના દ્રવ્ય ચારિત્ર

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથા:-

ગાથા ૭૬૯ અન્વયાર્થ:- “તથા જે સમ્યગ્દર્શન વિના દ્રવ્ય ચારિત્ર તથા શ્રુતજ્ઞાન હોય છે તે ન તો સમ્યક્જ્ઞાન છે તથા ન સમ્યક્ચારિત્ર છે, અગર છે તો તે જ્ઞાન તથા ચારિત્ર, માત્ર કર્મબંધને જ કરવાવાળાં છે.”

અર્થાત્ અત્રે પ્રથમ જણાવ્યાં અનુસાર કોઈ પોતાને દ્રવ્ય ચારિત્રથી જ અથવા ક્ષયોપશમ જ્ઞાનથી જ, અમે મોક્ષમાર્ગમાં જ છીએ એમ સમજતા હોય અને એમ સમજવતા હોય, તો તેઓને માટે લાલ બત્તી સમાન આ ગાથા છે. અર્થાત્ કોઈને પણ અભ્યાસરૂપ દ્રવ્ય ચારિત્ર લેવાનો કોઈ જ બાધ નથી, પરંતુ તેનાથી જો કોઈ પોતાને કૃત-કૃત્ય સમજતાં હોય અથવા સમજવતાં હોય અને પોતાને છઠ્ઠું અથવા સાતમું ગુણસ્થાનક માનતાં હોય અથવા મનાવતાં હોય અને શ્રાવક પોતાને પાંચમાં ગુણસ્થાનકમાં સ્થિત સમજતાં હોય અથવા સમજવતાં હોય તો તેઓને માટે આ ગાથા લાલ બત્તી સમાન અર્થાત્ સાવધાન કરવા માટે છે. એટલે જો કોઈ આવું ન સમજતાં, પોતાને માત્ર આત્માલક્ષે અર્થાત્ આત્મપ્રાપ્તિ અર્થે અભ્યાસરૂપ ચારિત્ર માનતાં, સમજતાં હોય અને તેના અર્થે જ શ્રુતજ્ઞાન આરાધતા હોય તો તેઓ કર્મબંધના કારણથી અંશે બચી શકે છે અને પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર પોતાનું કલ્યાણ પણ કરી શકે છે.



૨૭

સ્વ-પર વિષયનો ઉપયોગ કરવાવાળો પણ આત્મજ્ઞાની હોય

પંચાધ્યાયી ઉત્તરાર્ધની ગાથાઓ:-

ગાથા ૮૪૫ અન્વયાર્થ:- “તે ક્ષયોપશમિકજ્ઞાનનું વિકલ્પપણું (અર્થાત્ પરપદાર્થને જાણવારૂપ ઉપયોગ) જ્ઞાનચેતનાનું બાધક કારણ થઈ શકતું નથી. (અર્થાત્ જો કોઈ એમ માનતાં હોય કે જીવ પરને જાણે છે એમ માનતાં મિથ્યાત્વી થઈ જવાય છે અથવા જીવ પરને જાણે છે એમ માનતાં સમ્યગ્દર્શનને બાધ થાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન થતું નથી, તો અત્રે સમજાવે છે કે જ્ઞાનનું પરને જાણવું તે સમ્યગ્દર્શન માટે બાધક કારણ નથી), કારણ કે જે ગુણની જે પર્યાય થાય છે તે કથંચિત્ તદ્દરૂપ (તે ગુણરૂપ) જ થાય છે તેથી ક્ષયોપશમિકજ્ઞાનનો વિકલ્પ જ્ઞાનચેતનારૂપ શુદ્ધજ્ઞાનનો વેરી નથી.”

અર્થાત્ જ્યારે જ્ઞાન પરને જાણે છે ત્યારે તે જ્ઞાનગુણ પોતે જ તે આકારે થતો હોવા છતાં, તે પોતાનું સ્વતઃસિદ્ધ અર્થાત્ ધ્રુવરૂપ અર્થાત્ જ્ઞાનપણું છોડતો નથી અને તેથી જ તે પરને જાણવારૂપ જ્ઞાનગુણનું પરિણમન જ્ઞાનસામાન્યરૂપ જ્ઞાનચેતનાનો (શુદ્ધજ્ઞાનનો) વેરી નથી, બાધક નથી, એમ સમજીને આવો ડર હોય તો જરૂર કાઢી નાંખવો આવશ્યક છે; આ જ વાત આગળ દ્રઢ કરાવે છે.:-

ગાથા ૮૫૮ અન્વયાર્થ:- “જ્ઞાનોપયોગના સ્વભાવનો મહિમા જ કોઈ એવો છે કે તે (જ્ઞાનોપયોગ) પ્રતીપની માફક સ્વ, તથા પર બન્નેના આકારનો એકસાથ પ્રકાશક છે.” આ ગાથામાં જ્ઞાનનો સ્વ-પર પ્રકાશક સ્વભાવ દર્શાવેલ છે અને તેને જ જ્ઞાનનો મહિમા પણ જણાવેલ છે.

ગાથા ૮૬૦ અન્વયાર્થ:- “જે સ્વાત્મોપયોગી જ છે તે જ નિશ્ચયથી ઉપયુક્ત છે એવું નથી (અર્થાત્ જે માત્ર સ્વઉપયોગી છે તે જ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે એવું નથી), તથા જે પરપદાર્થોપયોગી છે તે જ નિશ્ચયથી ઉપયુક્ત છે એવું નથી (અર્થાત્ જે માત્ર પરને જાણે છે તે જ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે એવું પણ નથી), પરંતુ ઉભય (બન્ને) વિષયને વિષય કરવાવાળો જ (જાણવાવાળો જ) ઉપયુક્ત અર્થાત્ ઉપયોગ કરવાવાળો હોય છે એવો નિયમ છે, એ પ્રમાણે ક્રિયાનો અધ્યાહાર કરવો જોઈએ.” અર્થાત્ સમ્યક્જ્ઞાન સ્વ-પરના જ્ઞાન અને વિવેક સહિત જ હોય છે, અન્યથા નહિ.

ભાવાર્થ:- “માત્ર સ્વ વિષયનો વા માત્ર પર વિષયનો જ ઉપયોગ કરવાવાળો કોઈ ઉપયોગવાળો હોય છે એવું નથી, પરંતુ સ્વ-પર વિષયનો ઉપયોગ કરવાવાળો પણ આત્માજ્ઞાની હોય છે.”

તેથી જીવ પરને જાણે છે એમ માનતાં મિથ્યાત્વી થઈ જવાય છે અથવા જીવ પરને જાણે છે એમ માનતાં સમ્યગ્દર્શનને બાધ થાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન થતું નથી આવો કોઈ ડર હોય તો છોડી દેવો અને ઉલટું જ્ઞાન (આત્મા) પરને જાણે છે એવું કહેવાં/માનવામાં કોઈ જ બાધ નથી કારણ કે તે જ જ્ઞાનની ઓળખાણ છે અન્યથા તો તે જ્ઞાન જ નથી.

ગાથા ૮૭૭ અન્વયાર્થ:- “રાગાદિક ભાવોની સાથે બંધની વ્યાપ્તિ છે પણ જ્ઞાનના વિકલ્પોની સાથે બંધની વ્યાપ્તિ નથી (અર્થાત્ આત્મા પરને જાણે તો તેનાથી કોઈ જ બંધ નથી, માત્ર તે = આત્મા તેમાં રાગદ્વેષ કરે તેનાથી જ બંધ થાય છે, અને તેથી માત્ર પરનું જાણવું અથવા જણાવું તેમાં તેને બંધની વ્યાપ્તિ નથી અર્થાત્ તેનાથી કોઈ જ બંધ નથી) અર્થાત્ જ્ઞાન વિકલ્પોની સાથે આ બંધની અવ્યાપ્તિ જ છે પરંતુ રાગાદિકોની સાથે જેવી બંધની વ્યાપ્તિ છે તેવી જ્ઞાનવિકલ્પોની સાથે વ્યાપ્તિ નથી.”

અર્થાત્ આત્મા ખરેખર પોતાના જ્ઞાનમાં રચાતા આકારોને જ જાણે છે પરને જાણતો નથી (આંખની કીકીની જેમ) એવી જ્ઞાનની વ્યવસ્થા હોવાં છતાં, અર્થાત્ આત્મા પર સંબધીના પોતાના જ્ઞેયાકારોને જ જાણે છે, અને તેવું પરનું જાણવું કોઈ જ રીતે સમ્યગ્દર્શનમાં બાધક નથી તથા તેવું પરનું જાણવું કોઈ જ રીતે બંધનું કારણ પણ નથી; ઉલટું, તે અપેક્ષાએ સ્વમાં જવાની સીડી જરૂર છે કે જે વાત પૂર્વે અમે વિસ્તારથી સમજાવેલ જ છે કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે.



૨૮

પ્રવચનસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય

ગાથા ૩૩ ટીકા:- “જેમ ભગવાન, યુગપદ્ પરિણમતા સમસ્ત ચૈતન્યવિશેષોવાળા કેવળજ્ઞાન વડે, અનાદિનિધન-નિષ્કારણ-અસાધારણ-સ્વસંવેદમાન-ચૈતન્યસામાન્ય જેનો મહિમા છે તથા ચૈતકસ્વભાવ વડે એકપણું હોવાથી જે કેવળ (-એકલો, નિર્ભેળ, શુદ્ધ, અખંડ) છે...”

આવો છે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય અને તે ચૈતન્યસામાન્ય હોવાથી અર્થાત્ તેમાં સર્વ વિશેષભાવોનો અભાવ હોવાથી જ શુદ્ધાત્માને = દ્રષ્ટિના વિષયને અલિંગગ્રાહ્ય કહ્યો છે અર્થાત્ આ જ અપેક્ષાએ અલિંગગ્રહણના બોલ સમજવાં જરૂરી છે, અન્યથા નહિ અર્થાત્ એકાંતે નહિ કારણ કે એકાંતતો અનંત પરાવર્તનનું કારણ થવા સક્ષમ છે.

ગાથા ૮૦ ભાવાર્થ:- “અર્હતભગવાન અને પોતાનો આત્મા નિશ્ચયથી સમાન છે; વળી અર્હતભગવાન મોહરાગદ્વેષ રહિત હોવાને લીધે તેમનું સ્વરૂપ અત્યંત સ્પષ્ટ છે, તેથી જો જીવ દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયપણે તે (અર્હતભગવાનના) સ્વરૂપને મન વડે પ્રથમ સમજી લે તો ‘આ જે ‘આત્મા’ ‘આત્મા’ એવો એકરૂપ (કથંચિત સદૃશ) ત્રિકાળિક પ્રવાહ તે દ્રવ્ય છે, તેનું જે એકરૂપ રહેતું ચૈતન્યરૂપ વિશેષણ તે ગુણ છે અને તે પ્રવાહમાં જે ક્ષણવર્તી વ્યતિરેકો તે પર્યાય છે’ એમ પોતાનો આત્મા પણ દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયપણે તેને મન વડે ખ્યાલમાં આવે છે. એ રીતે ત્રિકાળિક નિજ આત્માને મન વડે ખ્યાલમાં લઈને પછી-જેમ મોતીઓને અને ઘોળાશને હારમાં જ અંતર્ગત કરીને કેવળ હારને જાણવામાં આવે છે તેમ-આત્મપર્યાયોને અને ચૈતન્યગુણને આત્મામાં જ અંતર્ગર્ભિત કરીને (સમ્યગ્દર્શનનો વિષય) કેવળ આત્માને જાણતાં પરિણામી-પરિણામ-પરિણતિના ભેદનો વિકલ્પ નાશ પામતો જતો હોવાથી જીવ નિષ્ક્રિય ચિન્માત્ર ભાવને (શુદ્ધોપયોગ) પામે છે અને તેથી મોહ (-દર્શનમોહ) નિરાશ્રય થયો થકો વિનાશ પામે છે.

જો આમ છે, તો મોહની સેના ઉપર વિજય મેળવવાનો ઉપાય મેં પ્રાપ્ત કર્યો છે” -એમ કહ્યું. અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું.

શ્લોક ૭:- “જેણે અન્ય દ્રવ્યથી ભિન્નતા દ્વારા (પ્રથમ ભેદજ્ઞાન) આત્માને એક બાજુ ખસેડ્યો

છે (અર્થાત્ પરદ્રવ્યોથી અલગ દર્શાવ્યો છે) તથા જેણે સમસ્ત વિશેષોના સમૂહને સામાન્યની અંદર મગ્ન કર્યો છે (દ્વિતિય ભેદજ્ઞાન) (અર્થાત્ સમસ્ત પર્યાયોને દ્રવ્યની અંદર ડૂબી ગયેલા દર્શાવ્યા છે) -એવો જે આ, ઉદ્ભવ મોહની લક્ષ્મીને (-ઋદ્ધિને, શોભાને) લૂંટી લેનારો શુદ્ધનય (અર્થાત્ શુદ્ધોપયોગ અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન = સ્વાત્માનુભૂતિ), તેણે ઉત્કટ વિવેક વડે તત્ત્વને (આત્મસ્વરૂપને) વિવક્ત (પ્રગટ) કર્યું છે.” અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું છે.

ગાથા ૨૪૦ ટીકા:- “જે પુરુષ અનેકાંતકેતન (-અનેકાંતયુક્ત) આગમજ્ઞાનના બળથી, સકળ પદાર્થોના જ્ઞેયાકારો સાથે મિલિત થતું વિશદ એક જ્ઞાન (જ્ઞેયાકારો અર્થાત્ જ્ઞાનાકારો કે જે જ્ઞાનના જ બનેલ હોવાથી તે આકારોને ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાનસામાન્યમાત્ર ‘શુદ્ધાત્મા’ કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે તે જ પ્રાપ્ત થાય છે) જેનો આકાર છે એવા આત્માને (‘શુદ્ધાત્મા’ને) શ્રદ્ધતો અને અનુભવતો થકો (અર્થાત્ શ્રદ્ધાનો અને અનુભવનો વિષય એક જ છે), આત્મામાં જ નિત્યનિશ્ચળ વૃત્તિને ઈચ્છતો થકો,...,” અત્રે સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્તિની વિધિ જણાવેલ છે.



૨૯

નિયમસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય

હવે આપણે શ્રી નિયમસાર શાસ્ત્રથી જાણીશું કે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય શું છે? અને સમ્યગ્દ્રષ્ટિ શેનું વેદન કરે છે? તે ક્યાં ભાવોમાં રક્ત હોય છે? વગેરે-.

શ્લોક ૨૨:- “સહજજ્ઞાનરૂપી સામ્રાજ્ય જેનું સર્વસ્વ છે એવો શુદ્ધચૈતન્યમય મારા આત્માને જાણીને (અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયે કરી પોતાને શુદ્ધાત્મા જાણીને), હું આ નિર્વિકલ્પ થાઉં.” અર્થાત્ શુદ્ધચૈતન્યમય આત્મા તે જ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે કારણ કે તેને ભાવતા જ જીવ નિર્વિકલ્પ થાય છે.

શ્લોક ૨૩:- “દૃશિ-જ્ઞપ્તિ-વૃત્તિસ્વરૂપ (દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપે પરિણમતું) એવું જે એક જ ચેતનસામાન્યરૂપ (અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયના વિષયરૂપ માત્ર સામાન્યજીવ-શુદ્ધાત્મા-પરમપારિણામિકભાવ) નિજ આત્મતત્ત્વ, તે મોક્ષેચ્છુઓને (મોક્ષનો) પ્રસિદ્ધ માર્ગ છે; આ માર્ગ વિના મોક્ષ નથી.”

અર્થાત્ આ સામાન્યજીવમાત્ર કે જેને સહજપરિણામી અથવા તો પરમપારિણામિકભાવરૂપ પણ કહેવાય છે તે જ દ્રષ્ટિનો વિષય છે, અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને તેનાથી જ સમ્યગ્દર્શન થતાં, તેને જ પ્રસિદ્ધ મોક્ષનો માર્ગ કહ્યો કારણ કે સમ્યગ્દર્શનથી જ તે માર્ગમાં પ્રવેશ છે.

શ્લોક ૨૪:- “પરભાવ હોવા છતાં (અર્થાત્ વિભાવરૂપ ઔદાચિકભાવ હોવા છતાં, તે ઔદાચિક ભાવને શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયે કરી પરભાવ જણાવેલ છે કારણ કે તે કર્મો અર્થાત્ પરની અપેક્ષાએ = નિમિત્તે હોય છે), સહજગુણમણિની ખાણરૂપ અને પૂર્ણજ્ઞાનવાળા શુદ્ધાત્માને (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માને) એકને જે (ભેદજ્ઞાને કરી) તીક્ષ્ણબુદ્ધિવાળો શુદ્ધદ્રષ્ટિ (અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકચક્ષુથી) પુરુષ ભજે છે (અર્થાત્ તે શુદ્ધ ભાવમાં ‘હું પણું’ કરે છે), તે પુરુષ પરમ શ્રીરૂપી કામિનીનો (મુક્તિસુંદરીનો) વલ્લભ બને છે.” અર્થાત્ જીવ શુદ્ધાત્મામાં એકત્વ કરીને સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થતાં મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવેશ પામીને અવશ્ય મુક્તિને પામે છે.

શ્લોક ૨૫:- “એ રીતે પર ગુણપર્યાયો હોવા છતાં (અર્થાત્ આત્મા ઔદાયિક ભાવરૂપે પરિણમતો હોવા છતાં અર્થાત્ આત્મા અશુદ્ધરૂપે પરિણમેલ હોવા છતાં), ઉત્તમ પુરુષોના હૃદયકમળમાં (અર્થાત્ મનમાં) કારણ-આત્મા વિરાજે છે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ કારણપરમાત્મા વિરાજે છે-લક્ષમાં રહે છે). પોતાથી ઉત્પન્ન એવા તે પરબ્રહ્મરૂપ સમયસારને - કે જેને તું ભજી રહ્યો છે (અર્થાત્ જેમાં તું ‘હું પણું’ કરી રહ્યો છે) તેને, હે ભવ્યસાદૃલ (ભવ્યોત્તમ), તું શીઘ્ર ભજ (માત્ર તેમાં જ ઉપયોગ રાખ), તું તે છે.” આચાર્ય ભગવંત કહે છે કે ‘તું તે છે’ અર્થાત્ તું માત્ર તેમાં જ ‘હું પણું’ (એકત્વ) કર, કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને તેનો જ અનુભવ થતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થઈ જાય છે, તેથી કહે છે તું તે છે, આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે.

શ્લોક ૨૬:- “જીવત્વ ક્વચિત્ સદ્ગુણો સહિત વિલસે છે-દેખાય છે, ક્વચિત્ અશુદ્ધરૂપ ગુણો સહિત વિલસે છે (અર્થાત્ કોઈ જીવ પ્રગટ ગુણો સહિત જણાય છે અને કોઈના ગુણો અશુદ્ધરૂપે પરિણમેલ હોવાથી અશુદ્ધ ભાસે છે), ક્વચિત્ સહજ પર્યાયો સહિત વિલસે છે (અર્થાત્ કોઈ કાર્યસમયસારરૂપ પરિણમેલ હોય છે) અને ક્વચિત્ અશુદ્ધ પર્યાયો સહિત વિલસે છે (અર્થાત્ કોઈ જીવો સંસારમાં અશુદ્ધ પર્યાયો સહિત પરિણમેલા જણાય છે) આ બધાથી સહિત હોવા છતાં પણ (અર્થાત્ કોઈ પ્રગટભાવ શુદ્ધરૂપે છે અથવા કોઈ પ્રગટભાવ અશુદ્ધરૂપ હોવા છતાં) પણ જે આ બધાથી રહિત છે (અર્થાત્ જે શુદ્ધ, અશુદ્ધ ભાવોરૂપ જણાવેલ તમામ વિશેષભાવોથી રહિત છે અર્થાત્ ઔદાયિક, ઉપશમિક, ક્ષયોપશમિક અને ક્ષાયિકભાવોથી રહિત છે) એવા આ જીવત્વને (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ પરિણમતા શુદ્ધાત્મારૂપ કારણ સમયસારને - કારણ શુદ્ધ પર્યાયને) હું સકળ અર્થની સિદ્ધિ માટે સદા નમું છું, ભાવું છું.” કારણ કે તે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને તેથી તે ભાવમાં જ ‘હું પણું’ કરતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે કે જેથી મોક્ષયાત્રાનો પ્રારંભ થાય છે અને કાળે કરી મોક્ષ થતાં જ સકળ અર્થની સિદ્ધિ થાય છે, આવો ભાવ આ ગાથામાં વ્યક્ત કરેલ છે.

શ્લોક ૩૦:- “સકળ મોહરાગદ્વેષવાળો જે કોઈ પુરુષ પરમગુરુના ચરણકમળયુગલની સેવાના પ્રસાદથી (અર્થાત્ પરમગુરુ પાસેથી તત્ત્વ સમજીને) - નિર્વિકલ્પ સહજ સમયસારને (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ કારણ સમયસારને) જાણે છે, તે પુરુષ પરમશ્રીરૂપી સુંદરીનો પ્રિયકાંત થાય છે.” અર્થાત્ આ કાળે આ નિર્વિકલ્પ સહજ સમયસારને જાણવાવાળાને પરમગુરુ કહ્યાં છે કારણ કે આ કાળે સમ્યગ્દર્શનયુક્ત જીવો બહુ જ જૂજ હોય છે અને તેવા પરમગુરુના કહ્યા અનુસાર નિર્વિકલ્પ સહજ સમયસારને જે જાણે છે અર્થાત્ અનુભવે છે તે સમ્યગ્દર્શનયુક્ત થઈને નિયમથી મુક્ત થાય છે.

શ્લોક ૩૪:- “(અમારા આત્મસ્વભાવમાં) વિભાવ અસત્ હોવાથી (અર્થાત્ અત્યારે ભલે અમારા આત્મામાં ઔદાયિકભાવરૂપ વિભાવ હોય પરંતુ તે ક્ષણિક છે, તે ત્રણે કાળે રહેવાવળો નથી, તેથી અસત્

છે) તેની અમને ચિંતા નથી; અમે તો હૃદયકમળમાં સ્થિત (અર્થાત્ મનમાં જે શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયના વિષયરૂપ સહજ સમયસારરૂપ મારું સ્વરૂપ છે તેમાં સ્થિત), સર્વ કર્મથી વિમુક્ત, શુદ્ધઆત્માને એકને સતત અનુભવીએ છીએ, કારણ કે અન્ય કોઈ પ્રકારે મુક્તિ નથી, નથી, નથી જ.” અર્થાત્ અન્ય કોઈ ભાવ ઉપાદેય નથી અન્ય કોઈ ભાવ ભજવા જેવો નથી; એક માત્ર શુદ્ધાત્માને ભજતા જ, અનુભવતા જ અને તેમાં જ સ્થિરતા કરતાં જ મુક્તિ સહજ જ છે અન્ય કોઈ રીતે નથી, નથી, નથી જ(ભાર આપવા ત્રણ વખત ‘નથી’ કહ્યું છે).

ગાથા ૧૯ અન્વયાર્થ:- “દ્રવ્યાર્થિકનયે જીવો પૂર્વકથિત પર્યાયોથી વ્યતિરિકત (રહિત) છે; પર્યાયનયે જીવો તે પર્યાયથી સંયુક્ત છે, આ રીતે જીવો બંને નયોથી સંયુક્ત છે.”

અર્થાત્ એક જ સંસારી જીવને જ્ઞેવાની = અનુભવવાની દ્રષ્ટિભેદે ભેદ છે, તે જીવમાં કોઈ ભાગ શુદ્ધ અથવા કોઈ ભાગ અશુદ્ધ એવું નથી. પરંતુ અપેક્ષાએ અર્થાત્ દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ અથવા પર્યાયદ્રષ્ટિએ તે જ જીવ અનુક્રમે શુદ્ધ અથવા અશુદ્ધ ભાસે છે; આથી જ્ઞે કાંઈ કરવાનું હોય તો- તે માત્ર દ્રષ્ટિ બદલવાની છે, અન્ય કાંઈ નહિ.

શ્લોક ૩૬:- “જ્ઞેઓ બે નયોના સંબંધને નહિ ઉલ્લંઘતા થકા (અર્થાત્ કોઈપણ વાત અપેક્ષાએ સમજવાવાળાં અર્થાત્ એકાંતે શુદ્ધ અથવા એકાંતે અશુદ્ધ કહેવાવાળાં-માનવાવાળાં એ બન્ને મિથ્યાત્વી, જ્યારે અપેક્ષાએ શુદ્ધ અને અપેક્ષાએ અશુદ્ધ માનવાવાળાં-કહેવાવાળાં નયોના સંબંધને નહિ ઉલ્લંઘતા જીવો સમજવાં) પરમજિનના પાદપંકજયુગલમાં મત્ત થયેલા ભ્રમર સમાન છે (અર્થાત્ એવા જીવો પરમજિનરૂપ એવા પોતાના શુદ્ધાત્મામાં -પરમપારિણામિકભાવમાં-કારણસમયસારમાં-કારણશુદ્ધપર્યાયમાં મત્ત છે.) એવા જે સત્પુરુષો તેઓ શીઘ્ર સમય-સારને (કાર્ય સમયસારને) અવશ્ય પામે છે. પૃથ્વી ઉપર મતના કથનથી સજ્જનોને શું ફળ છે (અર્થાત્ જગતના જૈનેતર દર્શનોનાં મિથ્યા કથનોથી સજ્જનોને શો લાભ છે?)”અર્થાત્ જે કોઈ દર્શન આ શુદ્ધાત્મારૂપ કારણસમયસારને અન્ય કોઈ રીતે અર્થાત્ એકાંતે શુદ્ધ સમજે છે અથવા એકાંતે અશુદ્ધ સમજે છે તે પણ જૈનેતર દર્શન જ છે અર્થાત્ મિથ્યાદર્શન જ છે.



૩૦

ધ્યાન વિશે

હવે આપણે થોડુંક ધ્યાન વિશે સમજીને પછી આગળ વધીએ. કોઈપણ વસ્તુ -વ્યક્તિ- પરિસ્થિતી આદિ ઉપર મનનું એકાગ્રતાપૂર્વક નું ચિંતન ધ્યાન કહેવાય છે. આપણે અત્યાર સુધી જ્ઞેયું કે મનનું સમ્યગ્દર્શનમાં ખૂબજ મહત્વ છે, જેમ કે **સમાધિતંત્ર** ગાથા ૩૫માં જણાવેલ છે કે- “જેનું મનરૂપી જલ રાગ-દ્વેષાદિ તરંગોથી ચંચલ થતું નથી, તે આત્માના યથાર્થ સ્વરૂપને દેખે છે-અનુભવે છે, તે આત્મતત્ત્વને બીજા માણસ- રાગ-દ્વેષાદિથી આકુલિત ચિત્તવાળો (મનવાળો) માણસ દેખી શકતો નથી.” અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય તે પણ મન થકી જ ચિંતન થાય છે અને અતિન્દ્રિય સ્વાનુભૂતિ કાળે પણ તે ભાવમન જ અતિન્દ્રિયજ્ઞાનરૂપ પરિણમે છે.

તેથી કરીને મન કયા વિષય ઉપર ચિંતન કરે છે અથવા મન કયા વિષયોમાં એકાગ્રતા કરે છે તેના ઉપર જ બંધ અને મોક્ષનો આધાર છે. જેમ કે **પરમાત્મપ્રકાશ-મોક્ષાધિકાર** ગાથા ૧૪૦માં જણાવેલ છે કે- “પાંચ ઈન્દ્રિયોના સ્વામી મનને તમે વશમાં કરો, તે મનના વશ થવાથી તે પાંચ ઈન્દ્રિયો વશમાં થઈ જાય છે. જેમ કે વૃક્ષના મૂળનો નાશ થતાં પાંદડા નિશ્ચયથી સૂકાઈ જાય છે.” અર્થાત્ મન જ બંધનું કારણ છે અને મન જ મુક્તિનું કારણ છે.

આ વાત કોઈએ એકાંતે ન સમજવી, આ વાત અપેક્ષાએ કહેવામાં આવી છે; કારણ કે જે મન છે તે જ સમ્યગ્દર્શનનું નિમિત્ત કારણ છે અને બંધનું પણ નિમિત્ત કારણ છે એ અપેક્ષાએ વિવેકપૂર્વક આ વાત કહેવામાં આવી છે. જેમ કે **પરમાત્મપ્રકાશ-મોક્ષાધિકાર** ગાથા ૧૫૭માં જણાવેલ છે કે- “જેઓએ મનને શીઘ્ર જ વશમાં કરીને પોતાના આત્માને પરમાત્મામાં ન મેળવ્યો (અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિ ન કરી), હે શિષ્ય! જેઓની આવી શક્તિ નથી, તે યોગથી શું કરી શકે? (અર્થાત્ તેવા જીવો અધ્યાત્મયોગથી સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ ફાયદો લઈ શકતાં નથી)” આ રીતે મોક્ષમાર્ગમાં મનનું ખૂબ જ મહત્વ હોવાથી ઘણાં ગ્રંથોમાં ધ્યાન વિશે ઘણું બધું જણાવવામાં આવ્યું છે, પરંતુ અત્રે તેનો માત્ર થોડોક ઉલ્લેખ કરીને આપણે આગળ વધીશું.

ધ્યાન શુભ, અશુભ અને શુદ્ધરૂપ ત્રણ પ્રકારે હોય છે, તેના ચાર પ્રકાર છે - આર્તધ્યાન, રોદ્રધ્યાન, ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાન; આ ચાર પ્રકારનાં પણ પેટાં પ્રકારો છે. મિથ્યાત્વી જીવોને આર્તધ્યાન અને રોદ્રધ્યાન નામના બે અશુભ ધ્યાન સહજ જ હોય છે કારણ કે તેવાં જ ધ્યાનનાં, તેઓને

અનાદિના સંસ્કાર છે; છતાં તે પ્રયત્નપૂર્વક મનને અશુભમાં જતું અટકાવી શકે છે. તે મનને અશુભમાં જતું અટકાવવાની આવી રીતો છે, જેમ કે- આત્મલક્ષે શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ, આત્મસ્વરૂપનું ચિંતન, છ દ્રવ્યોરૂપ લોકનું ચિંતન, નવ તત્ત્વોનું ચિંતન, ભગવાનની આજ્ઞાનું ચિંતન, કર્મ-વિપાકનું ચિંતન, કર્મની વિચિત્રતાનું ચિંતન, લોકના સ્વરૂપનું ચિંતન વગેરે તે કરી શકે છે. આવું મિથ્યાત્વી જીવોનું ધ્યાન પણ શુભરૂપ ધર્મધ્યાન કહેવાય છે, નહિ કે શુદ્ધરૂપ ધર્મધ્યાન; તેથી તેને અપૂર્વ નિર્જરાનું કારણ માન્યું નથી કારણ કે અપૂર્વ નિર્જરા માટે તે ધ્યાન સમ્યગ્દર્શન સહિત હોવું આવશ્યક છે અર્થાત્ શુદ્ધરૂપ ધર્મધ્યાન હોવું આવશ્યક છે. સમ્યગ્દ્રષ્ટિને આ ઉપરાંત શુદ્ધાત્માનું ધ્યાન મુખ્ય હોય છે કે જેથી કરી તે ગુણશ્રેણી નિર્જરા દ્વારા ગુણસ્થાનક આરોહણ કરતાં કરતાં આગળ શુકલધ્યાનરૂપ અગ્નિથી સર્વ ઘાતી કર્મોનો નાશ કરી, કેવલજ્ઞાન-કેવલદર્શન પ્રાપ્ત કરે છે અને કાળે કરી સિદ્ધત્વને પામે છે.

ધર્મધ્યાનના પેટા પ્રકારોરૂપ તમામ ધ્યાનના પ્રકારમાં આત્મા જ કેન્દ્રમાં છે અર્થાત્ કોઈપણ સમ્યક્ધ્યાન તેને જ કહેવાય કે જેમાં આત્માં જ કેન્દ્રમાં હોય અને આત્મપ્રાપ્તિ જ તેનું લક્ષ હોય. ઘણાં એવું માને છે કે આત્મજ્ઞાન અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન ધ્યાન વગર થતું જ નથી તો તેઓને અમે કહીએ છીએ કે ખરેખર સમ્યગ્દર્શન ભેદજ્ઞાન વગર થતું જ નથી, ધ્યાન વગર તો થાય છે. તેથી સમ્યગ્દર્શન માટેની આવશ્યકતા તે ધ્યાન નથી પરંતુ શાસ્ત્રો થી સારી રીતે નિર્ણય કરેલ તત્ત્વનું જ્ઞાન અને સમ્યગ્દર્શનનાં વિષય નું જ્ઞાન અને તે જ્ઞાન થયાં બાદ યથાર્થ ભેદજ્ઞાન થતાં જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મામાં 'હું પણું' થતાં ('સોહં' થતાં) જ સ્વાત્માનુભૂતિપૂર્વક સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે; તેથી આગ્રહ ધ્યાનનો નહિ પરંતુ યથાર્થ તત્ત્વનિર્ણયનો રાખવો આવશ્યક છે અને તે જ કરવા યોગ્ય છે.

અન્યમતિના ધ્યાન, જેવાં કે- કોઈ એક બિંદુ ઉપર એકાગ્રતા કરાવે, તો કોઈ શ્વાસોશ્વાસ ઉપર એકાગ્રતા કરાવે અથવા તો અન્ય કોઈ રીતે, પણ જેનાથી દેહાધ્યાસ જ દ્રઢ થતો હોય એવાં કોઈપણ ધ્યાન ખરેખર તો આર્તધ્યાનરૂપ જ છે. આવા ધ્યાનથી મનને થોડીક શાંતિ મળતી હોવાથી લોકો છેતરાય જાય છે અને તેને જ સાચું ધ્યાન માનવાં લાગે છે. બીજું, શ્વાસોશ્વાસ જ્ઞેવાથી અને તેનો સારો અભ્યાસ હોય, તેને કષાયનો ઉદ્ભવ થાય તેની જાણ થવાં છતાં, પોતે કોણ છે એનું સ્વાત્માનુભૂતિ પૂર્વકનું જ્ઞાન નહિ હોવાથી, આવા બધાં જ ધ્યાનો આર્તધ્યાનરૂપ જ પરિણમે છે. તે આર્તધ્યાનનું ફળ છે તિર્યચગતિ, જ્યારે ક્રોધ, માન, માયા-કપટરૂપ ધ્યાન તે રોદ્રધ્યાન છે અને તેનું ફળ છે નરકગતિ; ધર્મધ્યાનના પેટા પ્રકારોમાં આત્મા જ કેન્દ્રમાં હોવાથી જ તેને સમ્યક્ધ્યાન કહેવાય છે.

મનને ચકાસવા માટે પોતાને શું ગમે છે? તે ચકાસવું, આ છે આત્મપ્રાપ્તિનું બેરોમીટર-થર્મોમીટર. આ પ્રશ્નનો ઉત્તર ચિંતવવો. જ્યાં સુધી ઉત્તરમાં કોઈપણ સાંસારિક ઈચ્છા/આકાંક્ષા હોય ત્યાં સુધી પોતાની ગતિ સંસાર તરફની સમજાવી અને જ્યારે ઉત્તર- એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિ, એવો હોય તો સમજાવું કે આપના સંસારનો કિનારો બહુ નજીક આવી ગયેલ છે; માટે તે માટેનો પુરુષાર્થ વધારવો.

૩૧

સાધકને સલાહ

સાધક આત્માએ સૌ પ્રથમ તો પોતાનું લક્ષ્ય દુનિયા ઉપરથી હટાવીને “હું અને કર્મો” આટલું જરૂર સમજી લેવા જેવું છે કારણ કે અનાદિથી જે મારી રખડપટ્ટી ચાલે છે તે કર્મોને કારણે જ છે. તે કર્મો કાંઈ માત્ર પુદ્ગલરૂપ નથી, તે કર્મો એટલે મારા જ પૂર્વે કરેલા ભાવો છે કે જેનાં નિમિત્તે તે પુદ્ગલો કર્મરૂપે પરિણમેલ છે. તેથી સમજવાનું એ છે કે મને જો કોઈએ સૌથી અધિક દુઃખી કર્યો હોય તો તે માત્ર ને માત્ર ‘હું’ જ છું, અર્થાત્ તે માત્ર મારા જ પૂર્વે કરેલા ભાવો છે કે જેના નિમિત્તે, પુદ્ગલ કર્મરૂપ થયા. અને તે પુદ્ગલરૂપ કર્મોનો ઉદય થતાં જ હું તેના નિમિત્તે પરિણમી ને દુઃખી થયો.

જો વ્યવસ્થા આવી જ હોયતો હું એમ કેમ વિચારી શકું કે કોઈ અન્ય વ્યક્તિએ મને દુઃખી કર્યો અથવા મારું અહિત કર્યું. કારણ આવું વિચારતાં જ તે વ્યક્તિ સાથેના સાંકળરૂપ સંબંધમાં એક નવી કડી ઉમેરાય છે અને મારાં નવા કર્મો બંધાય છે કે જેના ઉદય વખતે ફરીથી આવી જ રીતે નવાં કર્મો બંધાવાની સંભાવના ઉભી જ રહેશે, આવાં અનુબંધને જ અનંતાનુબંધી કષાય કહેવાય છે.

બીજાંનો દોષ જોવાથી આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાન થાય છે, તે ન થાય તેના માટે સાધક જીવે દુઃખ કાળે એવું વિચારવું કે - ‘અહો! મેં આવું દુષ્ટત્ય પૂર્વે કર્યું હતું? તો તે માટે મારા મિચ્છામિ દુક્કડમ! (આ છે પ્રતિક્રમણ) તેં માટે હું પસ્તાવાપૂર્વક મારી નિંદા કરું છું અને હવે પછીથી હું આવા ભાવ ક્યારેય નહિ કરું એવી પ્રતિજ્ઞા (પચ્ચકખાણ) કરું છું (આ છે પ્રત્યાખ્યાન) અને જે વ્યક્તિ મને મારાં આવા ભાવોથી (કર્મોથી) છોડાવવામાં નિમિત્ત થયા છે, તે મારા પરમ ઉપકારી છે તેથી તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.’ આવું વિચારતાં તે વ્યક્તિ પ્રત્યે નહિ રોષ આવે કે નહિ અભાવ આવે, આવશે તો માત્ર કૃતજ્ઞતા આવશે. અને હું આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનથી બચીને શુભભાવરૂપ ધર્મધ્યાનમાં સ્થિત રહેવાથી એકતો તે વ્યક્તિ સાથેની સાંકળ તૂટી જશે (વેર છૂટી જશે) અને નવાં દુઃખદાયક કર્મોનો બંધ અટકી જશે. જેથી કરીને મુમુક્ષુ જીવે આવું જ વિચારવું અને પોતાને તથા સર્વેને માત્ર શુદ્ધાત્મા જોવારૂપ (જેમ પૂર્વે અપેક્ષાએ સમજાવ્યો છે એવો, એકાંત નહિ) ભાવમાં રહીને તત્ત્વનો નિર્ણય અને સમ્યગ્દર્શન જ કરવા યોગ્ય છે.

અત્રે કોઈ કહે કે આપ તો શુભની વાત કરી રહ્યા છો? તેઓને અમે કહીએ છીએ કે કોઈપણ જીવ નિરંતર કોઈ ને કોઈ (શુભ અથવા અશુભ) ધ્યાન/ભાવ કરીને અનંતાનંત કર્મોથી બંધાઈ જ રહ્યો છે અને

જો તે પ્રયત્નપૂર્વક આત્મલક્ષે શુભમાં નહીં રહે, તો નિયમથી અશુભમાં જ રહેશે કે જેનું ફળ નરકગતિ તથા અનંત કાળની તિર્યચગતિ છે; જ્યારે એક માત્ર આત્મલક્ષે જે જીવ શુભમાં પ્રયત્નપૂર્વક રહે છે, તેને મનુષ્યગતિ, દેવ, શાસ્ત્ર, ગુરુ તથા કેવળી પ્રરુપિત જિનધર્મ વગેરે મળવાની સંભાવનાઓ ઉભી રહે છે અને તેના કલ્યાણના દરવાજા ખુલ્લા રહે છે અને તેથી જ અર્થાત્ તે જ અપેક્ષાએ અમે આત્મલક્ષે શુભમાં રહેવા કહીએ છીએ. પરંતુ તેમાં એક માત્ર લક્ષ આત્મપ્રાપ્તિ જ હોવું જોઈએ, અન્યથા શુભભાવ પણ અશુભભાવની જેમ જ જીવને બાંધે છે અને અનંત સંસારમાં રખડાવે છે, અનંત દુઃખોનું કારણ બને છે.

કોઈ એમ માને કે મુમુક્ષુ જીવને યોગ્યતા એના કાળે થઈ જશે, તેના માટે પ્રયત્નની જરૂર નથી; તો તેઓને અમે પ્રશ્ન કરીએ છીએ કે આપ જીવનમાં પૈસો, પ્રતિષ્ઠા, પરિવાર વગેરે માટે પ્રયત્ન કરો છો? કે પછી આપ કહો છો કે તે એના કાળે આવી જશે, બોલો આવી જશે? તો ઉત્તર અપેક્ષિત જ મળે છે કે અમો તેના માટે પ્રયત્ન કરીએ છીએ. તો અમે પ્રશ્ન કરીએ છીએ કે જે વસ્તુ અથવા સંયોગો કર્મો અનુસાર આપ મેળે આવીને મળવાના છે તેના માટે આપ ખૂબજ પ્રયત્ન કરો છો પરંતુ જે આત્માના ધરનો છે એવો પુરુષાર્થ અર્થાત્ પ્રયત્નપૂર્વક આત્માના ઉદ્ધાર માટે ઉપર જણાવેલ તથા અન્ય આચરણો જીવનમાં કરવામાં ઉપેક્ષા સેવો છો. તો આપ જૈન સિદ્ધાંતની અપેક્ષા ન સમજતાં તેને અન્યથા જ સમજ્યા છો એવું જ કહેવું પડશે કારણ કે જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર કોઈપણ કાર્ય થવા માટે પાંચ સમવાયનું હોવું આવશ્યક છે અને તેમાં આત્મસ્વભાવમાં પુરુષાર્થ એ ઉપાદાન કારણ હોઈને જો આપ તેની અવગણના કરી માત્ર નિમિત્તની રાહ જોતાં બેસી રહેશો અથવા નિયતિ સામે જોઈ બેસી રહેશો તો આત્મપ્રાપ્તિ થવી અત્યંત કઠિન છે. તેથી કરીને મુમુક્ષુ જીવે પોતાનો પુરુષાર્થ અધિકમાં અધિક આત્મધર્મ ક્ષેત્રે પ્રવર્તાવવો આવશ્યક છે અને થોડોક (અલ્પ) જ કાળ જીવનની જરૂરીયાતોને અર્જીત કરવામાં નાંખવો તે પ્રથમ આવશ્યકતા છે.

જેમ **આત્માનુશાસન** ગાથા ૭૮માં જણાવેલ છે કે- “હે જીવ! આત્મકલ્યાણને અર્થે કંઈક યત્ન કર! કર! કેમ શઠ થઈ પ્રમાદી બની રહે છે? જ્યારે એ કાળ પોતાની તીવ્ર ગતિથી આવી પહોંચશે, ત્યારે યત્ન કરવા છતાં પણ તે રોકાશે નહીં એમ તું નિશ્ચય સમજ. ક્યારે, ક્યાંથી અને કેવી રીતે એ કાળ અચાનક આવી ચડશે, તેની પણ કોઈને ખબર નથી. એ દ્રુષ્ટ યમરાજ જીવને કાંઈ પણ સૂચના પહોંચાડ્યા સિવાય એકાએક હુમલો કરે છે તેનો કંઈક તો ખ્યાલ કર. કાળની અપ્રહત અરોક ગતિ આગળ મંત્ર-તંત્ર અને ઔષધાદિ સર્વ સાધન વ્યર્થ છે.” અર્થાત્ આત્મકલ્યાણને અર્થે જ સર્વ પુરુષાર્થ આદરવો.

આગળ **આત્માનુશાસન** ગાથા ૧૯૬માં પણ જણાવેલ છે કે- “અહો! જગતમાં મૂર્ખ જીવોને શું મુશ્કેલ છે? તેઓ જે અનર્થ કરે તેનું આશ્ચર્ય નથી, પણ ન કરે તે જ ખરેખર આશ્ચર્ય છે. શરીરને પ્રતિદિન પોષે છે, સાથે સાથે વિષયોને પણ તેઓ સેવે છે. તે મૂર્ખ જીવોને કાંઈ પણ વિવેક નથી કે વિષપાન કરી અમરત્વ ઈચ્છે છે! સુખ વાંછે છે! અવિવેકી જીવોને કાંઈ પણ વિવેક કે પાપનો ભય નથી. તેમ વિચાર પણ નથી.....”

અમે જ્યારે પાપ-ત્યાગ વિશે જણાવીએ છીએ, ત્યારે કોઈ એમ પૂછે છે કે રાત્રિભોજન ત્યાગ વગેરે વ્રતો અથવા પ્રતિમાઓ તો સમ્યગ્દર્શન બાદ જ હોય છે તો અમોને તે રાત્રિભોજનનો શો દોષ લાગે? તો તેઓને અમારો ઉત્તર હોય છે કે- રાત્રિભોજનનો દોષ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ કરતાં મિથ્યાદ્રષ્ટિ ને અધિક જ લાગે છે કારણ કે મિથ્યાદ્રષ્ટિ તેને રાચી-માચીને સેવતો (કરતો) હોય છે જ્યારે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ તો આવશ્યક ન હોય, અનિવાર્યતા ન હોય તો આવાં દોષોનું સેવન જ નથી કરતો અને જો કોઈ કાળે આવાં દોષોનું સેવન કરે છે તો પણ ભીરુ ભાવે અને રોગના ઔષધ તરીકે કરે છે, નહિ કે આનંદથી અથવા સ્વચ્છંદે કારણ કે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને તો ભોજન કરવું પડે છે તે પણ મજબુરીરૂપે લાગે છે, રોગરૂપે લાગે છે અને તેનાથી ત્વરાએ છૂટકારો જ ઈચ્છે છે.

આથી કોઈપણ પ્રકારનો છળ કોઈએ ધર્મશાસ્ત્રોમાંથી ગ્રહણ ન કરવો કારણ કે ધર્મશાસ્ત્રોમાં દરેક વાતો અપેક્ષાએ હોય છે, તેથી કરીને વ્રતો અને પ્રતિમાઓ પાંચમા ગુણસ્થાનકે કહી છે તેનો અર્થ એવો ન કાઢવો કે અન્ય કોઈ નિમ્ન ભૂમિકાવાળાંઓ તેને અભ્યાસ અર્થે અથવા તો પાપથી બચવા ગ્રહણ ન કરી શકે. બલ્કે સૌએ અવશ્ય ગ્રહણ કરવા યોગ્ય જ છે કારણ કે જેને દુઃખ પ્રિય નથી એવા જીવો દુઃખના કારણરૂપે પાપો કેવી રીતે આચરી શકે? અર્થાત્ ન જ આચરી શકે.

માત્ર સમજવાની વાત એટલી જ છે કે સમ્યગ્દર્શન પહેલાંનાં આણુવ્રતી અથવા તો મહાવ્રતી એ પોતાને અનુક્રમે પાંચમાં અથવા છઠ્ઠા-સાતમાં ગુણસ્થાનકે ન સમજતાં (માનતાં) માત્ર આત્માર્થે (અર્થાત્ આત્માની પ્રાપ્તિ અર્થે) અભ્યાસરૂપે ગ્રહણ કરેલ આણુવ્રતી અથવા મહાવ્રતી સમજવાં (માનવાં) અને લોકોને પણ તેમ જ જણાવવું, કે જેથી લોકોને છેતરવાનો દોષ પણ નહિં લાગે.

તેથી શાસ્ત્રમાંથી કોઈપણ પ્રકારનું છળ અથવા વિપરીત અર્થાત્ છેતરામણી વાત ગ્રહણ ન કરવી પરંતુ તેને યથાર્થ અપેક્ષાએ સમજવું દરેક મુમુક્ષુઓ માટે અત્યંત આવશ્યક છે કારણ કે દરેક શાસ્ત્રમાં સ્પષ્ટ કહેવામાં આવેલ છે કે પડવાનો અર્થાત્ નિચલા દરજ્જે જવાનો તો કોઈ ઉપદેશ આપે જ નહીંને? ઉપદેશ તો માત્ર ઉપર ચઢવા માટે જ છે અર્થાત્ કોઈ પહેલાં ગુણસ્થાનકવાળો વ્રતી હોય તો તેને વ્રત છોડવા નથી જણાવ્યું પરંતુ તેને અનુકૂળ ગુણસ્થાનક પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રોત્સાહિત કરેલ છે; તેને અન્યથા ગ્રહણ કરી વ્રત-પચ્ચક્રાણ છોડી દેવા નહિં, તે તો મહા અનર્થનું કારણ છે. તો એવો તો કોઈ આચાર્ય ભગવંત ઉપદેશ આપે જ નહિંને? અર્થાત્ કોઈ જ ન આપે પરંતુ આ તો માત્ર આજના કાળના માનવીની વક્તા જ છે કે તે તેને વિપરીતરૂપે ગ્રહણ કરે છે, આ જ રીતે અનાદિથી આપણે ધર્મને વિપરીતરૂપે ગ્રહણ કરતાં આવ્યા છીએ અને માટે જ અનાદિથી રખડીએ છીએ.

હવે તો બસ થાઓ! બસ થાઓ! આવી વિપરીત પ્રરૂપણા. જેમ કે **પુરુષાર્થસિદ્ધિ-ઉપાય** ગાથા પ૦માં પણ કહ્યું છે કે- “જે જીવ યથાર્થ નિશ્ચય સ્વરૂપને જાણ્યા વિના (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનને પામ્યા

વિના) તેને જ (અર્થાત્ તેને જ માત્ર શબ્દરૂપે ગ્રહણ કરીને) નિશ્ચય શ્રદ્ધાથી અંગીકાર કરે છે. તે મૂર્ખ બાહ્ય ક્રિયામાં આળસુ છે અને બાહ્યક્રિયારૂપ આચરણનો નાશ કરે છે.”

ઘણાં સાધકોને પ્રશ્ન થાય છે કે અમને તત્ત્વના અભ્યાસ છતાં આત્માનો અનુભવ કેમ થતો નથી? અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન કેમ થતું નથી? તેઓને અમારો ઉત્તર છે કે- જેમ યોગ્ય કારણ આપ્યા વગર કોઈપણ કાર્ય થતું નથી તેમ વૈરાગ્ય આપ્યા વગર અર્થાત્ ભવરોગથી ત્રાસ લાગ્યા વગર, સુખની આકાંક્ષા છોડ્યા વગર, કોઈપણ નયનો પક્ષ અથવા સાંપ્રદાયિક માન્યતાનો આગ્રહ છોડ્યા વગર અને તત્ત્વને વિપરીતરૂપે ગ્રહણ કરીને સ્વાત્માનુભૂતિ અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થવું અતિ વિકટ છે; તેથી સર્વે સાધકોને અમારી વિનંતિ છે કે આપ યોગ્ય કારણ આપો અર્થાત્ વૈરાગ્યરૂપ યોગ્યતા કેળવો અને પક્ષ-આગ્રહ છોડીને તત્ત્વનો યથાર્થ નિર્ણય કરશો તો સમ્યગ્દર્શનરૂપ કાર્ય અવશ્ય થશે જ એવો અમારો અભિપ્રાય છે.

બીજું, ઘણાં સાધકોનો પ્રશ્ન હોય છે કે તમને આત્માનો અનુભવ થયો ત્યારે શું થયેલ? અર્થાત્ આત્માના અનુભવ કાળે શું થાય? તેઓને અમારો ઉત્તર છે કે- સ્વાત્માનુભૂતિકાળે શરીરથી ભિન્ન એવો સિદ્ધસદૃશ આત્માનો અનુભવ થાય જેમાં શરીરનો કોઈપણ જાતનો અનુભવ ન હોય જેમ કે- ઘણાં સાધકો અમને પ્રશ્ન કરતાં હોય છે કે અમને પ્રકાશમય આત્માનો અનુભવ થયો અથવા કોઈ કહે છે કે- અમે એકદમ હળવાં ફૂલ જેવાં થઈ ગયાં હોઈએ તેવો અનુભવ થયો અથવા કોઈ કહે છે કે- અમે રોમાંચિત થઈ ગયા, વગેરે. તો આવા સાધકોને અમે જણાવીએ છીએ કે- આવા ભ્રમોથી છેતરાવા જેવું નથી કારણ કે સ્વાત્માનુભૂતિકાળે શરીરનો કોઈપણ જાતનો અનુભવ હોતો જ નથી માત્ર સિદ્ધસદૃશ આત્માનો જ અનુભવ હોય છે અર્થાત્ અંશે સિદ્ધસદૃશ આનંદનો અનુભવ હોય છે અર્થાત્ અંશે સિદ્ધત્વનો જ અનુભવ હોય છે અને પછી આત્મા બાબત કોઈપણ પ્રશ્ન રહેતો જ નથી એટલો સ્પષ્ટ અનુભવ હોય છે. અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિ બાદ શરીરથી ભેદજ્ઞાન વર્તતું હોય છે, દા. ત.- સ્વાત્માનુભૂતિ બાદ આપ દર્પણની સામે જ્યારે પણ જાઓ ત્યારે આપ કોઈ ત્રાહિત વ્યક્તિને નિહાળતા હો એવો ભાવ આવે છે.

સમ્યગ્દર્શનને પામ્યા બાદ, પ્રવચનસાર ગાથા ૨૦૨ અનુસાર, સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવનો વિકાસક્રમ આવો હોય છે- “સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ પોતાના સ્વરૂપને જાણે છે-અનુભવે છે, અન્ય સમસ્ત વ્યવહારભાવોથી પોતાને ભિન્ન જાણે છે. જ્યારથી તેને સ્વ-પરના વિવેકરૂપ ભેદવિજ્ઞાન પ્રગટ થયું હતું ત્યારથી જ તે સકલ વિભાવભાવોનો ત્યાગ કરી ચૂક્યો છે અને ત્યારથી જ એણે ટંકોત્કીર્ણ નિજભાવ અંગીકાર કર્યો છે. તેથી તેને નથી કાંઈ ત્યાગવાનું રહ્યું કે નથી કાંઈ ગ્રહવાનું-અંગીકાર કરવાનું રહ્યું. સ્વભાવદ્રષ્ટિની અપેક્ષાએ આમ હોવા છતાં, પર્યાયમાં તે પૂર્વબદ્ધ કર્મોના ઉદયના નિમિત્તે અનેક પ્રકારના વિભાવભાવોરૂપે પરિણમે છે. એ વિભાવપરિણતિ નહિ છૂટતી દેખીને તે આકુળવ્યાકુળ પણ થતો નથી તેમ જ સમસ્ત વિભાવપરિણતિને

ટાળવાનો પુરુષાર્થ કર્યા વિના પણ રહેતો નથી. સકલ વિભાવપરિણતિ રહિત સ્વભાવદ્રષ્ટિના ભેરરૂપ પુરુષાર્થથી ગુણસ્થાનોની પરિપાટીના સામાન્ય ક્રમ અનુસાર તેને પહેલા અશુભ પરિણતિની હાનિ થાય છે અને પછી ધીમે ધીમે શુભ પરિણતિ પણ છૂટતી જાય છે. આમ હોવાથી તે શુભ રાગના ઉદયની ભૂમિકામાં ગ્રહ વાસનો અને કુટુંબનો ત્યાગી થઈ વ્યવહારરત્નત્રયરૂપ પંચાચારોને અંગીકાર કરે છે. જોકે જ્ઞાનભાવથી તે સમસ્ત શુભાશુભ ક્રિયાઓનો ત્યાગી છે તોપણ પર્યાયમાં શુભ રાગ નહિ છૂટતો હોવાથી તે પૂર્વોક્ત રીતે પંચાચારને ગ્રહણ કરે છે.”

જે ધર્મમાં (અર્થાત્ જૈન સિદ્ધાંતમાં) “સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે” એમ કહ્યું હોય તેથી સર્વ જીવો ને પોતાના સમાન જ જોતાં, ક્યાંય વેર-વિરોધ ને અવકાશ જ ક્યાંથી હોય? અર્થાત્ વિશ્વમૈત્રીની ભાવના જ હોય. અને તેવાં ધર્મમાં ધર્મના જ નામે વેર-વિરોધ અને ઝઘડા થાય તો, તેમાં સમજવું કે અવશ્ય આપણે ધર્મનું હાર્દ સમજ્યા જ નથી માટે ક્યાંય ધર્મ અર્થે વેર - વિરોધ કે ઝઘડા ન હોય કારણ કે ધર્મ દરેકની સમજણ અનુસાર દરેકને પરિણમવાનો અને તેથી તેમાં મતભેદ અવશ્ય રહેવાના જ પરંતુ તે મત-ભેદ ને મત-ભેદથી અધિક, કોઈ રાગ-દ્વેષના કારણ રૂપ વેર-વિરોધ અને ઝઘડાનું રૂપ આપવું તે, તે જ ધર્મ માટે મૃત્યુઘંટ સમાન છે.

આથી અમો તો સર્વે ને એક જ વાત જણાવીએ છીએ કે ધર્મને નામે આવાં વેર-વિરોધ અને ઝઘડાઓ હોયતો તેને ખતમ કરી દેવાં અને સર્વે જનોએ પોતાના મનમાંથી પણ કાઢી નાંખવા અન્યથા તે વેર-વિરોધ અને ઝઘડાઓ આપને મોક્ષ તો દૂર, અનંત સંસારનું જ કારણ બનશે. તેથી જેને જે વેર-વિરોધ હોય તે ક્ષમાવી દેવો જ હિતાવહ છે અને ભૂલી જવોજ હિતાવહ છે અને તેમાં જ જિનધર્મનું હિત સમાયેલું છે કારણ કે આવો વેર-વિરોધ અને ઝઘડા પણ ધર્મને વિપરીતરૂપે ગ્રહણ કરેલ છે તેનું જ ફળ છે; અન્યથા જેણે ધર્મ સમ્યક્રૂપે ગ્રહણ કરેલ હોય તેના મનમાં વેર-વિરોધ કેમ ઉઠે? અર્થાત્ માત્ર કરુણા જ જન્મે, નહિ કે વેર-વિરોધ અથવા ઝઘડા, આ સમજવાની વાત છે અને તેથી સર્વે જનોએ ધર્મ નિમિત્તના વેર-વિરોધ અથવા ઝઘડા ભૂલીને સત્ય ધર્મનો ફેલાવો કરવા જેવો છે એમ અમારું માનવું છે.



૩૨

નિયમસાર અનુસાર ધ્યાન અને સમ્યગ્દર્શનનો વિષય

આગળ આપણે નિયમસારની ગાથાઓ તથા શ્લોકો બ્લેઈશું કે જેમાં સમ્યગ્દર્શનનો વિષય અને સમ્યગ્દ્રષ્ટિનાં ધ્યાનનો વિષય, ઠરવાનો વિષય જણાવેલ છે.

ગાથા ૩૮ અન્વયાર્થ:- “જીવાદિ બાહ્ય તત્ત્વ હેય છે; કર્મોપાધિજનિત ગુણપર્યાયોથી વ્યતિરિક્ત આત્મા આત્માને ઉપાદેય છે.” અત્રે જે જીવાદિ વિશેષરૂપ (અર્થાત્ પર્યાયરૂપ) તત્ત્વો હેય કહ્યાં છે અર્થાત્ કર્મોના નિમિત્તે થયેલ જીવના વિશેષભાવો (અર્થાત્ વિભાવ પર્યાયો) ને હેયરૂપ જણાવેલ છે તેનો અર્થ એવો છે કે તે ભાવોમાં સમ્યગ્દર્શન માટે ‘હું પણું’ નથી કરવાનું તે અપેક્ષાએ તે હેયરૂપ છે. જ્યારે તે પર્યાયો (અર્થાત્ પૂર્ણ દ્રવ્ય)માં છુપાયેલ સામાન્યભાવ અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા સમ્યગ્દર્શનનો વિષય હોવાથી આત્માને ઉપાદેય છે, તેમાં જ ‘હું પણું’ કરવા યોગ્ય છે કારણ કે તે ત્રિકાળી શુદ્ધભાવ છે અને શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયના ચક્ષુથી આત્મા માત્ર તેટલો જ છે અને તેવો જ (શુદ્ધ જ) છે. તેથી આ શુદ્ધાત્મા સિવાયના તમામ ભાવો જીવમાં જ થતાં હોવાં છતાં, તે અન્યના લક્ષે થતાં હોવાથી, તેમાં સમ્યગ્દર્શનના અર્થે ‘હું પણું’ (એકત્વ) કરવા જેવું નથી તેથી તે અપેક્ષાએ તેઓ જીવના ભાવ જ નથી તેમ પૂર્વે જણાવેલ છે, તે જ ભાવ આગળ ગાથામાં દર્શાવ્યો છે.

શ્લોક ૬૦:- “સતતપણે અખંડ જ્ઞાનની (અર્થાત્ જે જ્ઞાન વિકલ્પવાળું છે તે ખંડ ખંડ છે તેથી તે જ્ઞાનાકારોને ગૌણ કરતાં જ અખંડ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે અને તે જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા કહેવાય છે) સદ્ભાવનાવાળો આત્મા (અર્થાત્ “હું અખંડ જ્ઞાન છું”) એવી સાચી ભાવના જેને નિરંતર વર્તે છે તે આત્મા) સંસારના ઘોર વિકલ્પને પામતો નથી, પરંતુ નિર્વિકલ્પ સમાધિને પ્રાપ્ત કરતો થકો પરપરિણતીથી દૂર, અનુપમ, અનઘ (દોષ રહિત, નિષ્પાપ, મળરહિત) ચિન્માત્રને (ચૈતન્યમાત્ર આત્માને) પામે છે.” અર્થાત્ તે જીવ સમ્યગ્દર્શન પામે છે; તે જીવ આત્મજ્ઞાની થાય છે.

ગાથા ૪૩ અન્વયાર્થ:- “આત્મા (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા) નિર્દંડ, નિર્દ્વંદ, નિર્ભમ, નિ:શરીર, નિરાલંબ, નિરાગ, નિર્દોષ, નિર્મૂઢ અને નિર્ભય છે.”

શ્લોક ૬૪:- “જે આત્મા ભવ્યતા વડે પ્રેરિત હોય, તે આત્મા ભવથી વિમુક્ત થવા (અર્થાત્

સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થવા અને મોક્ષમાર્ગમાં આગળ વધવા) અર્થે નિરંતર આ આત્માને (અર્થાત્ ઉપર જણાવેલ શુદ્ધાત્માને) ભજ્ને કે જે (આત્મા) અનુપમ જ્ઞાનને આધિન છે, જે સહજ ગુણમણિની ખાણ છે, જે (સર્વ) તત્ત્વોમાં સાર છે અને જે નિજ પરિણતીના સુખસાગરમાં મગ્ન થાય છે.”

શ્લોક ૬૬:- “જે અનાકુળ છે, અચ્યુત છે, જન્મ-મૃત્યુ-રોગાદિ રહિત છે, સહજ નિર્મળ સુખામૃતમય છે, તે સમયસારને (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા કે જેને કારણ સમયસાર અથવા કારણશુદ્ધ પર્યાય પણ કહેવાય છે તેને) હું સમરસ (અર્થાત્ તેમાં જ એક રસ થઈ ને, તેમાં જ એકત્વ કરીને) વડે સદા પૂજું છું.” અર્થાત્ હું સદા સમયસારરૂપ-પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માની જ ભાવના ભાવું છું.

ગાથા ૪૪ અન્વયાર્થ:- “આત્મા (શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિકનયનો વિષય એવો શુદ્ધાત્મા) નિર્ગ્રંથ, નીરાગ, નિઃશલ્ય, સર્વદોષવિમુક્ત, નિષ્કામ, નિઃક્રોધ, નિર્માન અને નિર્મદ છે.” આગળ આચાર્ય ભગવંત કહે છે કે સ્ત્રી -પુરુષ આદિક પર્યાયો, રસ-ગંધ-વર્ણ-સ્પર્શ અને સંસ્થાન તેમ જ સંહનન વગેરે રૂપ પુદ્ગલની પર્યાયો તો આત્માની નથી જ પરંતુ તેવા જે ભાવ આત્મામાં થાય છે તેમાં પણ મારું ‘હું પણું’ નથી તેનાથી વ્યતિરિક્ત જે પરમપારિણામિકભાવ રૂપ શુદ્ધાત્મા છે, તેમાં જ માત્ર મારું ‘હું પણું’ છે; તેથી કરીને તેવો જીવ કોઈપણ લિંગથી (અર્થાત્ વિશેષરૂપ પરિણમનથી-પર્યાયથી) ગ્રહણ થાય તેવો નથી, તેવો જીવ માત્ર અવ્યક્તરૂપ છે અને તે પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર ભાવમનનો વિષય થાય છે અને તે જ શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિકનયના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્માની અપેક્ષાએ “સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે” એમ કહેવાય છે અને તેવો શુદ્ધાત્મા જ ઉપાદેય છે અર્થાત્ એકત્વ કરવા યોગ્ય છે.

શ્લોક ૭૩:- “શુદ્ધનિશ્ચયનયથી મુક્તિમાં તેમ જ સંસારમાં તક્ષાવત નથી’ આમ જ ખરેખર, તત્ત્વ વિચારતાં શુદ્ધ તત્ત્વના રસિક પુરુષો કહે છે.”

અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનયથી જીવ ત્રણે કાળ સંપૂર્ણ શુદ્ધ જ છે નહિ કે જીવનો કોઈ ભાગ શુદ્ધ અને બીજો ભાગ અશુદ્ધ. નય પદ્ધતિમાં પૂર્ણદ્રવ્ય (પ્રમાણનું દ્રવ્ય જ) મલિન પર્યાયરૂપ અથવા પૂર્ણશુદ્ધરૂપ વગેરે, અપેક્ષાએ કહેવાય છે અને તેમ જ સમન્વય છે, અન્યથા એકાંતે નહિ; જો તેને એકાંતે મલિન અથવા શુદ્ધરૂપ માનવામાં આવેતો તે જૈનદર્શન બાહ્ય જ સમજવાં. આગળ આચાર્ય ભગવંત સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરવાં માટે કઈ રીતે અને શેનાથી ભેદજ્ઞાન કરવું તે જણાવે છે, જેમ કે- નારકાદિ પર્યાયો, માર્ગણા સ્થાનો, ગુણસ્થાનો, જીવસ્થાનો, બાળ-વૃદ્ધ વગેરે શરીરની અવસ્થાઓ, રાગ-દ્વેષરૂપ કષાયો હું નથી, હું તેનો કર્તા, કારયિતા નથી અથવા અનુમોદક પણ નથી અર્થાત્ તેમાં મારો કોઈ કર્તાભાવ નથી અને તેને સારાં માનતો પણ નથી.

ગાથા ૮૨ અન્વયાર્થ:- “આવો ભેદ-અભ્યાસ થતાં જીવ મધ્યસ્થ થાય છે (અર્થાત્ જ્ઞાનીને

લબ્ધમાં શુદ્ધાત્મા અને ઉપયોગમાં વર્તમાન દશા હોવાથી, જ્ઞાની તે વર્તમાન અશુદ્ધદશામાંથી મુક્ત થવાનાં ઉપાય તરીકે ચારિત્ર ગ્રહણ વગેરે કરે છે કે જેનાથી તે સાક્ષાત્ શુદ્ધાત્મારૂપ મુક્તિ મેળવી શકે નહિ કે પુણ્યના લક્ષરૂપ ચારિત્ર અર્થાત્ આ પુરુષાર્થ શુદ્ધાત્માના આશ્રયે, કર્મોથી મુક્તિ મેળવવા માટે જ હોય છે, અન્યથા નહિ), તેથી ચારિત્ર થાય છે. તેને (ચારિત્રને) દ્રઢ કરવા નિમિત્તે હું પ્રતિક્રમણાદિ કહીશ.”

ગાથા ૮૩ અન્વયાર્થ:- “વચનરચનાને છોડીને (અર્થાત્ જે પ્રતિક્રમણસૂત્ર રૂપ વચન રચના છે તે વિકલ્પરૂપ હોવાથી તેને છોડીને નિર્વિકલ્પ શુદ્ધાત્માને ભાવવો, અનુભવવો અને તેમાં જ સ્થિર થવું તે જ પ્રતિક્રમણાદિનું લક્ષ છે અને જો તે લક્ષ જ સિદ્ધ થઈ જતું હોય, તો તે વચનરચનારૂપ પ્રતિક્રમણની આવશ્યકતા પૂરી થઈ જાય છે), રાગાદિભાવોનું નિવારણ કરીને (અર્થાત્ જીવના રાગાદિ જે ભાવો છે તેને ધ્યાનમાં ન લેતા અર્થાત્ તેને ગૌણ કરીને અર્થાત્ તે રાગાદિભાવોમાં ‘હું પણું’ નહિ કરીને), જે આત્માને (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માને) ધ્યાવે છે, તેને (પરમાર્થ) પ્રતિક્રમણ હોય છે.”

ગાથા ૯૨ અન્વયાર્થ:- “ઉત્તમાર્થ (ઉત્તમ પદાર્થ) આત્મા છે (તે શુદ્ધાત્મામાં) તેમાં સ્થિત મુનિવરો કર્મને હણે છે તેથી ધ્યાન જ (શુદ્ધાત્માનું ધ્યાન જ) ખરેખર ઉત્તમાર્થ નું પ્રતિક્રમણ છે.”

શ્લોક ૧૨૨:- “સમસ્ત વિભાવને તથા વ્યવહારમાર્ગના રત્નત્રયને છોડીને (અર્થાત્ સમસ્ત વિભાવને ગૌણ કરી અને વ્યવહાર રત્નત્રયનાં સર્વ વિકલ્પો શાંત કરીને) નિજતત્ત્વ વેદી (નિજ આત્મ તત્ત્વને જાણનાર - અનુભવનાર) મતિમાન પુરુષ શુદ્ધ આત્મતત્ત્વમાં નિયત (જોડાયેલું) એવું જે એક નિજજ્ઞાન, બીજું શ્રદ્ધાન અને વળી બીજું ચારિત્ર તેનો આશ્રય કરે છે.”

શ્લોક ૧૨૩:- “આત્મધ્યાન સિવાયનું બીજું બધું ઘોર સંસારનું મૂળ છે (અર્થાત્ ધ્યાન માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ શ્રેષ્ઠ છે) અને ધ્યાન ધ્યેયાદિક સુતપ (અર્થાત્ ધ્યાન, ધ્યેય વગેરેના વિકલ્પવાળું શુભ તપ પણ) કલ્પનામાત્ર રમ્ય છે (અર્થાત્ ખરેખર સારું નથી, કલ્પનામાત્ર સારું છે); એવું જાણીને ધીમાન (બુદ્ધિમાન પુરુષ) સહજ પરમાનંદરૂપી પીયૂષના પૂરમાં ડૂબતાં (લીન થતાં) એવા સહજ પરમાત્માનો (પરમપારિણામિકભાવરૂપ કારણ પરમાત્માનો) એકનો આશ્રય કરે છે.”

ગાથા ૯૩ અન્વયાર્થ:- “(શુદ્ધઆત્માના) ધ્યાનમાં લીન સાધુ સર્વ દોષોનો પરિત્યાગ કરે છે; તેથી ધ્યાન જ (અર્થાત્ તે શુદ્ધાત્માનું ધ્યાન જ) ખરેખર સર્વ અતિચારનું પ્રતિક્રમણ છે.”

ગાથા ૯૫ અન્વયાર્થ:- “સમસ્ત જલ્પને (વચન વિસ્તારને અર્થાત્ વિકલ્પોને) છોડીને (અર્થાત્ ગૌણ કરીને) અને અનાગત શુભ-અશુભ નું નિવારણ કરીને (અર્થાત્ શુભાશુભ ભાવોને ગૌણ કરીને અર્થાત્ શુભ-અશુભ ભાવોના વિકલ્પોને છોડીને અર્થાત્ સર્વ વિભાવભાવોને ગૌણ કરીને અર્થાત્ સમયસાર ગાથા-૬ અનુસારનો ભાવ અર્થાત્ જે પ્રમત્ત પણ નથી અને અપ્રમત્ત પણ નથી એવો એક જ્ઞાયકભાવરૂપ) જે આત્માને (અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાર્થિકનય ના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્માને) ધ્યાવે છે તેને (નિશ્ચય)

પ્રત્યાખ્યાન છે.” અર્થાત્ સર્વ પુરુષાર્થ માત્ર આત્મસ્થિરતારૂપ ચારિત્ર માટે જ કે જે સાક્ષાત કેવળજ્ઞાનનું કારણ છે.

ગાથા ૯૬ અન્વયાર્થ:- “કેવળજ્ઞાન સ્વભાવી, કેવળદર્શનસ્વભાવી, સુખમય અને કેવળશક્તિ સ્વભાવી તે હું છું; એમ જ્ઞાની ચિંતવે છે.” અર્થાત્ જ્ઞાની પોતાને કારણ સમયસારરૂપ શુદ્ધાત્મા જ અનુભવે છે.

શ્લોક ૧૨૮:- “સમસ્ત મુનિજનોના હૃદયકમળનો (મનનો) હંસ એવો જે આ શાશ્વત (ત્રિકાળી શુદ્ધ) કેવળજ્ઞાનની મુર્તિરૂપ (જ્ઞાનમાત્ર), સકળવિમળ દ્રષ્ટિમય (શુદ્ધ દ્રવ્યર્થિકનયનો વિષય-શુદ્ધદ્રવ્યદ્રષ્ટિનો વિષય એવો શુદ્ધાત્મા), શાશ્વત આનંદરૂપ, સહજ પરમ ચૈતન્ય શક્તિમય (પરમપારિણામિક જ્ઞાનમય) પરમાત્મા જયવંત છે.” અર્થાત્ તેને જ ભાવવા જેવો છે, તેમાં જ ‘હું પણું’ કરવાં યોગ્ય છે.

ગાથા ૯૭ અન્વયાર્થ:- “જે નિજ ભાવને છોડતો નથી (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ સહજ પરિણમન, ત્રણે કાળે એવું ને એવું જ થવાથી અર્થાત્ ઉપજવાથી અને તે જ તેનો નિજ ભાવ હોવાથી, જણાવેલ છે કે તે નિજભાવને છોડતો નથી અને બીજું જ્ઞાનીને લબ્ધરૂપે તે જ ભાવ રહેતો હોવાની અપેક્ષાએ પણ કહ્યું છે કે નિજભાવ ને છોડતો નથી) કાંઈ પણ પર ભાવને ગ્રહતો નથી (અર્થાત્ કોઈપણ પરભાવ માં ‘હું પણું’ ન કરતો હોવાથી તેને ગ્રહતો નથી એમ કહ્યું છે), સર્વને જાણે-દેખે છે (અર્થાત્ તેને જ્ઞાનમાત્ર ભાવમાં જ ‘હું પણું’ હોવાથી સર્વને જાણે-જોવે છે પરંતુ પરમાં ‘હું પણું’ કરતો નથી), તે “હું છું” (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા તે “હું છું.”) એમ જ્ઞાની ચિંતવે છે.” અર્થાત્ અનુભવે છે અને ધ્યાવે છે અર્થાત્ તે જ ધ્યાનનો અને સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે.

શ્લોક ૧૨૯:- “આત્મા આત્મામાં નિજ આત્મિક ગુણોથી સમૃદ્ધ આત્માને (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માને) -એક પંચમભાવને (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્માને) જાણે છે અને દેખે છે (અનુભવે છે); તે સહજ એક પંચમભાવને (અર્થાત્ આત્માના સહજ પરિણમનરૂપ પંચમભાવ - પરમપારિણામિકભાવને) એણે છોડ્યો નથી જ અને અન્ય એવા પરમભાવને (અર્થાત્ ઔદૈયિક, ઉપશમ અને ક્ષયોપશમ ભાવને) કે જે ખરેખર પૌદ્ગલિક વિકાર છે તેને -એ ગ્રહતો નથી (‘હું પણું’ કરતો નથી) જ.”

શ્લોક ૧૩૩:- “જે મુક્તિસામ્રાજ્યનું મૂળ છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે કારણ કે સમ્યગ્દર્શન એ મુક્તિસામ્રાજ્યનું મૂળ છે) એવા આ નિરૂપમ, સહજ પરમાનંદવાળા ચિદ્રૂપને (ચૈતન્યના સ્વરૂપને = સામાન્ય જ્ઞાનમાત્રને) એકને ડાહ્યા પુરુષોએ સમ્યક પ્રકારે ગ્રહવું યોગ્ય છે (અર્થાત્ એક સામાન્ય જ્ઞાનમાત્ર ભાવ કે જે સહજ પરિણમનયુક્ત પરમપારિણામિકભાવ છે તેમાં જ ડાહ્યા પુરુષોએ ‘હું પણું’ કરવાં યોગ્ય છે); તેથી હે મિત્ર! તું પણ મારા ઉપદેશના સારને (અર્થાત્ આ જ સર્વ જિનાગમોનો સાર છે અર્થાત્ સમયનો સાર છે અર્થાત્ સમયસારને) સાંભળીને, તુરંત જ ઉગ્રપણે આ ચૈતન્ય ચમત્કારમાત્ર પ્રત્યે તારું વલણ કર”

અર્થાત્ તું પણ તેને જ લક્ષમાં લે અને તેમાંજ ‘હું પણું’ કર કે જેથી તું પણ આત્મજ્ઞાની તરીકે પરિણમી જઈશ અર્થાત્ તને પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થશે; અર્થાત્ અત્રે સમ્યગ્દર્શનની રીત જણાવેલ છે.

શ્લોક ૧૩૫:- “મારા સહજ સમ્યગ્દર્શનમાં, શુદ્ધ જ્ઞાનમાં, ચારિત્રમાં, સુકૃત અને દુષ્કૃતરૂપી કર્મદ્વંદ્વના સંન્યાસકાળમાં (અર્થાત્ સમયસાર ગાથા-૬ અનુસારનો ભાવ અર્થાત્ જે પ્રમત્ત પણ નથી અને અપ્રમત્ત પણ નથી એવો એક જ્ઞાયકભાવરૂપ) સંવરમાં અને શુદ્ધ યોગમાં (શુદ્ધોપયોગમાં) તે પરમાત્માં જ છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનાદિ બધાયનો આશ્રય - અવલંબન શુદ્ધાત્મા જ છે કે જે સિદ્ધસમ જ ભાવ છે); મુક્તિની પ્રાપ્તિમાટે જગતમાં બીજા કોઈપણ પદાર્થ નથી, નથી.” અર્થાત્ દ્રષ્ટિના વિષયની જ દ્રઢતા કરાવેલ છે.

શ્લોક ૧૩૬:- “જે ક્યારેક નિર્મળ દેખાય છે, ક્યારેક નિર્મળ તેમ જ અનિર્મળ દેખાય છે, વળી ક્યારેક અનિર્મળ દેખાય છે અર્થાત્ શુદ્ધ નય (દ્રવ્યદ્રષ્ટિ) થી નિર્મળ જણાય છે, પ્રમાણદ્રષ્ટિથી નિર્મળ તેમ જ અનિર્મળ દેખાય છે અને અશુદ્ધનય (પર્યાયદ્રષ્ટિ) થી અનિર્મળ દેખાય છે અને તેથી અજ્ઞાની ને માટે જે ગહન છે (એટલે જ ઘણાં લોકો આત્માને એકાંતે શુદ્ધ અથવા અશુદ્ધ ધારી લે છે અને બીજાં લોકો આત્માનો એક ભાગ શુદ્ધ અને એક ભાગ અશુદ્ધ એવી ધારણા કરી લે છે), તે જ - કે જેણે નિજજ્ઞાનરૂપી દીપક વડે પાપ તિમિરને નષ્ટ કર્યું છે તે જ (અર્થાત્ જેણે પ્રજ્ઞાછીણી અર્થાત્ તીવ્રબુદ્ધિ વડે સર્વ વિભાવભાવને ગૌણ કરીને જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા ગ્રહણ કર્યો છે અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણું’ કર્યું છે અને તેમ કરતાં જ સમ્યગ્દર્શનરૂપ દીપ પ્રગટાવીને પાપ તિમિરને નષ્ટ કર્યું છે, તે જ શુદ્ધાત્મા) સત્પુરુષોના (જ્ઞાનીના) હૃદયકમળરૂપી ઘરમાં (મનમાં) નિશ્ચયપણે સંસ્થિત છે (સારી રીતે સ્થિરતા પામેલું છે).”

ગાથા ૧૦૨ અન્વયાર્થ:- “જ્ઞાનદર્શનલક્ષણવાળો શાશ્વત એક આત્મા મારો છે; બાકીના બધા સંયોગલક્ષણવાળા ભાવો મારાથી બાહ્ય છે.”

આ ભેદજ્ઞાનની ગાથા છે તેમાં સમ્યગ્દર્શન માટેનું ભેદજ્ઞાન કઈ રીતે કરવું તે જણાવેલ છે કે જે “જેવા - જ્ઞણવાવાળો આત્મા છે તે હું” અને અન્ય સર્વે ભાવો (જ્ઞેયો) તેમાં ગૌણ કરવાના હોવાથી જ તે ભાવો બાહ્ય કહ્યાં કારણ કે તેનાથી જ ભેદજ્ઞાન કરવાનું છે.

શ્લોક ૧૪૮:- “તત્ત્વમાં નિષ્ણાત બુદ્ધિવાળા જીવના હૃદયકમળરૂપ અભ્યંતરમાં (ભાવમનમાં) જે સુસ્થિત (સારી રીતે સ્થિરતા પામેલું) છે, તે સહજ તત્ત્વ (પરમપારિણામિકભવરૂપ સહજ પરિણામિ શુદ્ધાત્મા) જયવંત છે (તે જ સર્વસ્વ છે). તે સહજ તેજ મોહાંધકારનો નાશ કર્યો છે (અર્થાત્ દર્શનમોહનો ઉપશમ, ક્ષયોપશમ અથવા તો ક્ષય કરેલ છે) અને તે (સહજ તેજ) (સમ્યગ્દર્શનનો વિષય) નિજ રસના ફેલાવથી પ્રકાશતા જ્ઞાનના પ્રકાશમાત્ર છે.”

શ્લોક ૧૪૯:- “વળી, જે (સહજ તત્ત્વ = શુદ્ધાત્મા) અખંડિત છે (અર્થાત્ આત્મામાં કોઈ ભાગ શુદ્ધ અને કોઈ ભાગ અશુદ્ધ એમ નથી, પૂર્ણ આત્મા-અખંડ આત્મા જ દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ શુદ્ધાત્મારૂપ જણાય છે), શાશ્વત છે (અર્થાત્ ત્રણે કાળ એવોને એવો ઉપજે છે = પરિણમે છે), સકળ દોષથી દૂર છે (અર્થાત્ સકળ દોષથી ભેદજ્ઞાન કરેલ હોવાથી તે શુદ્ધાત્મા સકળ - દોષથી દૂર છે), ઉત્કૃષ્ટ છે (અર્થાત્ સિદ્ધસદૃશભાવ છે), ભવસાગરમાં ડૂબેલા જીવસમૂહને (અર્થાત્ સર્વ સંસારીજીવોને) નૌકા સમાન છે (અર્થાત્ મુક્તિનું કારણ છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે) અને પ્રબળ સંકટોના સમૂહરૂપી દાવાનળને (અર્થાત્ કોઈપણ પ્રકારના ઉપસર્ગરૂપ સંકટોમાં પોતે શાંત રહેવા) માટે જળ સમાન છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માનું અવલંબન લેતાં જ સંકટો ગૌણ થઈ જાય છે, પર થઈ જાય છે), તે સહજ તત્ત્વ ને હું પ્રમોદથી સતત નમું છું.” અર્થાત્ પ્રમોદથી સતત ભાવું છું, તેનું જ ધ્યાન કરું છું.

ગાથા - ૧૦૭ અન્વયાર્થ:- “નોકર્મ અને કર્મથી રહિત (અર્થાત્ પ્રથમ, પુદ્ગલથી ભેદજ્ઞાન કર્યું કે જે આત્માથી પ્રગટ ભિન્ન છે) તથા વિભાવગુણપર્યાયોથી વ્યતિરિક્ત (અર્થાત્ બીજું, આત્મા જે કર્મો ના નિમિત્તે વિભાવભાવ રૂપ અર્થાત્ ઔદેયિક ભાવ રૂપ પરિણમે છે તેનાથી ભેદજ્ઞાન કર્યું અર્થાત્ તે ભાવો થાય છે તો આત્મામાં જ-મારામાં જ પરંતુ તે ભાવ મારું સ્વરૂપ ન હોવાથી તેમાં ‘હું પણું’ નહિ કરતાં અર્થાત્ તેને ગૌણ કરતાં જ તેનાથી રહિત શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત થાય છે, તેવા) આત્માને (અર્થાત્ શુદ્ધ આત્માને) જે ધ્યાવે છે, તે શ્રમણને (પરમ) આલોચના છે.”

શ્લોક - ૧૫૨:- “ઘોર સંસારના મૂળ એવાં સુકૃત અને દુષ્કૃત ને સદા આલોચી આલોચીને (અર્થાત્ અર્થાત્ સમયસાર ગાથા-૬ અનુસારનો ભાવ અર્થાત્ જે પ્રમત્ત પણ નથી અને અપ્રમત્ત પણ નથી એવો એક જ્ઞાયકભાવરૂપ અને બીજું, અત્રે પુણ્ય અને પાપ, બંનેને ઘોર સંસારના મૂળ કહ્યાં, તેના વિશે અમે પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર સમજવું અર્થાત્ બન્ને આત્માને બંધનરૂપ હોઈને સંસારથી મુક્તિ માટે ઈચ્છનીય નથી છતાં કોઈએ એવું ન સમજવું કે પાપ ને પુણ્ય, એ બંને હેય હોવાથી આપણને પાપ કરવાનો પરવાનો મળેલ છે. તેવું સમજશે તે નિયમથી અનંતસંસારી જ છે પરંતુ પાપનો વિચાર પણ નહિ કરતાં, માત્ર આત્મલક્ષે સુકૃત કરવા જેવું છે અને તે શુભભાવ પણ શુદ્ધભાવથી વિરુદ્ધભાવ હોવાથી, શુદ્ધભાવમાં ‘હું પણું’ કરતાં અથવા માત્ર શુદ્ધભાવનાં લક્ષે ભલે આપ નિયમથી શુભમાં જ રહો પણ તેના ઉપર આદરભાવે નહિ. આદરભાવ માત્ર શુદ્ધભાવ ઉપર જ અને રહેવું પણ છે શુદ્ધભાવમાં જ પરંતુ જો આપ શુદ્ધભાવથી સ્ખલિત થાવ અથવા શુદ્ધભાવની પ્રાપ્તિ ન થઈ હોયતો શુદ્ધભાવનાં લક્ષે રહેવું નિયમથી શુભમાં જ. અશુભભાવનો તો પડછાયો પણ લેવા યોગ્ય નથી, તેથી અત્રે કોઈએ છળ ગ્રહણ કરી શુભભાવ છોડીને અશુભનું આચરણ ન કરવું. ત્રીજું, અત્રે દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા ઈષ્ટ છે કે જેમાં સુકૃત અને દુષ્કૃતરૂપ વિભાવભાવને સદા આલોચી આલોચીને અર્થાત્ અત્યંત ગૌણ કરીને) હું નિરૂપાધિક (સ્વાભાવિક) ગુણવાળા શુદ્ધાત્માને આત્માથી જ અવલંબું છું. (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં જ રહેવાનો પ્રયત્ન કરું છું) પછી

(અર્થાત્ તેનાથી જ) દ્રવ્યકર્મસ્વરૂપ સમસ્ત પ્રકૃતિને અત્યંત નાશ પમાડીને (અર્થાત્ ઘાતીકર્મનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શનરૂપ) સહજ વિલસતી જ્ઞાન લક્ષ્મીને હું પામીશ.” અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને પણ ધ્યાનના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા જ છે.

શ્લોક - ૧૫૫:- “જેણે જ્ઞાનજ્યોતિ વડે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્રભાવના અવલંબને) પાપતિમિરના પુંજનો નાશ કર્યો છે (અર્થાત્ તેનું ‘હું પણું’ જ્ઞાનમાત્રભાવ = પરમપારિણામિકભાવમાં જ હોવાથી સર્વ પાપોના ઉદયરૂપ ઔદેયિક ભાવને અત્યંત ગૌણ કર્યા છે) અને જે પુરાણ (સનાતન અર્થાત્ ત્રિકાળી શુદ્ધ) છે એવો આત્મા પરમ સંયમીઓના ચિત્તકમળમાં (ભાવમનમાં) સ્પષ્ટ છે. તે આત્મા સંસારી જીવોના વચન-મનોમાર્ગથી અતિકાંત છે (વચન અને મનથી સ્પષ્ટ કરી શકવા અથવા વ્યક્ત કરી શકવા યોગ્ય નથી). આ નિકટ પરમપુરુષમાં (અર્થાત્ આ નિકટમાં જ મોક્ષ પામવા યોગ્ય પુરુષમાં) વિધિ શો અને નિષેધ શો?”

અર્થાત્ આવા શુદ્ધાત્મામાં મગ્ન રહેવાવાળા પરમ પુરુષ, કોઈ વિધિ અનુસરે અથવા ન અનુસરે તો તેમને તેમાં કોઈ જ દોષ નથી તેથી તેમનાં માટે કોઈ વિધિ- નિષેધ નથી એમ જણાવેલ છે.

શ્લોક ૧૫૬:- “જે સકળ ઇન્દ્રિયોના સમૂહથી ઉત્પન્ન થતાં કોલાહલથી વિમુક્ત છે (અર્થાત્ જે જ્ઞાન સકળ ઇન્દ્રિયોથી થાય છે તેવાં જ્ઞાનાકાર રૂપ વિશેષ, જેમાં ગૌણ છે તેવું સામાન્યજ્ઞાન છે), જે નય અને અનયના સમૂહથી દૂર (અર્થાત્ નયાતિત છે કારણ કે નયો વિકલ્પાત્મક હોય છે અને સમ્યગ્દર્શનનું વિષયરૂપ સ્વરૂપ, સર્વે વિકલ્પોથી રહિત છે અર્થાત્ તે નયાતીત) હોવા છતાં યોગીઓને (અર્થાત્ આત્મજ્ઞાનીઓને) ગોચર છે (અર્થાત્ નિત્ય લબ્ધરૂપ અને ક્યારેક ઉપયોગરૂપ છે), જે સદા શિવમય છે (અર્થાત્ સિદ્ધસદૃશભાવ છે), ઉત્કૃષ્ટ છે અને જે અજ્ઞાનીઓને પરમ દૂર છે (કારણ કે તેઓ શુદ્ધાત્માને એકાંતે ગ્રહણ કરવાનો પ્રયાસ કરે છે અર્થાત્ જેવો તે છે નહીં, તેવી તેની કલ્પના કરી ગ્રહણ કરવાનો પ્રયાસ કરે છે તેથી તેઓ માત્ર ભ્રમમાં જ રહે છે અને સત્યસ્વરૂપ થી જોજનો દૂર રહે છે) એવું આ અનઘ (શુદ્ધ) ચૈતન્યમય સહજતત્ત્વ અત્યંત જયવંત (ફરી ફરી અવલંબન કરવા યોગ્ય) છે.”

શ્લોક ૧૫૭:- “નિજ સુખરૂપી સુધાના સાગરમાં (અત્રે એક ખુલાસો જરૂરી છે કે- કોઈ વર્ગ એવું માને છે કે યોગ પદ્ધતિએ સુધારસનું પાન કરવાથી આત્માનો અનુભવ થાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન થાય છે. તેઓને એક વાત અત્રે સમજવાં જેવી છે કે જે અતિન્દ્રિય આનંદ છે કે જે સ્વાત્માનુભૂતિથી આવે છે તેને જ શાસ્ત્રોમાં સુધાનો સાગર અર્થાત્ સુધારસ કહ્યો છે, પરંતુ કોઈ શારીરિક ક્રિયા અથવા તો પુદ્ગલરૂપી રસ વિશેની અહીં વાત નથી, કારણ કે અનુભવકાળે કોઈ દેહભાવ જ હોતો નથી, પોતે માત્ર શુદ્ધાત્મારૂપ જ હોય છે તો પુદ્ગલરૂપી રસની વાત જ ક્યાંથી હોય? અર્થાત્ ન જ હોય) દૂબતા આ શુદ્ધાત્માને જાણીને ભવ્ય જીવ પરમ ગુરુ દ્વારા (આ જ્ઞાનનો પ્રાયઃ અભાવ હોવાથી તેની દુર્લભતા બતાવવા પરમગુરુ શબ્દ

વાપર્યો છે) શાશ્વત સુખને પામે છે; તેથી, ભેદના અભાવની દ્રષ્ટિએ (અર્થાત્ સ્વાનુભૂતિમાં કોઈ જ ભેદ નથી અર્થાત્ ત્યાં દ્રવ્ય-પર્યાયરૂપી ભેદ અથવા તો પર્યાય ના નિષેધરૂપ વગેરે કોઈ જ ભેદ નથી, તેમાં તો માત્ર દ્રવ્યદ્રષ્ટિ જ મહત્વની છે કે જેમાં પર્યાય જણાતી જ નથી અર્થાત્ પૂર્ણ દ્રવ્ય માત્ર શુદ્ધાત્મારૂપ જ જણાય છે; એવી દ્રષ્ટિએ) જે સિદ્ધિથી ઉત્પન્ન થતાં સૌખ્ય (અર્થાત્ અતિન્દ્રિય આનંદ, નહિ કે પુદ્ગલરૂપી સુધારસ) વડે શુદ્ધ છે એવા કોઈ (અદ્ભૂત) સહજ તત્ત્વને (પરમ-પારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માને) હું પણ સદા અતિ અપૂર્વ રીતે અત્યંત ભાવું છું.”

શ્લોક ૧૫૮:- “સર્વ સંગથી નિર્મુક્ત, નિર્મોહરૂપ, અનઘ અને પરભાવથી મુક્ત એવા આ પરમાત્મતત્ત્વને (આવી રીતે ભેદજ્ઞાનપૂર્વક ગ્રહણ કરેલ શુદ્ધાત્માને) હું નિર્વાણરૂપી સ્ત્રીથી ઉત્પન્ન થતા અનંગ સુખને (અતિન્દ્રિયસુખને) માટે નિત્ય સંભાવું છું (સમ્યકપણે ભાવું છું-અનુભવું છું) અને પ્રણમું છું.”

શ્લોક ૧૫૯:- “નિજ ભાવથી ભિન્ન એવા સકળ વિભાવને છોડીને (અર્થાત્ અત્રે ભેદજ્ઞાનની રીત બતાવેલ છે) એક નિર્મળ ચિન્માત્રને (જ્ઞાનસામાન્યરૂપ પરમપારિણામિકભાવને) હું ભાવું છું. સંસારસાગરને તરી જવા માટે, અભેદ કહેલા (ઉપર જે રીતે અભેદ સમન્વયું છે તે રીતે અભેદ કહેલા) મુક્તિના માર્ગને પણ હું નિત્ય નમું છું.”

શ્લોક ૧૬૦:- “જે કર્મના દૂરપણાને લીધે (અર્થાત્ કર્મો અને તેના નિમિત્તે થવાવાળા ભાવો થી ભેદજ્ઞાન કરવાથી તે ગૌણ થઈ ગયેલ છે અને પોતાને શુદ્ધાત્મા પ્રાપ્ત થયેલ છે તેને લીધે) પ્રગટ સહજવસ્થાપૂર્વક (અર્થાત્ સહજપરિણામનરૂપ પરમપારિણામિક ભાવ કે જે પંચમભાવ પણ કહેવાય છે તેમાં જ ‘હું પણું’ કરી) રહેલો છે, જે આત્મનિષ્ઠાપરાયણ (આત્મસ્થિત) સમસ્ત મુનિઓને મુક્તિનું મૂળ છે (અર્થાત્ આવા શુદ્ધાત્મામાં જ “હું પણું” કરવા જેવું છે અને તેનું જ ધ્યાન કરવા જેવું છે અર્થાત્ તેને જ સેવવાથી મુક્તિ મળે છે અર્થાત્ શ્રેણી મંડાય છે અને કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન પ્રાપ્ત કરે છે અને આયુ ક્ષયે મોક્ષ પામે છે તેથી શુદ્ધાત્માને મુક્તિનું મૂળ કહ્યું છે) જે એકાકાર છે (અર્થાત્ સદા એવોને એવો જ ઉપજતો હોવાથી ત્રિકાળી શુદ્ધ અર્થાત્ ત્રણે કાળ એક જેવો જ છે તેથી તેને ત્રિકાળી ધ્રુવ પણ કહેવાય છે), જે નિજ રસના ફેલાવાથી ભરપૂર હોવાને લીધે (અત્રે નિજરસ કહ્યો કે જે આત્માનો અરૂપી અતિન્દ્રિય આનંદ છે, નહિ કે કોઈ રૂપી પુદ્ગલ દ્રવ્યરૂપ સુધારસ) પવિત્ર છે અને જે પુરાણ છે (અર્થાત્ સનાતન છે-ત્રણે કાળે એવો ને એવો જ ઉપજતો થકો તે સહજ પરિણામનરૂપ પરમ-પારિણામિકભાવ કહેવાય છે), તે શુદ્ધ-શુદ્ધ (અર્થાત્ પરમશુદ્ધ) એક પંચમ ભાવ સદા જયવંત છે.”

શ્લોક ૧૬૧:- “અનાદિ સંસારથી સમસ્ત જનતાને (-જનસમૂહને) તીવ્ર મોહના ઉદયને લીધે જ્ઞાનજ્યોતિ સદા મત્ત છે, કામને વશ છે (અત્રે આચાર્યભગવંતે જનતાની સ્થિતિનું બયાન કરેલ છે કે-

આપ સૌ વિષય - કષાયમાં રત છો અને ઉપદેશ પણ આપેલ છે કે આપ તે વિષય -કષાયમાં રતપણું-વશપણું છેદીને-છોડીને જ્ઞાનજ્યોતિનો અનુભવ કરો) અને નિજ આત્મકાર્યમાં મૂઢ છે (અર્થાત્ સંસારની તમામ હોંશિયારી હોવા છતાં પોતાના આત્માની પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય કાળની રાહ જોતો અર્થાત્ નિયતિવાદી બનીને બેસી રહે છે અને પોતાનો પૂર્ણ પુરુષાર્થ સંસાર માટે વાપરે છે અને નિજ આત્મકાર્યમાં મૂઢ છે અર્થાત્ પુરુષાર્થહીન છે). મોહના અભાવથી આ જ્ઞાનજ્યોતિ શુદ્ધભાવને પામે છે (અર્થાત્ પરમપારિણામિક ભાવના અનુભવન અને સેવનથી શ્રેણી માંડીને મોહનો અભાવ કરી જ્ઞાનજ્યોતિ અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ આત્મા, કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શનરૂપ શુદ્ધભાવને પ્રાપ્ત કરે છે) કે જે શુદ્ધભાવે દિશામંડળને ઘવલિત (અર્થાત્ ઉચ્છ્વળ) કર્યું છે (અર્થાત્ તેથી ત્રણ કાળ-ત્રણ લોક સહજ જણાય છે) અને સહજ અવસ્થાને પ્રગટ કરી છે (અર્થાત્ સર્વ ગુણોની સાક્ષાત્ શુદ્ધ દશા પ્રગટ કરેલ છે).” આ જ રીત છે સિદ્ધત્વની પ્રાપ્તિની.

શ્લોક ૧૬૭:- “શુભ અને અશુભથી રહિત શુદ્ધ ચૈતન્યની ભાવના (અર્થાત્ વિભાવભાવ રહિત શુદ્ધાત્મા અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવની જ ભાવના કે જે ભાવ શ્રી સમયસાર ગાથા છ માં કહ્યાં અનુસાર- પ્રમત્ત પણ નથી અને અપ્રમત્ત પણ નથી, માત્ર એક જ્ઞાયકભાવ છે) મારા અનાદિ સંસારરોગનું ઉત્તમ ઔષધ છે.” અર્થાત્ જે નિર્વિકલ્પ આત્માસ્વરૂપ છે અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા છે તે જ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને સમ્યગ્દ્રષ્ટિને આગળની સાધનામાં તે જ ધ્યાનનો પણ વિષય છે.

શ્લોક ૧૭૦:- “જેણે સહજ તેજથી (અર્થાત્ સહજ પરિણમનરૂપ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માને ભાવવાથી) રાગરૂપી અંધકારનો નાશ કર્યો છે (અર્થાત્ રાગરૂપી વિભાવ ભાવનો જેના ભાવવાથી નાશ થયેલ છે અર્થાત્ જેના કારણે વીતરાગતા આવી છે), જે મુનિવરોના મનમાં વસે છે (અર્થાત્ મુનિવરો તેનું જ ધ્યાન કરે છે અને તેને જ સેવે છે અર્થાત્ તેમાં જ વધારે ને વધારે સ્થિરતા કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે), જે શુદ્ધ - શુદ્ધ (જે અનાદિ-અનંત શુદ્ધ) છે, જે વિષયસુખમાં રત જીવોને સર્વદા દુર્લભ છે (અર્થાત્ મુમુક્ષુજીવે તમામ વિષય - કષાય પ્રત્યેનો આદર છોડી દેવો જરૂરી છે અર્થાત્ અત્યંત આવશ્યકતા સિવાય તેનું જરા પણ સેવન ન કરવાથી તેના પ્રત્યેનો આદર જાય છે; તેની પરીક્ષા અર્થે “મને શું ગમે છે?” એવો પ્રશ્ન પોતાને પુછીને તેનો ઉત્તર તપાસવો અને જે ઉત્તરમાં સંસાર અથવા સંસારના સુખો પ્રત્યેનો આકર્ષણ/આદર ભાવ હોય, તો સમજવું કે મને હજુ વિષય- કષાય નો આદર છે, સંસારનો આદર છે કે જે છોડવા જેવો છે કારણ કે તે અનંત પરાવર્તન કરાવવા સક્ષમ છે), જે પરમ સુખનો સમુદ્ર છે, જે શુદ્ધ જ્ઞાન છે (અર્થાત્ તે જ્ઞાનસામાન્ય માત્ર છે) અને જેણે નિદ્રાનો નાશ કર્યો છે (અર્થાત્ આ શુદ્ધાત્માને ભાવતાં જેઓએ કેવળજ્ઞાન - કેવળદર્શન પ્રાપ્ત કર્યું છે તેઓને આ ભાવનાના બળે જ નિદ્રાનો નાશ થયો છે) તે આ (શુદ્ધાત્મા) જયવંત છે (અર્થાત્ તે શુદ્ધાત્મા જ સર્વસ્વ છે).”

શ્લોક ૧૯૦:- “જેણે નિત્ય જ્યોતિ (અનાદિ-અનંત શુદ્ધભાવરૂપ પરમપારિણામિકભાવ) વડે તિમિરપુંજનો નાશ કર્યો છે, જે આદિ-અંત રહિત છે (અર્થાત્ ત્રણે કાળે શુદ્ધ જ છે), જે પરમ કળા સહિત

છે અને જે આનંદમૂર્તિ છે - એવા એક શુદ્ધાત્માને જે જીવ શુદ્ધાત્મામાં અવિચળ મનવાળો થઈને નિરંતર ધ્યાવે છે (અર્થાત્ તેનું જ ધ્યાન કરે છે), તે આ આચારરાશિ (ચારિત્રવાન) જીવ શીઘ્ર જીવનમુક્ત થાય છે.

શ્લોક ૧૯૩:- “આ ધ્યાન છે, આ ધ્યેય છે, આ ધ્યાતા છે, અને પેલું ફળ છે - આવી વિકલ્પજ્ઞાનોથી જે મુક્ત છે (અર્થાત્ જે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધાત્મા છે) તેને હું નમું છું (સ્તવું છું, સમ્યક પ્રકારે ભાવું છું).”

અર્થાત્ તેનું જ હું ધ્યાન ધરું છું અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરું છું કે જેથી હું નિર્વિકલ્પ થાઉં છું અર્થાત્ અનુભવું છું; અર્થાત્ કોઈપણ વિકલ્પરૂપ ધ્યાન કરતાં આ શુદ્ધાત્મા નું નિર્વિકલ્પ ધ્યાન ઉત્તમ છે, આચરણીય છે કે જે સમ્યગ્દર્શન પછી જ હોય છે.

ગાથા ૧૨૩ અન્વયાર્થ:- “સંયમ, નિયમ ને તપ થી તથા ધર્મધ્યાન ને શુક્લધ્યાનથી જે આત્માને ધ્યાવે છે તેને પરમ સમાધિ છે.” અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ ની આગળની ભૂમિકામાં જે કરવાયોગ્ય છે અર્થાત્ જે સહજ થાય છે તેનું વર્ણન કરેલ છે અને અન્યોએ તે અભ્યાસ રૂપે પણ કરવા યોગ્ય છે.

શ્લોક ૨૦૨:- “ખરેખર સમતારહિત (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનરહિત કારણ કે સમ્યગ્દ્રષ્ટિને જ સાચી સમતા જણાવેલ છે) યતિને અનસનાદિ તપશ્ચરણોથી ફળ નથી (અર્થાત્ મુક્તિરૂપ ફળ નથી પરંતુ સંસારરૂપ ફળ છે કે જે હેય છે તેથી કહ્યું કે ફળ નથી); માટે, હે મુનિ! સમતાનું કુલમંદિર એવું જે અનાકુળ નિજ તત્ત્વ (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા) તેને ભજ.”

અર્થાત્ સર્વપ્રથમ શુદ્ધાત્માનું જ ચિંતન, નિર્ણય, લક્ષ અને યોગ્યતા કરી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય છે કારણ કે તે પછીથી જ સર્વે તપશ્ચરણાનું અર્પણ ફળ અર્થાત્ મુક્તિરૂપ ફળ મળે છે, અન્યથા નહિ.

શ્લોક ૨૦૭:- “હું - સુખને ઇચ્છનારો આત્મા- અજન્મ અને અવિનાશી એવા નિજ આત્માને આત્મા વડે જ આત્મામાં સ્થિત રહીને વારંવાર ભાવું છું” જે કોઈ પરમ સુખના ઇચ્છુક છે તેમને માટે એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ લક્ષ અને શુદ્ધાત્માનું જ ધ્યાન શ્રેષ્ઠ છે કારણ કે તેનાથી જ મુક્તિ મળશે.

શ્લોક ૨૧૧:- “આ અનઘ (નિર્દોષ = શુદ્ધ) આત્મતત્ત્વ જયવંત છે- કે જેણે સંસારને અસ્ત કર્યો છે (અર્થાત્ સંસારના અસ્ત માટે અર્થાત્ મુક્તિ માટે આ શુદ્ધાત્મા જ શરણભૂત-સેવવાયોગ્ય છે), જે મહામુનિગણના અધિનાથના (ગણધરોના) હૃદયારવિંદમાં (મનમાં) સ્થિત છે, જેણે ભવનું કારણ તજી દીધું છે (અર્થાત્ જે આ ભાવમાં સ્થિર થઈ જાય તેને હવે પછી કોઈ ભવ રહે જ નહીં કારણ કે તે મુક્ત જ થઈ જાય), જે એકાંતે શુદ્ધ પ્રગટ થયું છે (અર્થાત્ જે સર્વથા શુદ્ધપણે સ્પષ્ટ જણાય છે અર્થાત્ જે ત્રણેકાળે શુદ્ધ જ હોય છે પરંતુ સમ્યગ્દર્શન થવાથી, તે એકાંતે શુદ્ધ અર્થાત્ ત્રણે કાળે શુદ્ધ જ છે, તે પ્રગટ થયો અર્થાત્ અનુભવમાં આવ્યો માટે પ્રથમથી તે શુદ્ધ જ હોવાં છતાં તેનો અનુભવ ન હોવાથી, અનુભૂતિની

અપેક્ષાએ તે પ્રગટ થયું કહેવાય) અને જે સદા (ટંકોત્કીર્ણ ચૈતન્યસામાન્યરૂપ - અર્થાત્ જ્ઞેયોને ગૌણ કરતાં જ જે જ્ઞણવા-જ્ઞેવાવાળો શેષ રહે છે, તે ત્રણેકાળ તેવો ને તેવો જ જ્ઞાનસામાન્યરૂપ હોવાથી, ટંકોત્કીર્ણ કહેવાય છે; બીજી રીતે જ્ઞેય વિશેષ છે અને તે જેનું બનેલ છે- અર્થાત્ જ્ઞાનનું, તેને સામાન્યજ્ઞાન અર્થાત્ ચૈતન્ય સામાન્ય કહેવાય છે) નિજ મહિમામાં લીન હોવા છતાં સમ્યગ્દ્રષ્ટિઓને ગોચર(અનુભૂતિમાં આવે) છે.”

શ્લોક ૨૧૬:- “આ સ્વતઃસિદ્ધ જ્ઞાન (અર્થાત્ ઉપર જણાવ્યા અનુસારનું પરમપારિણામિકભાવરૂપ સામાન્યજ્ઞાન) પાપપુણ્યરૂપી વનને બાળનારો અગ્નિ છે (અર્થાત્ અપૂર્વ નિર્જરાનું કારણ છે) મહા મોહાંધકારનાશક (અર્થાત્ મોહનો નાશ કરીને અરિહંત પદ અપાવનાર છે) અતિપ્રબળ તેજમય છે, વિમુક્તિનું મૂળ છે અને નિરૂપાધિ મહાઆનંદસુખનું (અર્થાત્ અતિન્દ્રિય સાશ્વતા સુખનું) દાયક છે. ભવભવનો ધ્વંશ કરવામાં નિપુણ (અર્થાત્ મુક્તિ અપાવનાર) એવા આ જ્ઞાનને હું નિત્ય પૂજું છું.” અર્થાત્ તેને નિત્ય ભાવું છું અને તેમાં જ સ્થિરતાનો પુરુષાર્થ કરું છું.

શ્લોક ૨૨૦:- “જે ભવભવના હરનારા આ સમ્યક્ત્વની, શુદ્ધ જ્ઞાનની અને ચારિત્રની ભવછેદક (અર્થાત્ આ સમ્યગ્દર્શન, શુદ્ધજ્ઞાન અર્થાત્ સમ્યક્જ્ઞાન અને તેમાં જ સ્થિરતા કરવારૂપ ચારિત્રને ભવભવના હરનારા કહ્યાં છે અર્થાત્ મુક્તિદાતા કહ્યાં છે) અતુલ ભક્તિ નિરંતર કરે છે, તે કામક્રોધાદિ સમસ્ત દુષ્ટ પાપસમૂહથી મુક્ત ચિત્તવાળો જીવ - શ્રાવક હો કે સંયમી હો- નિરંતર ભક્ત છે, ભક્ત છે.” અર્થાત્ જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર આવી અભેદ ભક્તિ જ કાર્યકારી છે અને તેથી તેવી જ ભક્તિ ઈચ્છવી.

શ્લોક ૨૨૭:- “આ અવિચલિત - મહાશુદ્ધ - રત્નત્રયવાળા, મુક્તિના હેતુભૂત નિરૂપમ - સહજ- જ્ઞાનદર્શનચારિત્રરૂપ (અર્થાત્ જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર વગેરે અનંત ગુણો નું સહજ પરિણામનરૂપ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા), નિત્ય આત્મામાં (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા કે જે નિત્ય શુદ્ધરૂપ એવો ને એવો જ ઉપજે છે અર્થાત્ પરિણામે છે તેવા નિત્ય આત્મામાં) આત્માને પરેખર સમ્યક પ્રકારે સ્થાપીને (અર્થાત્ તેનો જ અનુભવ કરીને અને તેનું જ ધ્યાન ધરીને) આ આત્મા ચૈતન્યચમત્કારની (સામાન્ય ચેતનારૂપ પરમપારિણામિક ભાવની) ભક્તિ વડે નિરતિશય (અબ્દેડ) ધરને- કે જેમાંથી વિપદાઓ દૂર થઈ છે અને જે આનંદથી ભવ્ય છે તેને-અત્યંત પ્રાપ્ત કરે છે અર્થાત્ સિદ્ધિરૂપી સ્ત્રીનો સ્વામી થાય છે.” અર્થાત્ શુદ્ધાત્માના ધ્યાન થી જ અરિહંત થાય છે અને પછી સિદ્ધ થઈ મુક્ત થાય છે.

ગાથા ૧૩૭:- ટીકાનો શ્લોક:- “આત્માપ્રયત્નસાપેક્ષ વિશિષ્ટ જે મનોગતિ (અર્થાત્ નોઈન્દ્રિરૂપ મન દ્વારા જે, આત્માને સ્વાનુભવ થાય છે તે), તેનો બ્રહ્મમાં સંયોગ થવો (અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિ થાય છે અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં = બ્રહ્મમાં ‘હું પણું’ = સોહં કરતાં જ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત થાય છે) તેને યોગ કહેવામાં આવે છે.”

જૈન સિદ્ધાંત અનુસાર યોગની આ વ્યાખ્યા છે અને આ જ યોગ આત્મા માટે હિતકર છે જ્યારે અન્ય યોગો, માત્ર વિકલ્પરૂપ આર્તધ્યાનનાં કારણો હોવાથી સેવવા જેવા નથી; તેથી જ આગળ યોગ ભક્તિવાળા જીવની વ્યાખ્યા કરે છે, તે જ ભક્તિનું પણ સ્વરૂપ છે.

શ્લોક ૨૨૮:- “જે આ આત્મા આત્માને આત્મા સાથે નિરંતર જોડે છે (અર્થાત્ એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ ધ્યાન કરે છે, અનુભવન કરે છે), તે મુનિશ્વર નિશ્ચયથી યોગભક્તિવાળો છે.”

ગાથા ૧૩૮ અન્વયાર્થ:- “જે સાધુ સર્વ વિકલ્પોના અભાવમાં (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પસ્વરૂપ પરમપારિણામિકભાવમાં) આત્માને જોડે છે (અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણું’ કરે છે), તે યોગભક્તિવાળો છે; બીજાને યોગ કઈ રીતે હોય?” અર્થાત્ આવા સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ યોગ સિવાયના બીજા ને યોગ માન્યો જ નથી અર્થાત્ બીજાં કોઈ યોગ કાર્યકારી નથી.

શ્લોક ૨૨૯:- “ભેદનો અભાવ હોતાં (અર્થાત્ અભેદભાવે શુદ્ધાત્માને ભાવતા અર્થાત્ અનુભવતા) અનુત્તમ (શ્રેષ્ઠ) યોગ ભક્તિ હોય છે; તેના વડે યોગીઓને આત્માલબ્ધિરૂપ એવી તે (પ્રસિદ્ધ) મુક્તિ થાય છે.” અર્થાત્ આવો યોગ જ મુક્તિનું કારણ છે અને તેથી અભેદભાવે શુદ્ધાત્મા જ ભાવવા યોગ્ય છે અન્ય કોઈ નહિ.

ગાથા ૧૩૯ અન્વયાર્થ:- “વિપરીત અભિનિવેશનો પરિત્યાગ (અર્થાત્ મતાગ્રહ, હઠાગ્રહ, વગેરેનો ત્યાગ) કરીને જે જૈનકથિત તત્ત્વોમાં આત્માને જોડે છે, તેનો નિજ ભાવ (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માનુભૂતિ) તે યોગ છે.”

ગાથા ૧૪૦ અન્વયાર્થ:- “વૃષભાદિ જિનવરેન્દ્રો એ રીતે યોગની ઉત્તમ ભક્તિ કરીને નિવૃત્તિ સુખને પામ્યા; તેથી યોગની (આવી) ઉત્તમ ભક્તિને તું ધારણ કર (નહિ કે વેવલાંવેડારૂપ ભક્તિ અથવા વ્યક્તિરાગરૂપ ભક્તિ).”

શ્લોક ૨૩૩ - “અપુનર્ભવસુખની (મુક્તિસુખની) સિદ્ધિ અર્થે હું શુદ્ધ યોગની (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં ‘હું પણું’ કરવાવાળા યોગની) ઉત્તમ ભક્તિ કરું છું (અર્થાત્ તેને જ ફરી ફરી ભાવું છું), સંસારની ધોર બીતિથી સર્વ જીવો નિત્ય તે ઉત્તમ ભક્તિ કરો.” અર્થાત્ સર્વેને તે જ શુદ્ધ યોગની ભક્તિની જ પ્રેરણા આપે છે, નહિ કે વેવલાંવેડારૂપ ભક્તિની અથવા વ્યક્તિરાગરૂપ ભક્તિની.

ગાથા ૧૪૧ અન્વયાર્થ:- “જે અન્યવશ નથી (અર્થાત્ જે પૂર્ણ ભેદજ્ઞાન કરીને માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરે છે અને તેથી જે કોઈ કર્મોનો ઉદય હોય છે અર્થાત્ ઉદય આવે છે તેને સમતા ભાવે ભોગવે છે અર્થાત્ તેમાં સારું-ખરાબ અર્થાત્ ઇષ્ટ-અનિષ્ટ બુદ્ધિ નથી કરતો, તેથી તે અન્યવશ નથી) તેને (નિશ્ચય-પરમ) આવશ્યક કર્મ કહે છે. (અર્થાત્ તે જીવને આવશ્યક કર્મ છે એમ પરમ યોગીશ્વરો કહે છે) (આવો) કર્મનો વિનાશ કરનારો યોગ (અર્થાત્ એવું જે આ આવશ્યક કાર્ય) તે નિર્વાણનો માર્ગ છે એમ કહ્યું છે.”

શ્લોક ૨૩૮:- “સ્વવશતાથી ઉત્પન્ન આવશ્યક-કર્મસ્વરૂપ આ સાક્ષાત્ ધર્મ નિયમથી (ચોક્કસ) સચ્ચિદાનંદ મૂર્તિ આત્મામાં (સત-ચિત-આનંદ સ્વરૂપ આત્મામાં અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્મામાં) અતિશયપણે હોય છે. તે આ (આત્મસ્થિત-ધર્મ), કર્મક્ષય કરવામાં કુશળ એવો નિર્વાણનો એક માર્ગ છે. તેનાથી જ હું (અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણું’ કરીને હું) શીઘ્ર કોઈ (અદ્ભુત) નિર્વિકલ્પ સુખને પ્રાપ્ત કરું છું.” અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિમાં અદ્ભુત-અતિન્દ્રિય નિર્વિકલ્પ આનંદ જ હોય છે તેને હું પ્રાપ્ત કરું છું.

શ્લોક ૨૩૯:- “કોઈ યોગી સ્વહિતમાં લીન રહેતો થકો શુદ્ધજીવાસ્તિકાય (અર્થાત્ પૂર્ણ જીવ કે જે પ્રમાણનો વિષય છે તેમાંથી વિભાવભાવ અર્થાત્ પરલક્ષે/કર્મના લક્ષે થવાવાળા ભાવોને ગૌણ કરતાં જ, અર્થાત્ તે જીવને દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી નિહાળતા જ તે પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધજીવાસ્તિકાય પ્રાપ્ત થાય છે તે, પોતાના) સિવાયના અન્ય પદાર્થને વશ થતો નથી, આમ જે સુસ્થિત રહેવું એ નિરૂક્તિ (અર્થાત્ અવશપણાનો વ્યુત્પત્તિ અર્થ) છે એમ કરવાથી (અર્થાત્ પોતામાં લીન રહી પરને વશ નહિ થવાથી) દુરિતરૂપી (દુષ્કર્મરૂપી) તિમિરપુંજનો જેણે નાશ કર્યો છે (અર્થાત્ તે કોઈપણ પ્રકારના પાપો આચરતો નથી એવો અર્થાત્ ભાવમુનિ) એવા તે યોગીને સદા પ્રકાશમાન જ્યોતિ વડે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ કારણ સમયસારરૂપ સદા પ્રકાશમાન જ્યોતિ વડે) સહજ અવસ્થા (અર્થાત્ કાર્યસમયસારરૂપી મુક્તિ) પ્રગટવાથી અમૂર્તપણું (સિદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ) થાય છે.”

શ્લોક ૨૪૧:- “કળિકાળમાં (અર્થાત્ વર્તમાન હુંડાઅવસર્પિણી પંચમ આરામાં) પણ કયાંક કોઈક ભાગ્યશાળી જીવ મિથ્યાત્વાદિરૂપ મળકાદવથી રહિત (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન સહિત) અને સદ્ધર્મરક્ષામણિ એવો સમર્થ મુનિ થાય છે. જેણે અનેક પરિગ્રહોનો વિસ્તારને છોડયો છે અને જે પાપરૂપી અટવીને બાળનારો અગ્નિ છે તે આ મુનિ આ કાળે ભૂતળમાં (પૃથ્વી ઉપર) તેમ જ દેવલોકમાં દેવોથી પણ સારી રીતે પૂજાય છે.” અર્થાત્ આવા સમર્થ મુનિ કોઈક વિરલા જ હોય છે કે જે અત્યંત આદરને પાત્ર છે.

શ્લોક ૨૪૨:- “આ લોકમાં તપશ્ચર્યા સમસ્ત સુબુદ્ધિઓને પ્રાણાચારી છે; તે યોગ્ય તપશ્ચર્યા (અર્થાત્ માત્ર આત્મલક્ષે અને મુક્તિના લક્ષે) સો ઈન્દ્રોને પણ સતત વંદનીય છે. તેને પામીને જે કોઈ જીવ કામાન્ધકારયુક્ત સંસારથી જનિત સુખમાં રમે છે, તે જડમતિ અરેરે ! કળિથી હણાએલો છે.” અર્થાત્ ચારિત્ર અથવા તપશ્ચર્યા અંગીકાર કર્યા બાદ પણ જો કોઈ જીવને કામ-ભોગ પ્રત્યે આદર જીવંત રહે છે તો તેવા જીવને જડમતિ કહેલ છે અર્થાત્ તેવો જીવ પોતાનો અનંત સંસાર જીવંત રાખવાવાળો છે.

શ્લોક ૨૪૩:- “જે જીવ અન્યવશ (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન રહિત) છે તે ભલે મુનિવેશધારી હોય તોપણ સંસારી છે, નિત્ય દુઃખનો ભોગવનાર છે; જે જીવ સ્વવશ (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન સહિત) છે તે જીવનમુક્ત છે, જિનેશ્વરથી કિંચિત્ ન્યૂન છે.”

અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન સહિત મુનિમાં જિનેશ્વરદેવ કરતાં જરાક જ ઉણપ છે અર્થાત્ તેવાં મુનિ શીઘ્ર જ જિનેશ્વરપણું પામવા યોગ્ય છે અને સમ્યગ્દર્શન રહિત મુનિવેશધારીઓને પણ સૌપ્રથમમાં પ્રથમ સમ્યગ્દર્શન પામવાં જેવું છે કારણ કે તેના વગર મોક્ષમાર્ગ જ શરુ થતો નથી એવો ઉપદેશ પણ છે.

શ્લોક ૨૪૪:- “આમ હોવાથી જ જિનનાથના માર્ગને વિશે મુનિવર્ગમાં સ્વવશ મુનિ (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન સહિત સમતાધારી મુનિ) સદા શોભે છે; અને અન્યવશ મુનિ નોકરનાં સમૂહોમાં રાજવલ્લભ નોકર સમાન શોભે છે.”

અર્થાત્ સર્વ સંસારીજન રૂપ નોકરોમાં તે રાજવલ્લભ અર્થાત્ ઉંચી પદવીવાળા નોકરની જેમ શોભે છે તેનાથી વધારે નહિ, અર્થાત્ તેવાં મુનિ પણ ઉંચી પદવીવાળા સંસારી જ છે એમ જણાવીને સમ્યગ્દર્શનનો જ મહિમા સમજાવેલ છે કે જે એક માત્ર સર્વે જીવોને કર્તવ્ય છે.

શ્લોક ૨૪૫:- “મુનિવર દેવલોકાદિના કલેશ પ્રત્યે રતિ તન્ને અને નિર્વાણનાં કારણાનું કારણ (અર્થાત્ નિર્વાણનાં કારણરૂપ નિશ્ચય ચારિત્રનું કારણ એવાં સમ્યગ્દર્શનના વિષય) એવા સહજપરમાત્માને ભન્ને- (અર્થાત્ જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે તેવો પરમપારિણામિકભાવ કે જે આત્માનું સહજ પરિણમન છે અને તેથી જ તેને સહજ પરમાત્મારૂપ કહેવાય છે કે જેમાં ‘હું પણું’ કરતાં સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે કે જે નિશ્ચય ચારિત્રનું કારણ છે, તેથી આ સમ્યગ્દર્શના વિષયને નિર્વાણના કારણાનું કારણ કહેવાય છે) કે જે સહજપરમાત્મા પરમાનંદમય છે, સર્વથા (અર્થાત્ ત્રણે કાળે-એકાંતે) નિર્મળ જ્ઞાનનું રહેકાણ છે, નિરાવરણસ્વરૂપ છે અને નય-અનયના સમૂહથી (સુનયો તથા કુનયોના સમૂહથી અર્થાત્ વિકલ્પમાત્રથી) દૂર (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ) છે.”

ગાથા ૧૪૫ અન્વયાર્થ:- “જે દ્રવ્ય ગુણ પર્યાયોમાં (અર્થાત્ તેમનાં વિકલ્પોમાં) મન જોડે છે, તે પણ અન્યવશ છે; મોહાન્ધકાર રહિત શ્રમણો આમ કહે છે.”

અર્થાત્ ઉપર જણાવ્યાઅનુસાર જે નિર્વિકલ્પ શુદ્ધાત્મા છે તેમાં જ ઉપયોગ લગાવવા જેવો છે અન્યથા નહિ. આ અપેક્ષાએ ભેદ રૂપ વ્યવહાર હેય છે, તેનો ઉપયોગ વસ્તુનું સ્વરૂપ સમજાવવાં માત્ર જ છે- જેમ કે દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય અથવા ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ અને અનંત ગુણો વગેરે; પરંતુ તે સર્વે ભેદો વિકલ્પરૂપ હોવાથી અને વસ્તુનું સ્વરૂપ અભેદ હોવાથી, ભેદરૂપ વ્યવહારથી વસ્તુ જેમ છે તેમ સમજીને ભેદમાં ન રહેતાં, અભેદમાં જ રમવાં જેવું છે.

અત્રે કોઈને વિકલ્પ થાય કે દ્રષ્ટિનો વિષય તો પર્યાયથી રહિત દ્રવ્ય છે ને?

ઉત્તર- આવો વિકલ્પ કરવાથી ત્યાં દ્વેતનો જન્મ થાય છે અર્થાત્ એક અભેદ દ્રવ્યમાં દ્રવ્ય અને પર્યાયરૂપ દ્વેતનો જન્મ થવાથી, અભેદનો અનુભવ થતો નથી; અર્થાત્ દ્રષ્ટિનો વિષય અભેદ, શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિક નયે કરી ‘શુદ્ધાત્મા’ છે અને શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયમાં પર્યાય અત્યંત ગૌણ થઈ જવાથી જણાતી જ નથી

અથવા તેનો વિકલ્પ પણ આવતો નથી તેથી અભેદરૂપ શુદ્ધાત્માનો અનુભવ થઈ જાય છે કે જેમાં વિભાવ પર્યાય અત્યંત ગૌણ છે. આ જ રીત છે નિર્વિકલ્પ સમ્યગ્દર્શનની અર્થાત્ તેમાં દ્રવ્યને પર્યાય રહિત પ્રાપ્ત કરવાનો અથવા કોઈપણ વિભાવભાવના નિષેધનો વિકલ્પ ન કરતાં, માત્ર દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ ‘શુદ્ધાત્મા’ ને જ શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિક નયે કરી ગ્રહણ કરતાં, અન્ય સર્વ આપમેળે જ અત્યંત ગૌણ થઈ જાય છે.

પરંતુ જેઓ આમ ન કરતા નિષેધનો જ આગ્રહ રાખે છે, તેઓ માત્ર નિષેધરૂપ વિકલ્પમાં જ રહે છે અને નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપનો અનુભવ કરી શકતાં નથી પરંતુ તેઓ માત્ર ભ્રમમાં જ રહે છે અને પોતાને સમ્યગ્દ્રષ્ટિ સમજીને અનંત પરાવર્તનને આમંત્રણ આપે છે, જે કરુણા ઉપજાવતી વાત છે

શ્લોક ૨૪૬:- “જેમ ઇન્દ્રનયુક્ત અગ્નિ વૃદ્ધિ પામે છે (અર્થાત્ જ્યાં સુધી ઇન્દ્રન છે ત્યાં સુધી અગ્નિની વૃદ્ધિ થાય છે), તેમ જ્યાં સુધી જીવોને ચિંતા (વિકલ્પો) છે ત્યાં સુધી સંસાર છે.” અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપ ‘શુદ્ધાત્મા’ જ ઉપાદેય છે.

ગાથા ૧૪૬ અન્વયાર્થ:- “જે પરભાવને પરિત્યાગીને (અર્થાત્ દ્રષ્ટિમાં અત્યંત ગૌણ કરીને) નિર્મળ સ્વભાવવાળા આત્માને ધ્યાવે છે, તે ખરેખર આત્મવશ છે (અર્થાત્ સ્વવશ છે) અને તેને (નિશ્ચય-પરમ) આવશ્યક કર્મ (જિનો) કહે છે.” અર્થાત્ આત્મધ્યાન એ પરમ આવશ્યક છે.

શ્લોક ૨૪૮:- “નિર્વાણનું કારણ એવો જે જિનેદ્રનો માર્ગ (છે) તેને આ રીતે જાણીને (અર્થાત્ જિનેન્દ્રકથિત નિર્વાણનો માર્ગ અત્રે સમજાવ્યા અનુસાર જ છે, અન્યથા નહિ; તેથી તેને આ રીતે જાણીને) જે નિર્વાણસંપદાને પામે છે, તેને હું ફરીફરીને વંદુ છું.”

શ્લોક ૨૫૨:- “જેણે નિજ રસના વિસ્તારરૂપી પૂર વડે પાપને સર્વ તરફથી ઘોઈ નાંખ્યા છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં પાપરૂપ સર્વે વિભાવભાવ અત્યંત ગૌણ હોવાથી અર્થાત્ જણાતા જ ન હોવાથી અને તેમાં ‘હું પાણું’ પણ ન હોવાથી આમ કહ્યું છે), જે સહજ સમતારસથી પૂર્ણ ભરેલો હોવાથી પવિત્ર છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા સર્વગુણોના સહજ પરિણમનરૂપ પરમપારિણામિકભાવરૂપ સહજ સમતારસથી પૂર્ણ હોય છે), જે પુરાણ (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા સનાતન-ત્રિકાળ શુદ્ધ) છે, જે સ્વવશ મનમાં સદા સુસ્થિત છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન યુક્તને તે ભાવ સદા લબ્ધરૂપે હોય છે) અને જે શુદ્ધ સિદ્ધ છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા, સિદ્ધ ભગવાન સમાન શુદ્ધ છે અને તે જ અપેક્ષાએ ‘સર્વ જીવો સ્વભાવથી સિદ્ધ સમાન જ છે’ કહેવાય છે) એવો સહજ તેજરાશિમાં મગ્ન જીવ (અર્થાત્ સ્વત્માનુભૂતિ યુક્ત જીવ) જયવંત છે.”

ગાથા ૧૪૭ અન્વયાર્થ:- “જો તું (નિશ્ચય પરમ) આવશ્યકને ઈચ્છે છે તો તું આત્માસ્વભાવોમાં (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં) સ્થિરભાવ કરે છે; તેનાથી જીવને સામાયિકગુણ સંપૂર્ણ થાય છે.” અર્થાત્ જે જીવ શુદ્ધાત્મામાં જ સ્થિરભાવ કરે છે, તેને જ કાર્યકારી = સાચી સામાયિક કહેલ છે અને તેને જ અપૂર્વ નિર્જરા થાય છે.

શ્લોક ૨૫૬:- “આત્માને અવશ્ય માત્ર સહજ-પરમ-આવશ્યકને એકને જ કે જે અઘસમૂહનું (દોષસમૂહનું) નાશક છે અને મુક્તિનું મૂળ (કારણ) છે તેને જ- અતિશયપણે કરવું (અર્થાત્ સહજ-પરમ-આવશ્યક એ કોઈ શારીરિક અથવા શાબ્દિક ક્રિયા ન હોવાથી, માત્ર મનની જ ક્રિયા છે અર્થાત્ અતિન્દ્રિય ધ્યાનરૂપ હોવાથી અતિશયપણે કરવાં કહ્યું છે). (એમ કરવાથી) સદા નિજ રસના ફેલાવથી પૂર્ણ ભરેલો હોવાને લીધે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં માત્ર નિજ ગુણોનું સહજ પરિણમન જ ગ્રહણ થાય છે કે જે પૂર્ણ હોવાને લીધે) પવિત્ર ને પુરાણ (સનાતન-ત્રિકાળ) એવો તે આત્મા વાણીથી દૂર (વચન અગોચર) એવા કોઈ સહજ શાશ્વત સુખને (સિદ્ધોના સુખને) પામે છે.”

શ્લોક ૨૫૭:- “સ્વવશ મુનીંદ્રને (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રયુક્ત મુનીંદ્રને) ઉત્તમ સ્વાત્મચિંતન (નિજાત્માનુભવન) હોય છે, અને આ (નિજાત્માનુભવનરૂપ) આવશ્યક કર્મ (તેને) મુક્તિસૌખ્યનું (સિદ્ધત્વનું) કારણ થાય છે.”

ગાથા ૧૫૧ અન્વયાર્થ:- “જે ધર્મધ્યાનને શુકલધ્યાનમાં પરિણત છે તે પણ અંતરાત્મા છે, ધ્યાનવિહીન (અર્થાત્ આ બંને ધ્યાન વિહિન) શ્રમણ બહિરાત્માં છે એમ જાણ.”

ગાથા ૧૫૪ અન્વયાર્થ:- “જે કરી શકાય તો અહો! ધ્યાનમય (સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ શુદ્ધાત્માના ધ્યાનમય) પ્રતિક્રમણાદિ કર; જે તું શક્તિવિહીન હોય (અર્થાત્ જે તને સમ્યગ્દર્શન થયું ન હોય અને તેથી કરીને શુદ્ધાત્માનુભૂતિરૂપ ધ્યાન કરવા શક્તિવિહીન હોય) તો ત્યાં સુધી (અર્થાત્ જ્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન ન થાય ત્યાં સુધી) શ્રદ્ધાન જ (અર્થાત્ અત્રે જણાવેલ તત્ત્વની તે જ રીતથી શ્રદ્ધા) કર્તવ્ય (અર્થાત્ કરવા જેવી) છે.”

શ્લોક ૨૬૪:- “અસાર સંસારમાં, પાપથી ભરપૂર કળિકાળનો વિલાસ હોતાં, આ નિર્દોષ જિનનાથનાં માર્ગને વિશે મુક્તિ નથી, માટે આ કાળમાં અધ્યાત્મધ્યાન કેમ હોઈ શકે? તેથી નિર્મળબુદ્ધિવાળાઓ ભવભયનો નાશ કરનારી આ (ઉપર જણાવ્યા અનુસારની) નિજાત્મશ્રદ્ધાને અંગીકૃત કરે છે.” અર્થાત્ આ કાળમાં સમ્યગ્દર્શન અત્યંત દુર્લભ હોવાથી પોતાના આત્માની અત્રે જણાવ્યાનુસાર શ્રદ્ધા પરમ કર્તવ્ય છે અર્થાત્ તે જ કાર્યકારી = સાચી ભક્તિ છે.

ગાથા ૧૫૬ અન્વયાર્થ:- “નાના પ્રકારના (અલગ અલગ અનેક પ્રકારનાં) જીવો છે, નાના પ્રકારનું કર્મ છે, નાના પ્રકારની લબ્ધિ છે, તેથી સ્વસમયો (સ્વધર્મીઓ) અને પરસમયો (પરધર્મીઓ) સાથે વચનવિવાદ વર્જવાયોગ્ય છે.”

અર્થાત્ તત્ત્વ માટે કોઈ જ વાદ-વિવાદ, વેર-વિરોધ, ઝઘડા કચારેય કરવા જેવા નથી કારણ કે તેનાથી તત્ત્વનો જ પરાજય થાય છે, અર્થાત્ ધર્મ જ લજવાય છે અને બંને પક્ષોને કોઈ જ ધર્મ પ્રાપ્તિ થતી નથી, તેથી તેવાં વાદ-વિવાદ, વેર-વિરોધ, ઝઘડા ત્યજવા જ યોગ્ય છે.

શ્લોક ૨૭૧:- “હેયરૂપ એવો જે કનક અને કામિની સંબંધી મોહ તેને છોડીને (અર્થાત્ મુમુક્ષુ જીવે આત્મપ્રાપ્તિ અર્થે આ મોહ છોડવા જેવો છે), હે ચિત્! (અર્થાત્ ચેતન!) નિર્મળ સુખને અર્થે (અર્થાત્ અતિદ્વિયસુખને અર્થે) પરમ ગુરુ દ્વારા ધર્મને પ્રાપ્ત કરીને તું અવ્યગ્રરૂપ (શાંતસ્વરૂપી) પરમાત્મામાં (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ પરમપારિણામિકભાવરૂપ ત્રિકાળી શુદ્ધ આત્મામાં)- કે જે (પરમાત્મા - શુદ્ધાત્મા) નિત્ય આનંદવાળો છે, નિરૂપમ ગુણોથી અલંકૃત છે અને દિવ્ય જ્ઞાનવાળો (અર્થાત્ શુદ્ધ સામાન્ય જ્ઞાનવાળો શુદ્ધાત્મા) છે તેમાં- શીઘ્ર પ્રવેશ કર.” અર્થાત્ સર્વે મુમુક્ષુ જીવોને કનક અને કામિની સંબંધી મોહ છોડીને શુદ્ધાત્મામાં જ શીઘ્ર ‘હું પણું’ કરી તેની જ અનુભૂતિમાં એકરૂપ થઈ જવાની પ્રેરણા કરેલ છે અર્થાત્ સર્વે મુમુક્ષુ જીવોને તે જ કર્તવ્ય છે.

ગાથા ૧૫૯ ટીકાનો શ્લોક:- “વસ્તુનો યથાર્થ નિર્ણય તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે, તે સમ્યગ્જ્ઞાન, દીવાની માફક સ્વના અને (પર) પદાર્થોના નિર્ણયાત્મક છે (અર્થાત્ આ સમ્યગ્જ્ઞાન એ જ વિવેકયુક્ત જ્ઞાન છે કે જે શુદ્ધાત્મામાં ‘હું પણું’ કરતું હોવા છતાં, આત્માને વર્તમાન રાગ-દ્વેષરૂપ અશુદ્ધિથી મુક્ત કરાવવા માટે, વિવેકયુક્ત માર્ગ અંગીકાર કરાવે છે) તથા પ્રમિતિથી (જ્ઞમિતિથી) કથંચિત્ ભિન્ન (અર્થાત્ જે જાણવું થાય છે તે વિશેષ અર્થાત્ જ્ઞાનાકાર છે કે જે જ્ઞાનનું જ બનેલ હોવા છતાં તે જ્ઞાનાકારને દ્રષ્ટિનો વિષય પ્રાપ્ત કરવાં ગૌણ કરવાના હોવાથી અને તે જ્ઞાનાકાર અને જ્ઞાન કથંચિત્ અભેદ હોવાથી અર્થાત્ એકાંતે ભેદ નહિ હોવાથી તેને કથંચિત્ ભિન્ન કહ્યાં) છે.”

ગાથા ૧૬૪ અન્વયાર્થ:- “વ્યવહારનયથી જ્ઞાન પરપ્રકાશક છે; તેથી દર્શન પરપ્રકાશક છે; વ્યવહારનયથી આત્મા પરપ્રકાશક છે તેથી દર્શન પરપ્રકાશક છે.”

અર્થાત્ જે જ્ઞાન છે અથવા દર્શન છે, તે જ આત્મા છે અને પરપ્રકાશનમાં (અર્થાત્ જ્ઞેયાકારરૂપ જ્ઞાનના પરિણામનમાં) સામાન્યજ્ઞાન અને જ્ઞેયાકાર અર્થાત્ જ્ઞાનાકાર એવા ભેદ હોવાથી, સ્વથી કથંચિત્ ભિન્ન કહેવાય છે. અર્થાત્ સ્વ, અભેદ અને નિર્વિકલ્પ સ્વરૂપ છે જ્યારે પરપ્રકાશનમાં જ્ઞેયાકારરૂપ જે જ્ઞાનનું પરિણામન થાય છે તે વિકલ્પરૂપ છે અને તેથી તે ભેદરૂપ હોવાથી તેને વ્યવહારરૂપ કહ્યું છે કારણ કે ભેદ તે વ્યવહાર અને અભેદ તે નિશ્ચય આવી જ જિનાગમની રીત છે.

ગાથા ૧૭૦ અન્વયાર્થ:- “જ્ઞાન જીવનું સ્વરૂપ છે, તેથી આત્મા આત્માને જાણે છે, જ્ઞે જ્ઞાન આત્માને ન જાણે તો આત્માથી વ્યતિરિક્ત (જુદું) ઠરે!”

ગાથા ૧૭૧ ગાથા અને અન્વયાર્થ:- “રે ! (એટલા માટે જ) જીવ છે તે જ્ઞાન છે, ને જ્ઞાન છે તે જીવ છે, તે કારણે નિજપરપ્રકાશક જ્ઞાન તેમ જ દ્રષ્ટિ છે. - આત્માને જ્ઞાન જાણ, અને જ્ઞાન આત્મા છે એમ જાણ; આમાં સંદેહ નથી. તેથી જ્ઞાન તેમ જ દર્શન સ્વપરપ્રકાશક છે.”

અર્થાત્ જ્યાં પણ જ્ઞાનથી કથન થયું હોય ત્યાં પૂર્ણઆત્મા જ સમજવો અને તે ઉપરાંત કોઈક

શાસ્ત્રોમાં જ્ઞાનને સાકાર ઉપયોગવાળું હોવાના કારણે પરને જાણવાવાળું કહ્યું છે અને દર્શનને નિરાકાર ઉપયોગવાળું હોવાના કારણે સ્વને જાણવાવાળું કહ્યું છે, તે વાતનો ઉપરોક્ત ગાથાઓથી નિષેધ કરેલ છે.

ગાથા ૧૭૨ અન્વયાર્થ:- “જાણતાં અને દેખતા હોવા છતાં (અર્થાત્ કેવળી ભગવંત સ્વપરને જાણે દેખે તો પણ) કેવળીને ઈચ્છાપૂર્વક (વર્તન) હોતું નથી, તેથી તેમને ‘કેવળજ્ઞાની’ કહ્યા છે, વળી તેથી અબંધક કહ્યા છે” કારણ તેમને પરમાં ઈષ્ટ - અનિષ્ટ બુદ્ધિ નથી અર્થાત્ પરનું જાણવું જીવને દોષકારક નથી, પરંતુ પરમાં ઈષ્ટ - અનિષ્ટ બુદ્ધિ જ નિયમથી દોષકારક અર્થાત્ બંધનું કારણ છે જે વાત અમે પૂર્વે પણ જણાવેલ છે.

શ્લોક ૨૮૭:- “આત્માને જ્ઞાનદર્શનરૂપ જાણ અને જ્ઞાનદર્શનને આત્મા જાણ; સ્વ અને પર એવા તત્ત્વને (સમસ્ત પદાર્થોને) આત્મા સ્પષ્ટપણે પ્રકાશે છે.” અર્થાત્ જ્યાં પણ જ્ઞાનથી અથવા દર્શનથી કથન થયું હોય ત્યાં તેને અપેક્ષાએ પૂર્ણઆત્મા જ સમજવો અને તેઓને નિયમથી સ્વ-પર પ્રકાશક સમજવાં.

શ્લોક ૨૯૭ - “ભાવો પાંચ છે, જેમાં આ પરમ પંચમ ભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) નિરંતર સ્થાયી છે (અર્થાત્ ત્રણે કાળે એવોને એવો જ સહજ પરિણામનરૂપ શુદ્ધભાવે ઉપજે છે તે અપેક્ષાએ સ્થાયી કહ્યો છે), સંસારનાં નાશનું કારણ છે અને સમ્યગ્દ્રષ્ટિઓને ગોચર (અર્થાત્ અનુભવમાં આવે) છે, બુદ્ધિમાન પુરુષ સમસ્ત રાગદ્વેષના સમૂહને છોડીને (અર્થાત્ દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ કરી સમસ્ત વિભાવભાવને અત્યંત ગૌણ કરીને) તેમ જ તે પરમપંચમભાવને જાણીને (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ કરીને) એકલો (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ પછીની સાધના અભ્યંતર હોવાથી એકલો કહ્યો છે અથવા આ કાળમાં સમ્યગ્દર્શનની દુર્લભતા દર્શાવવા એકલો કહ્યો છે), કળિયુગમાં પાપવનના અગ્નિરૂપ મુનિવર તરીકે શોભે છે.” અર્થાત્ જે બુદ્ધિમાન પુરુષ પરમપારિણામિકભાવનો ઉગ્રપણે આશ્રય કરે છે, તે જ પુરુષ પાપવનને બાળવામાં અગ્નિ સમાન મુનિવર છે.

શ્લોક ૨૯૯ - “આત્માની આરાધના રહિત જીવને સાપરાધ (અપરાધી) ગણવામાં આવ્યો છે (તેથી) હું આનંદમંદિર આત્માને (શુદ્ધાત્માને) નિત્ય નમું છું” અર્થાત્ આત્માના લક્ષ સિવાયની સર્વે સાધના-આરાધના અપરાધયુક્ત કહી કારણ કે તેનું ફળ અનંતસંસાર જ છે.

આ રીતે નિયમસાર શાસ્ત્રમાં નિયમથી કારણ સમયસારરૂપ નિજ શુદ્ધાત્મા કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ સહજ પરિણામનરૂપ છે તેને જ જાણવાનું, તેમાં જ ‘હું પણું’ કરવાનું, તેને જ ભજવાનું અને તેમાં જ સ્થિરતાં કરવાનું કહ્યું છે; આ જ મોક્ષ માર્ગનો નિશ્ચિત નિયમ અર્થાત્ ક્રમ છે, તેથી તેને નિશ્ચિત નિયમનો સાર અર્થાત્ નિયમસાર કહ્યો છે.



૩૩

પંચાસ્તિકાય સંગ્રહની ગાથાઓ

હવે આપણે શ્રી પંચાસ્તિકાય સંગ્રહ શાસ્ત્રની થોડીક ગાથાઓ જોઈશું:-

ગાથા ૧૬૫ અન્વયાર્થ:- “શુદ્ધસંપ્રયોગથી (શુદ્ધરૂપ પરિણામેલ પ્રત્યે ભક્તિભાવથી) દુઃખમોક્ષ થાય છે એમ જ્ઞે અજ્ઞાન ને લીધે જ્ઞાની (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન રહિત ક્ષયોપશમજ્ઞાનની) માને, તો તે પરસમયરત જીવ છે. ‘અહંતાદિ પ્રત્યે ભક્તિ - અનુરાગવાળી મંદશુદ્ધિથી ક્રમે મોક્ષ થાય છે’ એવું જ્ઞે અજ્ઞાનને લીધે (શુદ્ધાત્મસંવેદનના અભાવને લીધે, રાગાંશના લીધે) જ્ઞાનીને (અર્થાત્ ક્ષયોપશમજ્ઞાનીને) પણ મંદ પુરુષાર્થવાળું વલણ વર્તે, તો ત્યાં સુધી તે પણ સુક્ષ્મ પરસમયમાં રત છે” અર્થાત્ શુભભાવરૂપ જિનભક્તિથી મુક્તિ મળે છે એવું જ્ઞે માને તે મિથ્યાત્વી છે.

ગાથા ૧૬૬ અન્વયાર્થ:- “અહંત, સિદ્ધ, ચૈત્ય (અહંતાદિની પ્રતિમા), પ્રવચન (શાસ્ત્ર), મુનિગણ અને જ્ઞાન પ્રત્યે ભક્તિસંપન્ન જીવ ઘણું પુણ્ય બાંધે છે, પરંતુ તે ખરેખર કર્મનો ક્ષય કરતો નથી.”

અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગ માત્ર સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન સિવાય મળતો જ નથી, તે જ દ્રઢ કરાવવું છે માટે સર્વેજનોએ સમ્યગ્દર્શન અર્થે જ સર્વ પ્રયત્નો કરવાં; તે જ વાત હવે આગળ પણ જણાવે છે.

ગાથા ૧૬૯ અન્વયાર્થ:- “માટે મોક્ષાર્થી જીવ (મુમુક્ષુ) નિઃસંગ (અર્થાત્ પોતાને શુદ્ધાત્મરૂપ અનુભવીને કારણ કે તે ભાવ ત્રિકાળ નિઃસંગ છે) અને નિર્મમ (અર્થાત્ સર્વે પ્રત્યે મમતા ત્યજીને અર્થાત્ સર્વ સંયોગભાવમાં આદર છોડીને નિર્મમ) થઈને સિદ્ધોની (અભેદ) ભક્તિ (શુદ્ધઆત્મદ્રવ્યમાં સ્થિરતારૂપ પરમાર્થિક સિદ્ધભક્તિ) કરે છે, તેથી તે નિર્વાણને પામે (અર્થાત્ મુક્ત થાય) છે.” અમે પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર શુદ્ધાત્માની અભેદ ભક્તિ જ મોક્ષમાર્ગમાં કાર્યકારી છે નહિ કે વેવલાંવેડારૂપ ભક્તિ અથવા વ્યક્તિરાગરૂપ ભક્તિ.

ગાથા ૧૭૨ અન્વયાર્થ:- “તેથી મોક્ષાભિલાષી જીવ (મુમુક્ષુ) સર્વત્ર કિંચિત્ પણ રાગ ન કરો; એમ કરવાથી તે ભવ્ય જીવ વીતરાગ થઈ ભવસાગરને તરે છે.” અર્થાત્ મોક્ષાભિલાષી જીવે મત, પંથ, સંપ્રદાય, વ્યક્તિવિશેષ, વગેરે ક્યાંય રાગ કરવા જેવો નથી.



૩૪

અષ્ટપાહુડની ગાથાઓ

હવે આપણે અષ્ટપાહુડ શાસ્ત્રની થોડીક ગાથાઓ જ્ઞેઈશું -

‘દર્શન પાહુડ’ ગાથા ૮ અર્થ:- “જે પુરુષો દર્શનમાં ભ્રષ્ટ છે (અર્થાત્ મિથ્યાત્વી છે) તથા જ્ઞાન ચારિત્રમાં પણ ભ્રષ્ટ છે તે પુરુષો ભ્રષ્ટમાં પણ વિશેષ (અતિ) ભ્રષ્ટ છે, કોઈ તો દર્શન સહિત છે પરંતુ જ્ઞાન-ચારિત્ર તેમને હોતા નથી, તથા કોઈ અંતરંગ દર્શનથી ભ્રષ્ટ છે તો પણ જ્ઞાન-ચારિત્રનું સારી રીતે પાલન કરે છે (અત્રે જ્ઞાન એટલે જિનાગમનું ક્ષયોપશમ જ્ઞાન લેવું), અને જે દર્શન જ્ઞાન-ચારિત્ર આ ત્રણેથી ભ્રષ્ટ છે તેઓ તો અત્યંત ભ્રષ્ટ છે; તેઓ પોતે તો ભ્રષ્ટ છે પરંતુ બાકીના અર્થાત્ પોતાના સિવાય અન્ય જનોને પણ ભ્રષ્ટ કરે છે.”

આ ગાથાથી સ્પષ્ટ થાય છે કે જિનસિદ્ધાંતને વિશે અનેકાંત પ્રવર્તે છે અર્થાત્ જિનસિદ્ધાંતમાં દરેક કથન અપેક્ષાએ જ હોય છે અને તેથી કરી કોઈ સ્વચ્છંદે એમ કહે કે સમ્યગ્દર્શન સિવાય અભ્યાસાર્થે અને પાપથી બચવાં પણ અહિંસાદિ વ્રત-તપ ન હોય, તેઓને અત્રે ભ્રષ્ટથી પણ અતિ ભ્રષ્ટ કહ્યાં અને અન્યોને પણ તેઓ ભ્રષ્ટરૂપ પ્રવર્તવવાવાળા કહ્યાં છે.

અર્થાત્ આ કાળે સમ્યગ્દર્શન અતિ દુર્લભ હોવાને કારણે, જે કોઈ મિથ્યાત્વી જીવ (અર્થાત્ દર્શન વિહિન જીવ અથવા દર્શન ભ્રષ્ટ જીવ) જ્ઞાન અથવા ચારિત્રની આરાધના કરે છે તો તેમાં કાંઈ જ ખોટું નથી, માત્ર તે જ્ઞાન અને ચારિત્ર તેને મુક્તિ અપાવવા શક્તિમાન નહિ હોવાથી અને ગુણસ્થાનક અનુસાર ન હોવાથી, તે તેને માત્ર અભ્યાસરૂપ અને શુભ ભાવરૂપ જ છે; પરંતુ તેની કોઈ મનાઈ નથી, ઉલટું તેને માટે અત્રે પ્રોત્સાહન આપેલ છે; જેથી સર્વેએ જિનસિદ્ધાંત સર્વ અપેક્ષાએ સમજવો અત્યંત આવશ્યક છે, નહિ કે એકાંતે કારણ કે એકાંત અનેકોના પરમ અહિતનું કારણ થવા સક્ષમ છે.

‘ભાવ પાહુડ’ ગાથા ૮૬ અર્થ:- “અથવા જે પુરુષ આત્માને ઈષ્ટ કરતો નથી (અર્થાત્ જેનું લક્ષ આત્મા પ્રાપ્તિ નથી), તેનું સ્વરૂપ જાણતો નથી (અર્થાત્ આત્મસ્વરૂપ રૂપ વસ્તુવ્યવસ્થાનું સત્ય જ્ઞાન નથી), અંગીકાર કરતો નથી (અર્થાત્ આત્માને અનુભવતો ન હોવાને કારણે મિથ્યાત્વી છે) અને સર્વ પ્રકારના સમસ્ત પુણ્ય કરે છે તો પણ સિદ્ધિ (મોક્ષ) પામતો નથી પરંતુ તે પુરુષ સંસારમાં જ ભ્રમણ કરે છે.”

અર્થાત્ જ્ઞેનું લક્ષ આત્મા પ્રાપ્તિ નથી તેવો જીવ સર્વ પ્રકારના સમસ્ત પુણ્ય કરે છે તો પણ સિદ્ધિ (મોક્ષ) પામતો નથી પરંતુ તે પુરુષ સંસારમાં જ ભ્રમણ કરે છે માટે સર્વે મોક્ષેચ્છુઓએ પૂર્વે આપણે જ્ઞેયું તેમ એક માત્ર આત્માના લક્ષે જ શુભમાં રહેવું અને અશુભનો ત્યાગ કરવો એવો છે વિવેક. અર્થાત્ પાપનોતો ત્યાગ જ અને એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિને લક્ષે જે ભાવ હોય તે નિયમ થી શુભ જ હોય, આવી છે સહજવ્યવસ્થા પરંતુ જે કોઈ આનાથી વિપરીત ગ્રહણ કરે તો તેના તો હવે પછીના ભવોના પણ ઠેકાણા નહિ રહે અને જિનધર્મ વગેરેરૂપ ઉત્તમ સંયોગો પણ પ્રાપ્ત થવાં દુર્લભ થઈ પડશે. તેથી શાસ્ત્રમાંથી છળ ગ્રહણ ન કરવું, અન્યથા અનંતસંસાર ભ્રમણ જ મળશે કે જે અનંત દુઃખનું કારણ છે.

‘મોક્ષ પાહુડ’ ગાથા ૯ અર્થ:- “મિથ્યાદ્રષ્ટિ પુરુષ પોતાના દેહ સમાન બીજના દેહને જ્ઞેઈને, એ દેહ અચેતન છે તો પણ, મિથ્યાભાવથી આત્મભાવ દ્વારા ઘણો પ્રયત્ન કરીને, તેને પરનો આત્મા જ માને છે, અર્થાત્ સમજે છે.”

મિથ્યાત્વી જીવ આ જ રીતે દેહભાવ પુષ્ટ કરે છે. જો તે સાક્ષાત્ સમોસરણમાં પણ જ્ય તો ભગવાનના દેહને જ આત્મા માનીને અથવા જો તે મંદિરમાં જ્ય તો ભગવાનની મૂર્તિરૂપ દેહને જ આત્મા માને છે અને પૂજે છે અને તેમ કરીને તે પોતાનો દેહાધ્યાસ જ પાકો કરે છે અર્થાત્ દેહાધ્યાસ જ દ્રઢ કરે છે.

ગાથા ૧૮ અર્થ:- “સંસારના દુઃખ આપવાવાળા જ્ઞાનાવરણાદિક દુષ્ટ આઠ કર્મોથી રહિત છે (અર્થાત્ જે સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા છે તેમાં દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ કરી સર્વ વિભાવભાવ અસ્ત થયો છે અર્થાત્ અત્યંત ગૌણ થઈ ગયો છે તેથી તે દુષ્ટ આઠ કર્મોથી રહિત કહ્યો છે) જેને કોઈની ઉપમા આપી શકાય નહિ એવો અનુપમ છે, જેનું જ્ઞાન એ જ શરીર છે (અર્થાત્ જે સામાન્ય જ્ઞાનમાત્ર ભાવ છે તે જ, પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા છે તે જ), જેનો નાશ નથી એવો અવિનાશી-નિત્ય છે અને શુદ્ધ અર્થાત્ વિકાર રહિત છે તે કેવળજ્ઞાનમયી આત્મા (અર્થાત્ સર્વે ગુણોના સહજપરિણામનરૂપ પરમપારિણામિકભાવ કે જેને શુદ્ધાત્મા પણ કહેવાય છે તેનાં સર્વે ગુણો શુદ્ધ જ પરિણામે છે તે અપેક્ષાએ કેવળજ્ઞાનમયી કહ્યો છે અને બીજું ઉપર જણાવ્યા અનુસાર જેનું જ્ઞાન એ જ શરીર છે અર્થાત્ તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ હોવાથી તેને કેવળજ્ઞાનમયી કહ્યો છે) જિન ભગવાન સર્વજ્ઞે કહ્યો છે, તે જ સ્વદ્રવ્ય [અર્થાત્ તે જ મારું સ્વ છે અને તેમાં જ મારે ‘હું પણું (એકત્વ)’ કરવા જેવું છે તે અપેક્ષાએ તેને સ્વદ્રવ્ય કહ્યો] છે.” આ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા જ ઉપાદેય છે અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતાં સ્વાત્માનુભૂતિરૂપ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે તેમ આ ગાથામાં જણાવેલ છે.

ગાથા ૨૦ અર્થ:- “યોગી-ધ્યાની-મુનિ છે તે જિનવરભગવાનના મતથી શુદ્ધાત્માને ધ્યાનમાં ધ્યાવે છે (અર્થાત્ એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ ધ્યાન કરવા જેવું છે તે જ ઉત્તમ છે ને તેના ધ્યાનથી જ યોગી કહેવાય છે), તેથી નિર્વાણને પ્રાપ્ત કરે છે, તો તેનાથી શું સ્વર્ગલોક પ્રાપ્ત ન થઈ શકે? અવશ્ય જ પ્રાપ્ત થઈ શકે છે.”

અર્થાત્ અનેક લોકો સ્વર્ગની પ્રાપ્તિને અર્થે નાના પ્રકારનાં-અનેક ઉપાયો કરતાં જોવા મળે છે તો તે ઉપાય થી તો કદાચ ક્ષણિક સ્વર્ગ પ્રાપ્ત થાય પણ અથવા ન પણ થાય, પરંતુ પરંપરામાં તો તેને અનંત સંસાર જ મળે છે; જ્યારે શુદ્ધાત્માનું અનુભવન અને ધ્યાનથી મુક્તિ મળે છે અને મુક્તિ ન મળે ત્યાં સુધી સ્વર્ગ અને સ્વર્ગ જેવું જ સુખ હોય છે, તેથી સર્વેએ તેનું જ ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે કે જે મુક્તિનો માર્ગ છે અને તે માર્ગમાં સ્વર્ગ તો સહજ જ હોય છે, તેની માંગણી નથી હોતી એમ જણાવેલ છે.

ગાથા ૬૬ અન્વયાર્થ:- “જ્યાં સુધી મનુષ્ય ઈન્દ્રિયોના વિષયોમાં પોતાના મનને જોડેલું રાખે છે (અર્થાત્ મનમાં ઈન્દ્રિયોના વિષયો પ્રત્યે આદરભાવ વર્તે છે) ત્યાં સુધી આત્માને જાણતો નથી (કારણ કે તેનું લક્ષ્ય વિષયો છે આત્મા નહિ. તેથી કરીને જ પૂર્વે અમે કહ્યું હતું કે ‘મને શું ગમે છે?’ એ મુમુક્ષુ જીવે જોતા રહેવું અને તેનાથી પોતાની યોગ્યતાની તપાસ કરતાં રહેવી અને જો યોગ્યતા ન હોય તો તેનો પુરુષાર્થ કરવો આવશ્યક છે) તેથી વિષયોથી વિરક્ત ચિતવાળા યોગી-ધ્યાની-મુનિ જ આત્માને જાણે છે.” આ ગાથામાં આત્મપ્રાપ્તિ માટેની યોગ્યતા જણાવેલ છે.

‘શીલ પાહુડ’ ગાથા ૪ અર્થ:- “જ્યાં સુધી આ જીવ વિષયબળ અર્થાત્ વિષયોને વશ રહે છે ત્યાં સુધી જ્ઞાનને જાણતો નથી અને જ્ઞાનને જાણ્યા વિના કેવળ વિષયોથી વિરક્ત થવા માત્રથી જ પહેલા બાંધેલા કર્મોનો નાશ થતો નથી.”

અર્થાત્ વિષયવિરક્તિ એ કોઈ ધ્યેય નથી પરંતુ સમ્યગ્દર્શન કે જે ધ્યેય છે તેના માટેની આવશ્યક યોગ્યતા છે અને તે પણ એકમાત્ર આત્માલક્ષે જ હોવી જોઈએ કે જેથી તેનાથી આગળ આત્મજ્ઞાન થતાં જ, અપૂર્વ નિર્જરા જણાવેલ છે; પરંતુ આત્મજ્ઞાનના લક્ષ્ય વગરની માત્ર વિષયવિરક્તિ કર્મ ખપાવવામાં કાર્યકારી નથી એમ જણાવેલ છે, અર્થાત્ મુમુક્ષુ જીવોએ એક માત્ર આત્માલક્ષે વિષયવિરક્તિ કરવી અત્યંત આવશ્યક છે.



૩૫

સમ્યગ્દર્શન અને મોક્ષમાર્ગ

અહીં સુધી જે ભાવો આપણે દ્રઢ કર્યા તે એ છે કે- સમ્યગ્દર્શન અને પછીથી મોક્ષમાર્ગ અને મુક્તિ માટે દરેકે લક્ષમાં લેવા જેવી કોઈ વસ્તુ હોય તો તે છે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ આત્માના સહજપરિણામનરૂપ શુદ્ધાત્મા છે કે જે મુક્તિનું કારણ હોઈને, કારણ સમયસાર અથવા કારણશુદ્ધ પર્યાય તરીકે પણ જણાવેલ છે, તેના ઘણાં નામો પ્રયોજવામાં આવે છે; પરંતુ તેમાંથી શબ્દો નહિ પકડતાં, એક માત્ર શુદ્ધાત્મારૂપ ભાવ જેમ કહ્યો છે તેમ લક્ષમાં લેવો આવશ્યક છે કારણ કે તેના વગર મોક્ષ માર્ગમાં પ્રવેશ જ નથી. આ કારણે ભેદજ્ઞાન કરાવવા, અધ્યાત્મિક શાસ્ત્રો તેને 'સ્વતત્ત્વ' રૂપ આત્મા માને છે અને બાકીના જે આત્માના તમામ ભાવો છે તેનો આત્મામાં 'નકાર' કરે છે, તે ને જ 'નેતી નેતી' રૂપ પણ કહેવાય છે અર્થાત્ નિશ્ચયનરૂપ નકાર પણ કહેવાય છે. જેથી કરીને સમયસાર અથવા નિયમસાર જેવાં અધ્યાત્મિક શાસ્ત્રોનો પ્રાણ-હાર્દ માત્ર આ શુદ્ધાત્મા જ છે અને તે શાસ્ત્રો ભેદજ્ઞાનના શાસ્ત્રો છે કે જેથી કરી મુમુક્ષુજીવો પોતાના વિભાવભાવથી ભેદજ્ઞાન કરી, 'શુદ્ધાત્મા' નો અનુભવ કરે અને સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ કરી મોક્ષમાર્ગમાં આગળ વધી પરંપરાએ મુક્ત થાય, એ જ આ શાસ્ત્રનો એકમાત્ર ઉદ્દેશ છે. તેથી આ શાસ્ત્રોને આ ઉદ્દેશથી અર્થાત્ આ અપેક્ષાએ સમજવા અત્યંત આવશ્યક છે, નહિ કે એકાંતે.

જેમ કે આ શાસ્ત્રો વાંચીને લોકો એમ કહેવા લાગે કે મારામાં તો રાગ છે જ નહીં, હું રાગ કરતો જ નથી, વગેરે અને તેઓ તેના ઉદ્દેશરૂપ ભેદજ્ઞાન ન કરતાં, તેનો જ આધાર લઈ સ્વચ્છંદે રાગ-દ્વેષરૂપે જ પરિણમે અને તે પણ જરાય અફસોસ વગર, આનાથી મોટી કરુણતાં શું હોય? અર્થાત્ આનાથી મોટું પતન શું હોય? અર્થાત્ આ મહાપતન જ છે. કારણ કે જે શાસ્ત્રો ભેદજ્ઞાન કરીને મુક્ત થવા માટેના છે, તેને લોકો એકાંતે શબ્દસઃ સમજીને-જાણીને સ્વચ્છંદે પરિણમી, પોતાના અનંત સંસારનું કારણ થાય છે અને તેઓ માને છે કે અમે બધું જ સમજી ગયા, અમે અન્યો કરતાં ઉંચા/મોટાં છીએ કારણ કે અન્યોને તો આ વાતની ખબર જ નથી કે આત્મા રાગ કરતો જ નથી, આત્મામાં રાગ છે જ નહીં વગેરે; આ છે સ્વચ્છંદે શબ્દોને પકડીને એકાંતરૂપ પરિણામન કે જે સમયસાર અથવા નિયમસાર જેવા શાસ્ત્રનું પ્રયોજન

જ નથી. ઉલટો રાગ તે આત્મામાં જવાની સીડી છે કારણ કે જે રાગ છે તે આત્માનો વિશેષભાવ છે કે જેને ગૌણ કરતાં જ શુદ્ધાત્મા જણાય છે અર્થાત્ સર્વે વિશેષભાવો સાધનરૂપ છે અને તેને ગૌણ કરતાં જ તે જેના બનેલા છે તે પરમપારિણામિકભાવ સાધ્યરૂપ છે. આ જ રીત છે સમ્યગ્દર્શનની. કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે. અધ્યાત્મિક શાસ્ત્રો ભેદજ્ઞાન કરાવવા માટે વિભાવભાવ ને જીવના નથી એમ કહે છે કારણ કે તેમાં 'હું પણું' નથી કરવાનું અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન માટે માત્ર 'શુદ્ધાત્મા'માં જ 'હું પણું' કરવાનું હોઈને આ શાસ્ત્રોમાં જીવના અન્ય ભાવોને પુદ્ગલ ભાવો અર્થાત્ પરભાવો કહ્યા છે નહિ કે સ્વચ્છંદે પરિણમવા માટે.

અર્થાત્ આત્મામાં રાગ થતો જ નથી, એવો આ શાસ્ત્રનો અભિપ્રાય જ નથી, પરંતુ તે રાગરૂપ વિભાવભાવથી ભેદજ્ઞાન કરાવવા માટે તેને પુદ્ગલનો જણાવેલ છે. જૈન સિદ્ધાંતનો વિવેક તો એ છે કે 'હું પણું' માત્ર શુદ્ધાત્મામાં અને જ્ઞાન પ્રમાણનું અર્થાત્ અશુદ્ધરૂપે પરિણામેલ પૂર્ણ આત્માનું અને તેવો વિવેક કરી, તે મુમુક્ષુ તેવા રાગરૂપ ઉદયભાવથી હંમેશા માટે મુક્ત થવાનો પ્રયત્ન (પુરુષાર્થ) આદરે છે, નહિ કે તે મારા નથી, હું કરતો નથી વગેરે કહીને તેને પોષવાનો સ્વચ્છંદ આચરે છે.

આવી છે વિપરીત સમજણની કરુણા, અર્થાત્ વિભાવભાવ જ્ઞાની અથવા મુમુક્ષુ જીવને એક સમય પણ સહન કરવા જેવો લાગતો નથી કારણ કે તે ભાવ તો આત્માને (અર્થાત્ મને) બંધનરૂપ છે, દુઃખરૂપ છે તેથી આવા ભાવનું પોષણતો કોઈ (જ્ઞાની અથવા મુમુક્ષુ કોઈ) પણ ન કરે; એટલે જે સ્વચ્છંદે આવા ભાવોનું પોષણ કરે છે, તે પોતાનું પરમ અહિત જ કરી રહ્યા છે અને તેઓ શાસ્ત્રોનો મર્મ જ સમજ્યા નથી, આવું અત્યંત અફસોસસહ-કરુણાસહ કહેવું આવશ્યક જ છે.

અમે અહીં સુધી જે શુદ્ધાત્માનું વર્ણન કર્યું તે જ અમે વારંવાર અનુભવીએ છીએ અને તેને જ શબ્દોમાં વર્ણન કરવાનો અમે પ્રયત્ન કરેલ છે, કે જે શક્ય નથી જ કારણ કે તેને શબ્દોમાં ભગવાન પણ કહી શકતા નથી. તેથી કરીને અમે આપને વિનંતી કરીએ છીએ કે આપ અહીં સુધી કરેલ સ્પષ્ટતાથી અને આગળ સમયસારના આધારે વિશેષ સ્પષ્ટતા કરવાના છીએ, તે બંનેનો મર્મ સમજીને આપ પણ 'સ્વતત્ત્વ' નો અનુભવ કરો અને પરમસુખ-શાંતિ-પરમાનંદરૂપ મુક્તિ પામો; બસ એ જ એકમાત્ર ઉદ્દેશથી આ સર્વ લખેલ છે.



૩૬

સમયસાર અનુસાર સમ્યગ્દર્શનનો વિષય

શ્રી સમયસાર પૂર્વરંગ ગાથા ૨ ગાથાર્થ:- “હે ભવ્ય! જે જીવ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં સ્થિત થઈ રહ્યો છે તેને નિશ્ચયથી સ્વસમય જાણ (અર્થાત્ જે દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર અને અનંતા ગુણોના સહજ પરિણામનરૂપ પરમ-પારિણામિકભાવમાં જ ‘હું પણું’ સ્થાપીને તેમાં જ સ્થિત થયેલ છે તે સ્વસમય અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જાણ); અને જે જીવ પુદ્ગલ કર્મોનાં પ્રદેશોમાં સ્થિત થયેલ છે તેને પરસમય (અર્થાત્ જે વિભાવભાવ સહિતના જીવમાં ‘હું પણું’ કરે છે તેને મિથ્યાત્વીજીવ) જાણ.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે અરીસાના દષ્ટાંતથી જેમ અરીસાના સ્વચ્છત્વરૂપ પરિણામનમાં જે ‘હું પણું’ કરે છે તે સ્વસમય અર્થાત્ પ્રતિબિંબોને ગૌણ કરીને માત્ર અરીસાને જાણવો -જેમ કે આત્માના સહજ પરિણામન રૂપ પરમપારિણામિકભાવ = જ્ઞાનસામાન્યભાવ = નિષ્ક્રિયભાવમાં પ્રતિબિંબરૂપે બાકીના ચાર ભાવો રહેલ છે તો તે ચાર ભાવોને ગૌણ કરીને માત્ર સ્વચ્છત્વરૂપ પરમપારિણામિક ભાવ = ‘સ્વસમય’માં જ ‘હું પણું’ કરવું. આમ કઈ રીતે થઈ શકે ? તો તેની રીત આચાર્ય ભગવંતે. ગાથા-૧૧માં કતકફળરૂપ બુદ્ધિથી આમ થઈ શકે એમ જણાવેલ છે. અને ગાથા ૨૯૪માં પ્રજ્ઞાછીણી વડે આ જ પ્રક્રિયા કરવાનું જણાવેલ છે. અત્રે સમજવાનું એ છે કે પર્યાય રહિતનું દ્રવ્ય એટલે કે આત્માના ચાર ભાવોને ગૌણ કરીને = રહિત કરીને પંચમ ભાવરૂપ દ્રવ્યની પ્રાપ્તિ કે જે કતકફળ રૂપ બુદ્ધિથી અથવા પ્રજ્ઞારૂપી છીણીથી જ થઈ શકે તેમ છે અન્યથા નહીં. આચાર્ય ભગવંતે કોઈ ભૌતિક છીણીથી જીવમાં ભેદજ્ઞાન કરવાનું નથી કહ્યું કારણ કે જીવ એક અભેદ-અખંડ-જ્ઞાનઘનરૂપ દ્રવ્ય છે. માટે તે પર્યાય રહિતનું દ્રવ્ય પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રજ્ઞાછીણીરૂપ બુદ્ધિથી ચાર ભાવને ગૌણ કરી શેષ રહેલ એક માત્ર ભાવ કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ છે કે જે સદા એવો ને એવો જ ઉપજે છે તેમાં ‘હું પણું’ કરવાનું કહ્યું છે, તેને જ ‘સ્વસમય’ કહ્યો છે કે જેને જાણતાં જ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટે છે.

ગાથા ૨ ટીકા:- આચાર્ય ભગવંત ટીકામાં જણાવે છે કે- “....આ જીવ પદાર્થ કેવો છે? સદાય પરિણામ સ્વરૂપ સ્વભાવમાં રહેલો હોવાથી (પરમપારિણામિકભાવરૂપ હોવાથી) ઉત્પાદ-વ્યય-દ્વીવ્યની એકતારૂપ અનુભૂતિ (અર્થાત્ અનુભૂતિ અભેદ દ્રવ્યની જ હોય છે અર્થાત્ અનુભૂતિ રૂપ ભગવાન આત્મા

= જીવરાજ = દ્રવ્ય પર્યાયની એકતારૂપ હોય છે. કારણ પર્યાય ન હોય તો તે દ્રવ્ય જ ન હોય એટલે કે ભૌતિક છીણીથી પર્યાયને ન કાઢતાં, પ્રજ્ઞાછીણીથી પરભાવરૂપ ચાર ભાવોને કાઢીને એટલે કે ગૌણ કરીને જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ = સહજભવનરૂપ આત્મા શેષ રહે તેમાં ‘હું પણું’ કરતાં જ અનુભૂતિ પ્રગટે છે, તે અનુભૂતિ જેનું લક્ષણ છે એવી સત્તાથી સહિત છે... વળી કેવો છે ? પોતાના અને પરદ્રવ્યોનાં આકારોને પ્રકાશવાનું સામર્થ્ય હોવાથી (એટલે કે સ્વ પર પ્રકાશકપણું સ્વાભાવિક છે તેમાં પણ જો પરને કાઢી નાંખશો તો સ્વ જ નહીં રહે. કારણ કે જ્યાં પરનું પ્રકાશન થાય છે તે સ્વ તો જ્ઞાન જ છે = આત્મા જ છે. ત્યાં પણ પ્રકાશન ગૌણ કરવાનું છે, નિષેધ નહીં; પર પ્રકાશન ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાન = આત્મભાવ = જ્ઞાયકભાવ પ્રાપ્ત થાય છે) જેણે સમસ્ત રૂપને પ્રકાશનારું એકરૂપ પણું પ્રાપ્ત કર્યું છે. (અર્થાત્ જે સમસ્ત રૂપને પ્રકાશે છે કે જેને ગૌણ કરતાં જ - જે ભાવ = જ્ઞાન શેષ રહે છે તે જ જ્ઞાનરૂપ એકપણું પ્રાપ્ત કર્યું છે. એટલે કે જ્ઞાનઘનપણું પ્રાપ્ત કર્યું છે.) આ વિશેષણથી, જ્ઞાન પોતાને જ જાણે છે, પરને નથી જાણતું એમ એકાકાર જ માનનારનો, તથા પોતાને નથી જાણતું પણ પરને જાણે છે એમ અનેકાકાર જ માનનારનો, વ્યવચ્છેદ થયો. (અત્રે સમજવાનું એ છે કે કોઈપણ એકાંત માન્યતા જિનમત બાહ્ય છે અને એવું જે કથન છે કે અંતે તો અનેકાંત પણ સમ્યક એકાંત પામવા માટે જ છે - તેનો હાર્દ એવો જ છે કે જે પાંચ ભાવરૂપ જીવનું વર્ણન છે કે જે અનેકાંતરૂપ છે તે પરમપારિણામિકભાવરૂપ સમ્યક એકાંત પામવા માટે છે. નહિ કે ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો જ નથી’ અથવા ‘કોઈપણ અપેક્ષા એ આત્મામાં રાગ દ્વેષ છે જ નહીં’ વગેરે એકાંત પ્રરૂપણાઓરૂપ કે જે જિનમત બાહ્ય જ ગણાય છે)... જ્યારે આ (જીવ), સર્વ પદાર્થોનાં સ્વભાવને પ્રકાશવામાં સમર્થ એવા કેવળજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરનારી ભેદજ્ઞાનજ્યોતિનો ઉદય થવાથી, સર્વ પરદ્રવ્યોથી છૂટી દર્શનજ્ઞાનસ્વભાવમાં (અત્રે સર્વ ગુણ સમજવા) નિયત વૃત્તિરૂપ (અસ્તિત્વરૂપ) (પર્યાયરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ) આત્મતત્ત્વ સાથે એકત્વગતપણે વર્તે છે (માત્ર તેમાં જ ‘હું પણું’ કરે છે) ત્યારે દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રમાં (અત્રે સર્વ ગુણ સમજવા) સ્થિત હોવાથી યુગપદ્ધ સ્વને એકત્વપૂર્વક જાણતો તથા સ્વ-રૂપે એકત્વપૂર્વક પરિણમતો (અર્થાત્ માત્ર સહજ આત્મ પરિણતિરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ આત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરતો) એવો તે ‘સ્વસમય’ (સમ્યગ્દર્શની છે) એમ પ્રતીત કરવામાં આવે છે,... મોહ તેના ઉદય અનુસાર પ્રવૃત્તિના આધીનપણાથી, દર્શનજ્ઞાનસ્વભાવમાં નિયત વૃત્તિરૂપ આત્મતત્ત્વથી (અર્થાત્ દ્રષ્ટિનો વિષય = કારણશુદ્ધપર્યાય = પરમપારિણામિકભાવથી) છૂટી પર દ્રવ્યના નિમિત્તથી ઉત્પન્ન મોહરાગદ્વેષાદિ ભાવો સાથે એકત્વગત પણે (એકપણુ માનીને) (પાંચ ભાવરૂપ જીવમાં ‘હું પણું’ કરીને) વર્તે છે ત્યારે.... તે ‘પરસમય’ છે (એટલે કે મિથ્યાત્વી જ છે.)

ગાથા ૩ ગાથાર્થ:- “એકત્વનિશ્ચયને પ્રાપ્ત જે સમય છે (અર્થાત્ જેણે માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરીને સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કર્યું છે, તેવો આત્મા) તે લોકમાં બધેય સુંદર છે (અર્થાત્ તેવો જીવ ભલે

નરકમાં હોય કે સ્વર્ગમાં હોય અર્થાત્ દુઃખમાં હોય કે સુખમાં હોય પરંતુ તે સુંદર અર્થાત્ સ્વમાં સ્થિત છે) તેથી એકત્વમાં બીજાના સાથે બંધની કથા (અર્થાત્ બંધરૂપ વિભાવભાવોમાં ‘હું પણું’ કરતાં જ મિથ્યાત્વનો ઉદય થવાથી) વિસંવાદ-વિરોધ કરનારી (અર્થાત્ સંસારમા અનંત દુઃખરૂપ ફળ દેવાવાળી) છે.” અને બીજું, જે આત્મદ્રવ્ય અન્ય કર્મ-નોકર્મરૂપ પુદ્ગલદ્રવ્યની સાથે બંધાઈને રહેલ છે તેમાં વિસંવાદ છે અર્થાત્ દુઃખ છે, જ્યારે તે જ આત્મદ્રવ્ય તે પુદ્ગલદ્રવ્યની સાથેના બંધનથી મુક્ત થાય છે ત્યારે તે સુંદર છે અર્થાત્ અવ્યાબાધ સુખી છે.

ગાથા ૪ ગાથાર્થ:- “સર્વ લોકને કામભોગસંબંધી બંધની કથા તો સાંભળવામાં આવી ગઈ છે (અર્થાત્ સંસારીજન તેમાં તો ખૂબ જ હોંશિયાર હોય જ છે), પરિચયમાં આવી ગઈ છે અને અનુભવમાં પણ આવી ગઈ છે (અર્થાત્ બીજાને તેમ કરતાં જોયા છે અને પોતે પણ તે રૂપ પરિણામી અનુભવ કરેલ છે) તેથી સુલભ છે (અર્થાત્ તે તેને બરોબર સમજે છે ને તેને જ એક માત્ર જીવનના લક્ષરૂપ માનીને, તેની પાછળ જ દોડે છે); પણ ભિન્ન આત્માનું (અર્થાત્ ભેદ-જ્ઞાને કરી પ્રાપ્ત ‘શુદ્ધાત્માનું’) એકપણું હોવું કદી સાંભળ્યું નથી (અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણું’ = એકત્વ કરવા યોગ્ય છે તેવું કદી સાંભળ્યું જ નથી), પરિચયમાં આવ્યું નથી (અર્થાત્ વાતમાં અથવા વાંચવામાં અથવા ઉપદેશમાં આવ્યું નથી), અને અનુભવમાં આવ્યું નથી (તેથી તેને અનુભવ્યું પણ નથી અર્થાત્ સ્વાત્માનુભૂતિ પણ નથી) તેથી એક તે સુલભ નથી.”

પાંચ ઈન્દ્રિયોના જે વિષય છે તેમાંથી શબ્દ અને રૂપને કામ કહેવાય છે તથા ગંધ, રસ અને સ્પર્શને ભોગ કહેવાય છે, પાંચે મળીને કામ-ભોગ કહેવાય છે કે જેના વિશે મોટાભાગના લોકોને રસ હોવાથી (કે જેમાં રસ રાખવા જેવો નથી) તેની કથા સુલભ છે પરંતુ આ કાળે શુદ્ધાત્માની વાત અતિ દુર્લભ છે કે જે અમે અત્રે (સમયસારમાં) જણાવવાના છીએ, એવો ભાવ છે આચાર્ય ભગવંતનો આ ગાથામાં.

ગાથા ૫ ગાથાર્થ:- “તે એકત્વવિભક્ત (અર્થાત્ અભેદરૂપ અને ભેદરૂપ) આત્માને હું આત્માના નિજ વૈભવ વડે દેખાડું છું; (અર્થાત્ જણાવું છું), જો હું દેખાડું તો પ્રમાણ (સ્વીકાર) કરવું અને જો કોઈ ઠેકાણે ચૂકી જઈ તો છળ (અર્થાત્ ઉલટું-વિપરીત-નુકસાનકારક) ન ગ્રહણ કરવું.” અર્થાત્ આ શાસ્ત્રથી સ્વચ્છંદ ગ્રહણ કરીને તમે છેતરાઈ જાઓ તેવું ન કરતાં કારણ કે તે સ્વચ્છંદ અનંત સંસારનું કારણ છે, એમ આચાર્ય ભગવંતે આ ગાથામાં જણાવેલ છે.

ગાથા ૬ ગાથાર્થ:- “જે જ્ઞાયક ભાવ છે (અર્થાત્ જે જ્ઞાનસામાન્યરૂપ, સહજ પરિણામનરૂપ પરમ-પારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા છે) તે અપ્રમત પણ નથી અને પ્રમત પણ નથી (અર્થાત્ તેમાં સર્વ વિશેષ ભાવોનો અભાવ છે કારણ કે તે સામાન્યજ્ઞાનમાત્ર ભાવ અર્થાત્ ગુણોના સહજપરિણામનરૂપ સામાન્યભાવ જ છે કે જેમાં વિશેષનો અભાવ જ હોય છે), -એ રીતે એને શુદ્ધ કહે છે (અર્થાત્ વર્તમાનમાં

શુદ્ધ ન હોવાં છતાં તેનો જે સામાન્યભાવ છે તે ત્રિકાળી શુદ્ધ હોવાનાં કારણે તેને શુદ્ધ કહેવામાં આવે છે); વળી જે જ્ઞાયકપણે જણાયો (અર્થાત્ જે જાણવાવાળો છે) તે તો તે જ છે (અર્થાત્ જે જાણવાની ક્રિયા છે તેમાંથી પ્રતિબિંબરૂપ જ્ઞેય અર્થાત્ જ્ઞાનાકારને ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાયક અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્મા જણાય છે, અનુભવમાં આવે છે; આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે અર્થાત્ જે જાણવાવાળો છે તે જ જ્ઞાયક છે), બીજા કોઈ નથી.”

અર્થાત્ જ્ઞાયક બીજા અને જાણવાની ક્રિયા બીજી એવું નથી અર્થાત્ જ્ઞાયક જ જાણવારૂપે પરિણમેલ છે; તેથી જ જાણનક્રિયામાંથી જ્ઞાનાકારરૂપ પ્રતિબિંબ ગૌણ કરતાં જ, જ્ઞાયક હાજરાહાજુર જ છે અર્થાત્ આત્મામાંથી અપ્રમત અને પ્રમત એ બંને વિશેષભાવોને ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાયકભાવ પ્રાપ્ત થાય છે. પૂર્વે અમે એ વાત સિદ્ધ કરેલ જ છે કે પર્યાય જ્ઞાયકભાવની જ બનેલ છે, એટલે તેમાંથી વિશેષભાવને ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાયક અર્થાત્ સામાન્યભાવ પ્રગટ થાય છે, પ્રાપ્ત થાય છે; આ જ રીત છે સમ્યગ્દર્શનની.

ગાથા ૬ ટીકા:- “જે પોતે પોતાથી જ સિદ્ધ હોવાથી (અર્થાત્ કોઈથી ઉત્પન્ન થયો નહિ હોવાથી) અનાદિ સત્તારૂપ છે, કદિ વિનાશ પામતો નહિ હોવાથી અનંત છે, નિત્યઉદ્યોતરૂપ હોવાથી (અર્થાત્ સહજ આત્મ પરિણામનરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ હોવાથી) ક્ષણિક નથી અને સ્પષ્ટ પ્રકાશમાન જ્યોતિ છે એવો જે જ્ઞાયક એક ‘ભાવ’ છે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવ છે), તે સંસારની અવસ્થામાં અનાદિ બંધપર્યાયની નિરૂપણથી (અપેક્ષાથી) ક્ષીરનીરની જેમ કર્મપુદ્ગલો સાથે એકરૂપ હોવા છતાં, (એટલે કે પરમપારિણામિકભાવરૂપ જીવના સહજ પરિણામમાં જ બાકીના ચાર ભાવ થાય છે કે જે અમે પૂર્વે જણાવેલ જ છે અને સમયસાર ગાથા ૧૬૪-૧૬૫માં પણ જણાવેલ જ છે કે- “સંજ આત્રવો કે જે જીવમાં જ થાય છે તેઓ જીવના જ અનન્ય પરિણામ છે” = જીવ જ તે રૂપે પરિણમેલ છે અર્થાત્ જીવમાં એક શુદ્ધ ભાગ-અને બીજા અશુદ્ધ ભાગ એમ નહીં સમજતાં, સમજવાનું એમ છે કે જીવ ઉદય - ક્ષયોપશમ ભાવ રૂપ પરિણમેલ છે અર્થાત્ જીવમાં છૂપાયેલ સ્વચ્છત્વરૂપ જે જીવનું પરિણામન છે કે જે પરમપારિણામિકભાવ કહેવાય છે તે ભાવ જ અન્ય ચારભાવનો સામાન્યભાવ છે અર્થાત્ જીવમાં અન્ય ચાર ભાવોને ગૌણ કરીને પરમપારિણામિકભાવમાં ‘હું પણું’ કરતાં જ એક જ્ઞાયક ભાવ અનુભવાય છે. આ જ અનુભવની વિધિ છે. જેમકે, રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણમેલ જીવ રાગી-દ્વેષી જણાતો હોવા છતાં - વર્તમાનમાં તે રૂપ હોવા છતાં, તે રાગ-દ્વેષને ગૌણ કરતાં જ પરમપારિણામિકભાવ જણાય છે તે તેનો ‘સ્વ’ભાવ છે કે જેમાં ‘હું પણું’ કરતાં જ તે જીવ ‘સ્વસમય’ = સમ્યગ્દર્શનની થાય છે.) દ્રવ્યના સ્વભાવની અપેક્ષા (ઉપર જણાવેલ દ્રવ્યનો ‘સ્વ’ભાવ = પરમપારિણામિકભાવ = કારણશુદ્ધપર્યાય)થી જ્ઞેવામાં આવે તો દુરંત કષાયચક્રના ઉદયની (અર્થાત્ કષાયના સમૂહના અપાર ઉદયોની) વિચિત્રતાના વશે પ્રવર્તતા જે પુણ્ય-પાપને ઉત્પન્ન કરનાર સમસ્ત અનેકરૂપ શુભ-અશુભ ભાવો તેમના સ્વભાવે પરિણમતો નથી. (અર્થાત્ દ્રવ્યનો સ્વભાવ તે પરમપારિણામિકભાવરૂપ છે કે જે પ્રમત પણ નથી અને અપ્રમત પણ નથી; તે માત્ર

એક જ્ઞાયક ભાવરૂપ છે) તેથી પ્રમત્ત પણ નથી અને અપ્રમત્ત પણ નથી; તે જ સમસ્ત અન્યદ્રવ્યોનાં ભાવોથી (અર્થાત્ જીવના ચાર ભાવ કે જેમાં અન્ય દ્રવ્યનું નૈમિત્તિકપણું છે) ભિન્નપણે (અર્થાત્ જીવના ચારભાવોને ગૌણ કરતાં પંચમ ભાવરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ) ઉપાસવામાં આવતો 'શુદ્ધ' કહેવાય છે. (અત્રે એ સમજવું જરૂરી છે કે રાગ કોઈપણ અપેક્ષાએ જીવમાં નથી, વગેરેરૂપ એકાંત પ્રરૂપણા જિનમત બાહ્ય છે. તેથી તેવી પ્રરૂપણા કરવાવાળા અને તેમાં અટવાયેલ ભોળા જીવો = તેમ માનવાવાળા ભોળા જીવો ભ્રમમાં રહીને અતિ ઉત્તમ એવો માનવ જન્મ અને વીતરાગ ધર્મ એળે ગુમાવે છે અને વીતરાગી બનવાનો એક અમૂલ્ય અવસર ગુમાવે છે.)

વળી, દાહ્યના (-બળવાયોગ્ય પદાર્થના) આકારે થવાથી અગ્નિને દહન કહેવાય છે (અર્થાત્ જ્ઞાનને જ્ઞેયાકારે પરિણમવાથી સ્વ-પરને જાણવાવાળું કહેવાય છે) તોપણ દાહ્યકૃત અશુદ્ધતા તેને નથી, તેવી રીતે જ્ઞેયાકાર થવાથી તે 'ભાવ' (જ્ઞાનાકાર) ને જ્ઞાયકપણું પ્રસિદ્ધ છે (અર્થાત્ જ્ઞાનનું સ્વપરને જાણવું પ્રસિદ્ધ છે) તોપણ જ્ઞેયકૃત અશુદ્ધતા તેને નથી. (કારણ કે તે જ્ઞેયને જ્ઞેયરૂપે = તદરૂપે પરિણમીને જાણતું નથી અર્થાત્ જ્ઞાનને જ્ઞેય સાથે વ્યાપ્યવ્યાપક સંબંધ નથી; તેને પોતાના આકાર = જ્ઞાનાકાર સાથે વ્યાપ્યવ્યાપક સંબંધ છે કે જેનાથી અશુદ્ધતા તેનામાં પ્રવેશ પામતી નથી); કારણ કે જ્ઞેયાકાર અવસ્થામાં (એટલે કે સ્વ-પરને જાણવાના કાળે) જે જ્ઞાયકપણે (જાણવાવાળા તરીકે) જે જાણાયો તે સ્વરૂપ-પ્રકાશનની (સ્વરૂપ જાણવાની = એટલે કે તે જ્ઞેયને જ્ઞાનાકાર તરીકે જ્ઞેતાં અને તેને જ જ્ઞાનરૂપે જ્ઞેતાં અર્થાત્ જ્ઞેયોને ગૌણ કરતાં જ પરમપારિણામિકભાવ અનુભવાય છે. અરીસાના ઉદાહરણ પ્રમાણે પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં જ અરીસાનું સ્વચ્છત્વ જાણાય છે, તેવી) અવસ્થામાં પણ, દીવાની જેમ, કર્તા-કર્મનું અનન્યપણું હોવાથી (એટલે કે જે સ્વચ્છત્વરૂપ પરિણમન = પરમપારિણામિકરૂપ = જ્ઞાનસામાન્ય = નિષ્ક્રિયભાવ છે કે જે સ્વપરને જાણવાવાળા વિશેષભાવનો જ સામાન્યભાવ છે, માટે જો પરનાં જાણવાનો નિષેધ કરવામાં આવે તો તે સ્વચ્છત્વનો = ભગવાન આત્માના નિષેધરૂપ પરિણમશે અને સમજ્યા વગર નિષેધ કરવાવાળાં ભ્રમને = ભ્રમિત દશાને પામશે અને આ અમૂલ્ય મનુષ્ય જન્મ અને વીતરાગનું શાસન મળ્યું તે વ્યર્થ ગુમાવશે. અર્થાત્ જે જાણવાવાળો છે તે) જ્ઞાયક જ છે - પોતે જાણનારો માટે પોતે કર્તા અને પોતાને જાણ્યો માટે પોતે જ કર્મ...' [અત્રે સ્વ-પરનું જાણવું એ ભગવાન આત્મામાં જવાની સીડી રૂપે દર્શાવેલ છે કારણ કે સ્થૂલથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે. કારણ કે જ્ઞાયક જ પોતે જાણનારો છે. જાણવું અને જ્ઞાયક (જાણનાર)ને અનન્યપણું બતાવીને જાણવું (પ્રતિબિંબ) ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાયક (જાણનાર) જાણાય છે માટે સીડી રૂપ છે.]'

ભાવાર્થમાં પંડિત જયચંદ્રજી જણાવે છે કે "...જ્ઞાયક' એવું નામ પણ તેને (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માને = દ્રષ્ટિના વિષયને = પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્માને) જ્ઞેયને જાણવાથી આપવામાં આવે છે કારણ

કે જ્ઞેયનું પ્રતિબિંબ જ્યારે ઝળકે છે ત્યારે જ્ઞાનમાં તેવું જ અનુભવાય છે. તોપણ જ્ઞેયકૃત અશુદ્ધતા તેને નથી કારણ કે જેવું જ્ઞેય જ્ઞાનમાં પ્રતિભાસિત થયું તેવો જ્ઞાયકનો જ અનુભવ કરતાં (જ્ઞેયને ગૌણ કરતાં ત્યાં) જ્ઞાયક જ છે. ‘આ હું જ્ઞાણનારો છું તે હું જ છું, અન્ય કોઈ નથી’ એવો પોતાને પોતાનો અભેદરૂપ અનુભવ થયો ત્યારે એ જ્ઞાણવારૂપ ક્રિયાનો કર્તા પોતે જ છે અને જેણે જ્ઞાણ્યું તે કર્મ પણ પોતે જ છે. [અત્રે સમજવાનું એ છે કે ‘આત્મા ખરેખર પરને જ્ઞાણતો નથી’ એવી વાતો કરીને આત્મામાં જવાનો રસ્તો (સીડી) બંધ કરીને શું મળશે? માત્ર ભ્રમ જ મળશે, કારણ પરને જ્ઞાણવાનો નિષેધ કરતાં જ્ઞાણનારનો જ નિષેધ થાય છે.] આવો એક જ્ઞાયકપણામાત્ર (જ્ઞાણવાવાળો) પોતે શુદ્ધ છે - આ શુદ્ધનયનો વિષય છે. (અત્રે સમજવાનું એ છે કે પ્રથમ જે ‘દ્રષ્ટિના વિષય’ વિશે જણાવ્યું તેમ પર્યાયથી રહિત દ્રવ્ય - એટલે કે પ્રતિબિંબથી રહિત એટલે કે પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં જ્ઞાણનાર રૂપે જ્ઞાયક જ હાજર છે, તે જ દ્રષ્ટિનો વિષય છે. તે જ પરમપારિણામિકભાવ છે, તે જ કારણશુદ્ધપર્યાય છે. તે જ કારણશુદ્ધપરમાત્મા છે. તે જ સમયસારરૂપ જીવરાજ છે. એટલે અહીંયા કોઈ જ ભૌતિક છીણીની જરૂર નથી કારણ કે આત્મા અભેદ - અખંડ છે. એમાંથી કાંઈ જ નીકળે તેમ નથી અને જે કાઢવાની કોશિષ થશે તો આત્મા પોતે જ નીકળી જશે અર્થાત્ આત્માનો જ લોપ થશે. અને કાઢનાર પોતે આકાશના ફૂલની માફક ભ્રમમાં જ રાયશે તેથી અહીંયા પ્રજ્ઞારૂપી છીણીનો ઉપયોગ કરીને = કતકફળરૂપ બુદ્ધિપૂર્વક તે પ્રતિબિંબરૂપ અર્થાત્ ઉદય ક્ષયોપશમરૂપ ભાવોને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં સાક્ષાત્ શુદ્ધાત્મારૂપ પરમપારિણામિકભાવ હાજર જ છે. આ જ સમ્યગ્દર્શનની વિધિ છે, કે જે આચાર્ય ભગવંતે અને પંડિતજીએ ગાથા-૬માં જણાવેલ છે.)”

પંડિતજી આગળ જણાવે છે કે “...અહીં એમ પણ જ્ઞાણવું કે જિનમતનું કથન સ્યાદ્વાદરૂપ છે તેથી અશુદ્ધનયને સર્વથા અસત્યાર્થ ન માનવો; (અત્રે સમજવાનું એ છે કે પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર ગાથા : ૧૬૪-૧૬૫માં ભાવાસ્ત્રવોને જીવથી અનન્ય કહ્યા છે અને તેથી કરીને ‘જીવમાં કોઈપણ અપેક્ષાએ રાગ થતો નથી’ જેવી પ્રરૂપણાઓ જિનમત બાહ્ય છે) કારણ કે સ્યાદ્વાદ પ્રમાણે શુદ્ધતા અને અશુદ્ધતા - બંને વસ્તુના ધર્મ છે અને વસ્તુધર્મ છે. તે વસ્તુનું સત્વ છે (અર્થાત્ તે વસ્તુ જ છે = આત્મા જ છે) (અત્રે સમજવાનું એ છે કે ગાથા : ૧૬૪-૧૬૫માં જણાવ્યા અનુસાર રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણામ થાય તો આત્મામાં જ છે - આત્મા જ એ રૂપે પરિણમે છે. અને એ પરિણામનની હાજરીમાં પણ રાગ-દ્વેષને ગૌણ કરતાં જ તેમાં છૂપાયેલ પરમપારિણામિકભાવરૂપ = સમયસારરૂપ = કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ આત્મા હાજર જ છે); અશુદ્ધતા પરદ્રવ્યના સંયોગથી થાય છે એ જ ફેર છે... અશુદ્ધનયને અસત્યાર્થ કહેવાથી એમ ન સમજવું કે આકાશના ફૂલની જેમ તે વસ્તુધર્મ સર્વથા જ નથી. (અર્થાત્ જેમ છે તેમ સમજવું અર્થાત્ તે છે, પણ તેને ગૌણ કરતાં જ જ્ઞાયક હાજર જ છે, અન્યથા) એમ સર્વથા એકાંત સમજવાથી મિથ્યાત્વ છે (અત્રે પંડિતજીએ એકાંત પ્રરૂપણા કરતાં લોકોને સાવધાન કર્યા છે) માટે સ્યાદ્વાદનું શરણ લઈ શુદ્ધનયનું આલંબન

કરવું (અર્થાત્ જીવને પાંચ ભાવરૂપ જાણી ચાર ભાવ ગૌણ કરતાં જ સમ્યક એકાંતરૂપ શુદ્ધનિશ્ચયનયનો વિષય એવો શુદ્ધાત્મા = પરમપારિણામિકભાવ પ્રગટ થાય છે કે જેનું આલંબન કરવું) જોઈએ.....”

ગાથા ૭ ગાથાર્થ:- “જ્ઞાનીને ચારિત્ર, દર્શન, જ્ઞાન-એ ત્રણ ભાવ વ્યવહારથી કહેવામાં આવે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનીને એક માત્ર અભેદભાવરૂપ ‘શુદ્ધાત્મામાં’ જ ‘હું પણું’ હોવાથી, જે પણ વિશેષ ભાવો છે અને જે પણ ભેદરૂપ ભાવો છે તે વ્યવહાર કહેવાય છે); નિશ્ચયથી જ્ઞાન પણ નથી, ચારિત્ર પણ નથી, દર્શન પણ નથી (અર્થાત્ નિશ્ચયથી કોઈ ભેદ શુદ્ધાત્મામાં નથી, તે એક અભેદ સામાન્યભાવરૂપ હોવાથી તેમાં ભેદરૂપભાવો અને વિશેષભાવો એ બંને ભાવો નથી), જ્ઞાની તો એક શુદ્ધ જ્ઞાયક જ છે.” અર્થાત્ શુદ્ધનિશ્ચયનયનો વિષય માત્ર અભેદ એવો શુદ્ધાત્મા જ છે.

ગાથા ૭ ટીકા:- “..... કારણ કે અનંત ધર્મોવાળા એક ધર્મીમાં (અર્થાત્ ભેદથી સમજીને અભેદરૂપ અનુભૂતિમાં) જે નિષ્ણાત નથી એવા નિકટવર્તી શિષ્યજનને, ધર્મીને ઓળખાવનારા કેટલાક ધર્મો વડે (અર્થાત્ ભેદો વડે), ઉપદેશ કરતા આચાર્યોનો- જોકે ધર્મ અને ધર્મીનો સ્વભાવથી અભેદ છે તો પણ નામથી ભેદ ઉપજાવી (અભેદ દ્રવ્યમાં દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય એમ ભેદ ઉપજાવી) વ્યવહારમાત્રથી જ એવો ઉપદેશ છે કે જ્ઞાનીને દર્શન છે, જ્ઞાન છે, ચારિત્ર છે. પરંતુ પરમાર્થથી (અર્થાત્ વાસ્તવમાં) જોવામાં આવે તો અનંત પર્યાયોને એક દ્રવ્ય પી ગયું હોવાથી જે એક છે... (અર્થાત્ જે દ્રવ્ય ત્રણે કાળે તે તે પર્યાયરૂપ પરિણમતું હોવા છતાં પોતાનું દ્રવ્યપણું છોડ્યું નથી - જેમ કે માટી ઘટ, પિંડ રૂપે પરિણમવા છતાં માટીપણું છોડતી નથી અને દરેક પર્યાયમાં તે માટીપણું વ્યાપ્ય-વ્યાપક સંબંધથી છે માટે પર્યાય અનંતી હોવા છતાં તે દ્રવ્ય તો એક જ છે.)...એક શુદ્ધ જ્ઞાયક જ છે.”

ગાથા ૮ ગાથાર્થ:- “જેમ અનાર્થ (મ્લેચ્છ) જનને અનાર્થભાષા વિના કાંઈ પણ વસ્તુનું સ્વરૂપ ગ્રહણ કરાવવા કોઈ સમર્થ નથી તેમ વ્યવહાર વિના પરમાર્થનો ઉપદેશ કરવા કોઈ સમર્થ નથી. (અર્થાત્ મિથ્યાત્વીને ભેદરૂપ વ્યવહારભાષા વગર વસ્તુનું સ્વરૂપ સમજાવવા કોઈ સમર્થ નથી, તેથી અભેદ તત્ત્વમાં અલગ-અલગ પ્રકારે ભેદરૂપ વ્યવહાર કરવામાં આવે છે, જેમ કે- દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય, જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર, ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ, ૪૭ શક્તિ વગેરે, તે માત્ર સમજાવવા માટે છે; નહીં કે અનુભવવા કારણ અનુભવ તો યથાર્થ એવા અભેદ આત્માનો જ હોય છે = થાય છે. અર્થાત્ પરમાર્થિક આત્મામાં કોઈ જ ભેદ ન સમજાવવા અને જ્યાં સુધી ભેદમાં હશે ત્યાં સુધી અભેદનો અનુભવ નહીં જ થાય કારણ કે ભેદ તો, વ્યવહારરૂપ-ઉપચારમાત્ર અજ્ઞાનીને સ્વરૂપ ગ્રહણ કરાવવા પાડેલ છે, ખરેખર છે નહીં.)”

ગાથા ૧૧ ગાથાર્થ:- “વ્યવહારનય અભૂતાર્થ છે (અર્થાત્ ઉપર જણાવ્યા અનુસાર ભેદરૂપ વ્યવહાર અભૂતાર્થ છે કારણ કે જે ભેદમાં જ રમે છે તે ક્યારેય સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ અભેદ દ્રવ્યનો અનુભવ કરી જ શકતો નથી અને બીજું, નિશ્ચયથી દ્રવ્ય અભેદ હોવાથી જે ભેદ ઉપજાવીને કહેવામાં આવે

છે, તેવાં વ્યવહારરૂપ-ઉપચારરૂપ ભેદો આદરણીય નથી અર્થાત્ ‘હું પણું’ કરવા યોગ્ય નથી, તેથી અભૂતાર્થ છે) અને શુદ્ધનય ભૂતાર્થ છે (અર્થાત્ શુદ્ધનયનો વિષય અભેદરૂપ “શુદ્ધાત્મા” છે કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય હોવાથી આદરણીય છે - ભૂતાર્થ છે) એમ ઋષીશ્વરોએ દર્શાવ્યું છે, જે જીવ ભૂતાર્થનો (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માનો) આશ્રય કરે છે તે જીવ નિશ્ચયથી સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે.” અર્થાત્ કોઈપણ જીવ અભેદરૂપ શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરીને અને તેનું જ અનુભવન કરીને સમ્યગ્દ્રષ્ટિ થઈ શકે છે અન્યથા નહિ.

ગાથા ૧૧ ટીકા:- “વ્યવહારનય બધોય અભૂતાર્થ હોવાથી (ભેદરૂપ વ્યવહાર કે જે માત્ર આત્માના સ્વરૂપનું ગ્રહણ કરાવવા હસ્તાવલંબનરૂપ જાણીને પ્રરુખ્યો છે તે) અવિદ્યમાન, અસત્ય, અભૂત અર્થને પ્રગટ કરે છે. (એટલે કે જેવો અભેદ આત્મા છે તેવો તેનાથી અર્થાત્ વ્યવહાર રૂપ ભેદથી વર્ણવાતો નથી).... આ વાત દષ્ટાંતથી બતાવીએ છીએ:- (દ્રષ્ટાંતમાં જીવને = આગમોમાં વર્ણવ્યા અનુસાર પાંચભાવ સહિત બતાવી તેમાંથી ઉપાદેય એવો જીવ કે જે ચારભાવોને ગૌણ કરતાં જ પંચમભાવરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ પ્રગટ થાય છે કે જે ‘સમયસાર’ જેવા આધ્યાત્મિક શાસ્ત્રનો પ્રાણ છે તેને ગ્રહણ કરાવે છે.) જેમ પ્રબળ કાદવના મળવાથી (પ્રબળ ઉદય-ક્ષયોપશમ ભાવ સહિત) જેનો સહજ એક નિર્મળભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) તિરોભૂત (આચ્છાદિત) થઈ ગયો છે એવા જળનો અનુભવ કરાવનાર (અજ્ઞાની) પુરુષો - જળ અને કાદવનો વિવેક નહીં કરનાર ઘણા તો, તેને (જળને = જીવને) મલિન જ અનુભવે છે (ઉદય ક્ષયોપશમ રૂપ જ અનુભવે છે); પણ કેટલાંક (જ્ઞાની) પોતાના હાથથી નાખેલા કતકફળ (નિર્મળી ઔષધિ = બુદ્ધિરૂપી-પ્રજ્ઞાછીણી)ના પડવામાત્રથી ઉપજેલા જળ-કાદવના વિવેકપણાથી (એટલે કાદવ જળમાં હોવા છતાં જળને સ્વચ્છ અનુભવી શકનાર = આત્મા વર્તમાનમાં ઉદય, ક્ષયોપશમ રૂપે પરિણમેલ હોવા છતાં તેમાં છુપાએલ એટલે કે ઉદય અને ક્ષયોપશમ ભાવને ગૌણ કરતાં જ જે ભાવ પ્રગટ થાય છે તે અર્થાત્ ઉદય અને ક્ષયોપશમ ભાવ જેનો બનેલ છે તે અર્થાત્ એક સહજ આત્મ પરિણમનરૂપ-પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્માને), પોતાના પુરુષાર્થ દ્વારા આવિર્ભૂત કરવામાં આવેલા સહજ એક નિર્મળભાવપણાને (પરમપારિણામિકભાવને) લીધે, તેને (જળને = આત્માને) નિર્મળ જ અનુભવે છે, એવી રીતે પ્રબળ કર્મના મળવાથી જેનો સહજ એક જ્ઞાયકભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) તિરોભૂત થઈ ગયો છે એવા આત્માનો અનુભવ કરનાર પુરુષો (અજ્ઞાનીઓ) - આત્મા અને કર્મનો વિવેક નહિ કરનારા, વ્યવહારથી વિમોહિત હૃદયવાળાઓ તો, તેને (આત્માને) જેમાં ભાવોનું વિશ્વરૂપપણું (અનેકરૂપપણું) પ્રગટ છે એવો અનુભવે છે, પણ ભૂતાર્થદર્શીઓ (શુદ્ધનયને દેખનારાઓ = જ્ઞાનીઓ) પોતાની બુદ્ધિથી નાખેલા શુદ્ધનય (પ્રજ્ઞાછીણી) અનુસાર બોધ થવામાત્રથી ઉપજેલા આત્મા-કર્મના વિવેકપણાથી (ભેદજ્ઞાનથી), પોતાના પુરુષાર્થ દ્વારા આવિર્ભૂત કરવામાં આવેલા સહજ એક જ્ઞાયકભાવપણાને (પરમપારિણામિકભાવને) લીધે તેને (આત્માને) જેમાં એક જ્ઞાયકભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) પ્રકાશમાન છે એવો અનુભવે છે....”

ભાવાર્થમાં પંડિતજીએ સમજાવેલું છે કે- જીવને ‘જેમ છે તેમ’ સર્વનયથી નિર્ણય કરી સમ્યક એકાંતરૂપ શુદ્ધ જાણવો (‘હું’પણું કરવું), નહીં કે એકાંતે અપરિણામી એવો શુદ્ધ જાણવો. તેથી તો મિથ્યાદર્શનનો જ પ્રસંગ આવે છે કારણ કે જિનવાણી સ્યાદ્વાદરૂપ છે. પ્રયોજનવશ નયને મુખ્ય - ગૌણ કરીને કહે છે જેમકે મલિન પર્યાયને ગૌણ કરતાં જ શુદ્ધભાવરૂપ પરમપારિણામિકભાવ હાજર જ છે, નહીં કે પર્યાયને ભૌતિક રીતે અલગ કરીને. કારણ અભેદ દ્રવ્યમાં ભૌતિક રીતે પર્યાયને અલગ કરવાની વ્યવસ્થા જ નથી તેથી વિભાવભાવને ગૌણ કરતાં જ (પર્યાય રહિતનું દ્રવ્ય) પરમપારિણામિકભાવરૂપ અભેદ-અખંડ આત્માનું ગ્રહણ થાય છે, આ જ સમ્યગ્દર્શનની વિધિ છે.

ગાથા ૧૨ ગાથાર્થ:- “પરમભાવના (શુદ્ધાત્માના) દેખનારાઓને (અનુભવનારાઓને) તો શુદ્ધ (આત્મા) નો ઉપદેશ કરનાર શુદ્ધનય જાણવાયોગ્ય છે (અર્થાત્ શુદ્ધનયના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્માનો જ આશ્રય કરવા યોગ્ય છે કારણ કે તેના આશ્રયથી જ શ્રેણી માંડી ને તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ ધાતી કર્મોનો નાશ કરે છે અને કેવળી થાય છે), વળી જે જીવો અપરમભાવે સ્થિત છે (અર્થાત્ મિથ્યાત્વી છે) તેઓ વ્યવહાર દ્વારા (અર્થાત્ ભેદરૂપ વ્યવહારદ્વારા વસ્તુ સ્વરૂપ સમજાવી તત્ત્વોનો નિર્ણય કરાવવા) ઉપદેશ કરવા યોગ્ય છે.”

ભાવાર્થમાં પંડિત જયચંદ્રજી જણાવે છે કે- “જે કોઈ જીવ કે જે અપરમભાવે સ્થિત છે (અજ્ઞાની છે) તે વ્યવહાર છોડે (ભેદરૂપ અને વ્યવહાર ધર્મરૂપ બંને) અને તેને સાક્ષાત્ શુદ્ધોપયોગની પ્રાપ્તિ તો થઈ નથી (અર્થાત્ નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થયેલ નથી) તેથી ઉલટો અશુભ ઉપયોગમાં જ આવી, ભ્રષ્ટ થઈ, ગમે તેમ સ્વેચ્છરૂપે (સ્વેચ્છંદે) પ્રવર્તે તો નરકાદિ ગતિ તથા પરંપરા નિગોદને પ્રાપ્ત થઈ સંસારમાં જ ભ્રમણ કરે છે.”

અત્રે સમજવાનું એ છે કે આત્મા અજ્ઞાન અવસ્થામાં ૨૪ કલાક કર્મનો બંધ કરે જ છે જેથી કરીને કરુણાવંત આચાર્ય ભગવંતોએ જણાવેલ છે કે જ્યાં સુધી તત્ત્વનો નિર્ણય અને અનુભવ ન થાય ત્યાં સુધી તેનાં જ લક્ષે (શુદ્ધના જ એક માત્ર લક્ષે) નિયમથી શુભમાં જ રહેવા જેવું છે નહીં કે અશુભમાં કારણ કે અશુભથી તો દેવ-શાસ્ત્ર-ગુરુ રૂપ સંયોગ મળવા પણ કઠિન થઈ જાય એમ છે. આ વાતમાં જેનો વિરોધ હોય તે અમને માફ કરે કારણ કે આ વાત અમે કોઈપણ પક્ષ રહિત-નિષ્પક્ષભાવે જણાવેલ છે કે જે સર્વે આચાર્ય ભગવંતોએ પણ જણાવેલ છે અને જ્યાં-જ્યાં (જે પણ ગાથાઓમાં) આ વાતોનો સર્વથા નિષેધ કરવાનું જણાવેલ છે તે એક માત્ર શુદ્ધભાવનો લક્ષ કરાવવા જણાવેલ છે; નહીં કે અશુભ ભાવમાં રમવા માટે અને મુનિરાજને છઠ્ઠા ગુણસ્થાનકે આ વાતનો નિષેધ સાતમા ગુણસ્થાનરૂપ અભેદ આત્માનુભૂતિમાં સ્થિર થઈ આગળ વધીને કેવળજ્ઞાન અને મોક્ષ મેળવવા જણાવેલ છે, નહીં કે છઠ્ઠા ગુણસ્થાનકે સહજ હોતા શુભનો નિષેધ કરીને નીચે પાડવા-અર્થાત્ અવિરતિ અથવા અજ્ઞાની થવા.

આથી સર્વે મુમુક્ષુજનોને આ વાત યથાર્થ - ‘જેમ છે તેમ’ સમજવી અત્યંત આવશ્યક છે; અર્થાત્ સમજવાનું એ છે કે અહોભાવ માત્ર માત્ર શુદ્ધતાનો જ હોવો જોઈએ, શુભનો નહીં જ પણ જ્યાં સુધી શુદ્ધરૂપે નથી પરિણમતો ત્યાં સુધી રહેવાનું તો નિયમથી શુભમાં જ.

શ્લોક ૪:- “નિશ્ચય અને વ્યવહાર - એ બે નયોને વિષયના ભેદથી પરસ્પર વિરોધ છે, એ વિરોધને નાશ કરનારું ‘સ્યાત’ પદથી ચિન્હિત જે જિન ભગવાનનું વચન (વાણી) તેમાં જે પુરુષો રમે છે (પ્રચુર પ્રીતિ સહિત અભ્યાસ કરે છે અર્થાત્ બન્ને નયનો પક્ષ છોડીને મધ્યસ્થ રહે છે) તે પુરુષો પોતાની મેળે (અન્ય કારણ વિના) મિથ્યાત્વકર્મના ઉદ્દયનું વમન કરીને આ અતિશયરૂપ પરમજ્યોતિ પ્રકાશમાન શુદ્ધ આત્માને તુરંત દેખે જ છે. (અર્થાત્ કોણ દેખે છે ? તો કહે છે કે ‘સ્યાત’ વચનોમાં રમતો પુરુષ નહીં કે એકાંતનો આગ્રહી પુરુષ અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન કે જે સમ્યક એકાંત રૂપ હોવા છતાં આગ્રહતો એકાંતનો ન જ હોય, પ્રરૂપણા એકાંતની ન જ હોય. પ્રરૂપણા જેમ છે તેમ સ્યાત્ વચનો રૂપે જ હોય.) કેવો છે સમયસારરૂપ શુદ્ધ આત્મા ? નવીન ઉત્પન્ન થયો નથી, પહેલાં કર્મથી આચ્છાદિત હતો તે પ્રગટ વ્યક્તિરૂપ થઈ ગયો છે. (અર્થાત્ પહેલાં જે અજ્ઞાનીને ઉદ્દય-ક્ષયોપશમરૂપે અનુભવાતો હતો તે જ હવે જ્ઞાનીને ઉદ્દય-ક્ષયોપશમભાવો ગૌણ થઈ જતાં = કરતાં જ સમયસારરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = પરમજ્યોતિરૂપ પ્રગટ થાય છે = જણાય છે = અનુભવાય છે = વ્યક્તિરૂપ થાય છે) વળી કેવો છે ? સર્વથા એકાંતરૂપ કુનયના પક્ષથી ખંડિત થતો નથી, નિર્બાધ છે. (અર્થાત્ જેઓ સમ્યગ્દર્શન માટે સર્વથા એકાંતનયની પ્રરૂપણામાં રાચે છે તેઓને શુદ્ધાત્મા કદી જ પ્રાપ્ત થાય તેવો નથી એમ જ અત્રે જણાવેલ છે.)”

શ્લોક ૫:- ગાથા ૧૧ અને ૧૨ ને જ દ્રઢ કરાવે છે, કે જે ભેદરૂપ વ્યવહારનય છે તે અજ્ઞાનીને માત્ર સમજવવા માટે છે, પરંતુ તેમ ભેદરૂપ આત્મા છે નહીં. માટે આશ્રય તો અભેદ રૂપ આત્માનો = શુદ્ધાત્માનો કે જેમાં પરદ્રવ્યોથી થતાં ભાવોને ગૌણ કરેલ છે, તેનો જ કરવાનો છે. તે આત્મા જ ઉપાદેય છે અર્થાત્ દ્રવ્ય-પર્યાયરૂપ ભેદ અથવા પર્યાયના નિષેધરૂપ ભેદનો જેઓ આશ્રય કરે છે તેઓને અભેદ આત્માનો અણસાર પણ આવતો નથી અર્થાત્ તેઓ ભેદમાં જ રમે છે અર્થાત્ તેઓ વિકલ્પમાં જ રમે છે અને ભેદનો જ આદર કરે છે કારણ કે તેઓને નિષેધ વિનાનો દ્રષ્ટિનો વિષય જ માન્ય હોતો નથી, આવી છે કરુણાજનક પરિસ્થિતિ.

શ્લોક ૬:- અત્રે આચાર્ય ભગવંત જણાવે છે કે જે નવ તત્ત્વની પરિપાટી છે તેને છોડીને (અર્થાત્ ગૌણ કરીને) જોતા-તે ભાવને અનુભવતાં જ આત્મા પ્રાપ્ત થાય છે.

શ્લોક ૭:- માં આચાર્ય ભગવંત ગાથા ૧૩નો જ ભાવ વ્યક્ત કરે છે કે નવ તત્ત્વમાં વ્યાપ્ત એવી આત્મજ્યોતિ (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવ) નવ તત્ત્વોને ગૌણ કરતાં જ એક અખંડ આત્મજ્યોતિ (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવ) પ્રાપ્ત થાય છે.

ગાથા ૧૩ ગાથાર્થ:- “ભૂતાર્થ નયથી જાણેલ (અર્થાત્ અભેદ એવા શુદ્ધનયથી જાણેલ) જીવ, અજીવ વળી પુણ્ય, પાપ તથા આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ અને મોક્ષ -એ નવતત્ત્વ સમ્યક્ત્વ છે.”

અર્થાત્ અભેદ એવા શુદ્ધનયથી જે એમ જાણે છે કે આ સર્વે નવતત્ત્વરૂપ પરિણામેલ જીવ વિશેષ અપેક્ષાએ નવતત્ત્વરૂપ ભાસે છે, પણ અભેદ શુદ્ધનય દ્વારા આ નવતત્ત્વ જેના બનેલા છે તે એક માત્ર સામાન્યભાવરૂપ અર્થાત્ અભેદ શુદ્ધજીવત્વભાવરૂપ ‘શુદ્ધાત્મા’ જ છે અને તેવી રીતે જે નવતત્ત્વને જાણે છે તેને જ સમ્યગ્દર્શન છે અર્થાત્ તે જ સમ્યક્ત્વ છે; આ ગાથા ‘સમયસાર’ના સારરૂપે છે. સર્વ અધિકારોનો ઉલ્લેખ આ ગાથામાં કરી સર્વે અધિકારોના સારરૂપે સમ્યગ્દર્શન રૂપ આત્માનું સ્વરૂપ સમજાવેલ છે.

ગાથા ૧૩ ટીકા:- “આ જીવાદિ નવ તત્ત્વો ભૂતાર્થનયથી જાણ્યે સમ્યગ્દર્શન જ છે. (એ નિયમ કહ્યો) (ભૂતાર્થનયથી એટલે કે અભેદનયથી = આ જીવાદિ નવ તત્ત્વોરૂપે આત્મા જ પરિણામે છે તેથી તે નવ તત્ત્વોને ગૌણ કરતાં જ શુદ્ધાત્માની પ્રાપ્તિ થાય છે = સમ્યગ્દર્શન થાય છે); કારણ કે તીર્થની (વ્યવહારધર્મની) પ્રવૃત્તિ અર્થે અભૂતાર્થ (વ્યવહાર) નયથી (આ નવ તત્ત્વો) કહેવામાં આવે છે (એટલે કે જે જીવ અપરમભાવે સ્થિત છે - અજ્ઞાની છે તેને મ્લેચ્છની ભાષામાં એટલે કે આગમની ભાષામાં જીવને ઉદય-ઉપશમ-ક્ષયોપશમ-ક્ષાયિક-પારિણામિક એવા પાંચ ભાવરૂપે રૂપવવામાં આવે છે) એવા આ નવ તત્ત્વો-જેમના લક્ષણ જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ અને મોક્ષ છે-તેમનામાં એકપણું પ્રગટ કરનાર ભૂતાર્થનયથી એકપણું પ્રાપ્ત કરી (અર્થાત્ તે સર્વે તત્ત્વો રૂપે જે આત્મા પરિણામેલ છે તે બાહ્ય નિમિત્તના ભાવ અથવા અભાવથી પરિણામેલ છે તે નવ તત્ત્વોરૂપ પરિણામેલ એવા આત્મામાં વિશેષ ભાવોને ગૌણ કરતાં જ, એક અભેદ એવો સહજ પરિણામનરૂપ આત્મા કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ છે = સમયસારરૂપ છે તે પ્રાપ્ત થાય છે તેને પ્રાપ્ત કરતાં જ), શુદ્ધનયપણે સ્થપાયેલા આત્માની અનુભૂતિ-કે જેનું લક્ષણ આત્મખ્યાતિ છે-તેની પ્રાપ્તિ હોય છે (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનરૂપ - સમયસારરૂપ આત્માની પ્રાપ્તિ હોય છે.) (અર્થાત્ શુદ્ધનયથી નવતત્ત્વને જાણવાથી આત્માની અનુભૂતિ થાય છે તે હેતુથી આ નિયમ કહ્યો). ત્યાં, વિકારી થવા યોગ્ય (આત્મા) અને વિકાર કરનાર (કર્મો)-એ બંને પુણ્ય છે..., કારણ કે એકને જ (આત્માને) પોતાની મેળે (સ્વભાવથી) પુણ્ય, પાપ, આસ્રવ, સંવર, નિર્જરા, બંધ, મોક્ષની ઉપપત્તિ (સિદ્ધિ-તે ભાવરૂપ આત્માનું પરિણામવું) બનતી નથી. તે બંને જીવ (ભાવકર્મ) અને અજીવ (દ્રવ્યકર્મ) છે (અર્થાત્ તે બબ્બેમાં એક જીવ છે ને બીજું અજીવ છે).

બાહ્ય (સ્થૂલ) દ્રષ્ટિથી જોઈએ તો:- જીવ-પુદ્ગલના અનાદિ બંધપર્યાયની સમીપ જઈને એકપણે અનુભવ કરતાં આ નવ તત્ત્વો ભૂતાર્થ છે, સત્યાર્થ છે, (એટલે કે આગમમાં નિરૂપિત પાંચ ભાવ યુક્ત જીવમાં આ નવ તત્ત્વો ભૂતાર્થ છે, સત્યાર્થ છે), અને એક જીવદ્રવ્યના સ્વભાવ (‘સ્વ’નો ભાવ = ‘સ્વ’નું

સહજપરિણમનરૂપભાવ = પરમપારિણામિકભાવ = કારણશુદ્ધપર્યાય = કારણશુદ્ધ પરમાત્મારૂપભાવ)ની સમીપ જઈને અનુભવ કરતાં તેઓ અભૂતાર્થ છે. અસત્યાર્થ છે. ('સમયસાર' જેવા અધ્યાત્મ ગ્રંથમાં નિરૂપિત શુદ્ધાત્મારૂપ જીવમાં તેઓ અભૂતાર્થ છે, અસત્યાર્થ છે.) (જીવનાં એકાકાર સ્વરૂપમાં તેઓ નથી) તેથી આ નવ તત્ત્વોમાં ભૂતાર્થનયથી એક જીવ જ પ્રકાશમાન છે..." આ જ ગાથાનાં ભાવ શ્લોક ૮માં વિશેષ રૂપે સમજાવેલ છે.

શ્લોક ૮:- “આ રીતે નવ તત્ત્વોમાં ઘણા કાળથી છુપાયેલી આ આત્મજ્યોતિને (અર્થાત્ આત્માના ઉદય-ક્ષયોપશમરૂપ જે ભાવો છે તે સર્વે જીવોને અનાદિના હોય છે અને જે જીવ અજ્ઞાની છે તે, તે જ ભાવોમાં રમે છે છતાં પણ દરેક જીવમાં અનાદિથી પરમપારિણામિકભાવરૂપ છુપાયેલી આત્મજ્યોતિ મૌઠૂદ જ હોય છે, હાજર જ હોય છે. માત્ર ઉદય-ક્ષયોપશમરૂપ ભાવોને ગૌણ કરીને તેનું લક્ષ કરતાં જ તે પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ તે નવતત્ત્વને ગૌણ કરતાં જ, જે સામાન્ય જીવત્વભાવ શેષ રહે છે તે ત્રણે કાળે શુદ્ધ હોવાથી કહ્યું છે કે નવતત્ત્વમાં ઘણાં કાળથી છુપાયેલી આત્મજ્યોતિને), જેમ વર્ણોના સમૂહમાં છુપાયેલા એકાકાર સુવર્ણને બહાર કાઢે તેમ (અર્થાત્ અશુદ્ધાત્મામાંથી અશુદ્ધિ ને ગૌણ કરતાં જ, તેમાં છુપાયેલ એકાકાર = અભેદ શુદ્ધાત્મા સાક્ષાત્ થાય છે તેમ), શુદ્ધનયથી (અર્થાત્ ઉપર કહ્યા પ્રમાણે અશુદ્ધ ભાવોને ગૌણ કરતાં જ) બહાર કાઢી પ્રગટ કરવામાં આવી છે. માટે હવે હે ભવ્ય જીવો ! હંમેશા આને અન્ય દ્રવ્યોથી (અર્થાત્ પુદ્ગલરૂપ કર્મ-નોકર્મથી) તથા તેમનાથી થતાં નૈમિત્તિક ભાવોથી(અર્થાત્ ઔદયિક ભાવોથી) ભિન્ન (અર્થાત્ અમે પૂર્વે જે બે પ્રકારે ભેદજ્ઞાન કરવાનું જણાવ્યું છે તેમ); એકરૂપ દેખો. આ (જ્યોતિ = પરમપારિણામિકભાવ), પદે-પદે અર્થાત્ પર્યાયે પર્યાયે એકરૂપ ચિત્યમત્કારમાત્ર ઉદ્યોતમાન છે. (અર્થાત્ દરેક પર્યાયમાં પૂર્ણ જીવ વ્યક્ત થતો જ હોવાથી અર્થાત્ પર્યાયમાં પૂર્ણ દ્રવ્ય હોવાથી જ આમ જણાવેલ છે. અર્થાત્ પર્યાય જ વર્તમાન જીવ દ્રવ્ય છે, એમ જે અમે પૂર્વે જણાવેલ છે તે જ સમજ અત્રે દ્રઢ થાય છે.)”

અત્રે એ સમજવું જરૂરી છે કે આગમ અને અધ્યાત્મમાં જરાય વિરોધ નથી કારણ કે આગમથી જીવનું સ્વરૂપ 'જેમ છે તેમ' સમજીને અર્થાત્ જીવને સર્વે નયથી જાણીને અધ્યાત્મરૂપ શુદ્ધનય વડે ગ્રહણ કરતાં જ સમ્યગ્દર્શન રૂપ આત્મજ્યોતિ પ્રગટ થાય છે, પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ પર્યાયમાં વિશેષભાવને ગૌણ કરતાં જ એકરૂપ-અભેદરૂપ ચિત્યમત્કારમાત્ર જ્યોતિ અર્થાત્ સામાન્યભાવરૂપ પરમપારિણામિકભાવ હાજર જ છે કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને તેમાં જ 'હું પણું' કરતાં સ્વાત્માનુભૂતિ પ્રગટ થઈ શકે છે; આ જ સમ્યગ્દર્શનની રીત છે.

શ્લોક ૯:- “આચાર્ય શુદ્ધનયનો અનુભવ કરી કહે છે કે-આ સર્વ ભેદોને ગૌણ કરનાર જે શુદ્ધનય (એટલે કે જીવમાં ભેદરૂપ-દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય-ઉત્પાદ-વ્યય-ધ્રુવ અથવા ઉદય-ઉપશમ-ક્ષયોપશમરૂપ

ભાવોને ગૌણ કરીને પરમપારિણામિકભાવરૂપ, સમયસારરૂપ શુદ્ધનય)નો વિષયભૂત ચૈતન્ય-ચમત્કારમાત્ર (જ્ઞાનમાત્ર = પરમપારિણામિકભાવમાત્ર) તેજઃપુંજ આત્મા, તેનો અનુભવ થતાં નયોની લક્ષ્મી ઉદય પામતી નથી, (અર્થાત્ સર્વે નયો વિકલ્પરૂપ જ છે જ્યારે પરમપારિણામિકભાવ સર્વે વિશેષભાવ રહિત હોવાથી અર્થાત્ તેમાં કોઈ જ વિકલ્પ ન હોવાથી તેમાં નયો-નિક્ષેપો-સ્વ-પરરૂપ ભાવો નથી. ત્યાં માત્ર એક અભેદભાવમાં જ ‘હું’પણું છે, તેથી) પ્રમાણ અસ્તને પ્રાપ્ત થાય છે. અને નિક્ષેપોનો સમૂહ ક્યાં જતો રહે છે તે અમે જાણતાં નથી. આથી અધિક શું કહીએ? દ્વૈત જ પ્રતિભાસિત થતું નથી. (સ્વાત્માનુભૂતિના કાળમાં માત્ર હુંનો જ આનંદ-વેદન હોય છે ત્યાં સ્વ-પર રૂપ કોઈ દ્વૈત હોતું જ નથી.)”

શ્લોક ૧૦:- “શુદ્ધનય આત્માના સ્વભાવને પ્રગટ કરતો (‘સ્વ’ના ભવન રૂપ = સ્વનું સહજ પરિણામનરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ પ્રગટ કરતો) ઉદયરૂપ થાય છે. તે આત્મસ્વભાવને કેવો પ્રગટ કરે છે ? (એટલે કે તે પ્રગટ કરેલો આત્મસ્વભાવ કેવો છે ?) પરદ્રવ્ય, પરદ્રવ્યનાં ભાવો તથા પરદ્રવ્યનાં નિમિત્તથી થતાં પોતાના વિભાવો-એવા પરભાવોથી ભિન્ન કરે છે. (અર્થાત્ પરદ્રવ્યતો પ્રગટ ભિન્ન છે તેથી તેની સાથે તેના લક્ષણથી ભેદજ્ઞાન કરે છે અને પરદ્રવ્યનાં નિમિત્તથી થતાં પોતાના જે વિભાવો છે તે જીવરૂપ છે તેથી તે વિભાવોને ગૌણ કરે છે અને વિભાવોમાં ધૂપાયેલી આત્મજ્યોતિને મુખ્ય કરે છે) વળી તે, આત્મસ્વભાવ સમસ્તપણે પૂર્ણ છે-સમસ્ત લોકાલોકને જાણનાર છે-એમ પ્રગટ કરે છે; (અત્રે સમજવાનું એ છે કે પરમપારિણામિક ભાવ રૂપ આત્માનું એટલે કે જ્ઞાનનું લક્ષણ-જ્ઞાનનો સ્વભાવ પ્રતિબિંબ રૂપે પરને ઝળકાવવાનો છે તે પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં અરીસાની જેમ સ્વચ્છત્વરૂપ પરિણામન હાજર જ છે અને જ્ઞાનનો સ્વભાવ લોકાલોકને ઝળકાવવાનો છે તેથી કરીને જ તે ‘જ્ઞાન’ નામ પામે છે અન્યથા નહિ. તે જ્ઞેયરૂપ ઝલકનને ગૌણ કરતાં જ ત્યાં જ્ઞાનમાત્રરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = જ્ઞાયક હાજર જ છે. તેથી કરી ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો જ નથી’ એવી પ્રરૂપણા કરીને આત્માનાં લક્ષણનો અભાવ કરવાથી આત્માનો જ અભાવ થાય છે.) વળી તે, આત્મસ્વભાવને આદિ-અંતથી રહિત પ્રગટ કરે છે (પરમપારિણામિકભાવ તે આત્માનો અનાદિ અનંત ‘સ્વ’ ભવન રૂપ ‘સ્વ’ભાવ છે અને તે ત્રિકાળ શુદ્ધ હોવાથી તેને આદિ-અંતથી રહિત કહ્યો છે) વળી તે આત્મસ્વભાવને એક-સર્વ ભેદભાવોથી (દ્વૈતભાવોથી) રહિત એકાકાર-પ્રગટ કરે છે. (સર્વ પ્રકારના ભેદરૂપભાવો જેવા કે - દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાય, જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર, નિષેધરૂપ સ્વ-પરરૂપ ભાવોથી રહિત પ્રગટ કરે છે.) અને જેમાં સમસ્ત સંકલ્પ-વિકલ્પના સમૂહો વિલય થઈ ગયા છે એવો પ્રગટ કરે છે. (અર્થાત્ ઉદય, ક્ષયોપશમ ભાવોને ગૌણ કરતાં જ પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્મામાં કોઈ જ સંકલ્પ-વિકલ્પ, નય-પ્રમાણ-નિક્ષેપો વગેરે રહેતાં જ નથી-એવો આત્મા પ્રગટ કરે છે.) આવો શુદ્ધનય પ્રકાશરૂપ થાય છે.”

ગાથા ૧૪ ગાથાર્થ:- “જે નય આત્માને બંધ રહિત ને પરના સ્પર્શ રહિત, અન્યપણા રહિત, ચળાચળતા રહિત, વિશેષ રહિત (અર્થાત્ વિશેષને ગૌણ કરતાં જ જે એક સામાન્યભાવરૂપ અર્થાત્

પરમપારિણામિકભાવરૂપ જીવ છે તે અર્થાત્ અન્યના લક્ષે થવા વાળા સર્વે ભાવો કે જે વિશેષ છે, તેનાથી રહિત જ હોય છે), અન્યના સંયોગ રહિત - એવા પાંચ ભાવરૂપ દેખે છે તેને, હે શિષ્ય! તું શુદ્ધનય જાણ..” અર્થાત્ જેમ અમે પૂર્વે સમજાવ્યું તેમ સર્વે પરદ્રવ્ય તથા પરદ્રવ્યના લક્ષથી થવાવાળા આત્માનાભાવોથી (તેને ગૌણ કરીને) ભેદજ્ઞાન કરવાથી શુદ્ધનયરૂપ અર્થાત્ અભેદ એવો પંચમભાવરૂપ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય પ્રાપ્ત થાય છે.

ગાથા ૧૪ ટીકા:- “નિશ્ચયથી અબદ્ધ-અસ્પૃષ્ટ (આત્માના ઉદય, ઉપશમ, ક્ષયોપશમ અને ક્ષાયિક એવા ચાર ભાવોથી અબદ્ધ-અસ્પૃષ્ટ), અનન્ય (છતાં આત્માના પરિણામન = પર્યાયથી અનન્ય પરમપારિણામિકભાવરૂપ = કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ), નિયત (નિયમથી ગુણોના પરિણામનરૂપ), અવિશેષ (જેમાં વિશેષરૂપ ચારેય ભાવોનો અભાવ છે એવો, સામાન્ય પરિણામનરૂપ-સહજ પરિણામનરૂપ) અને અસંયુક્ત (કે જે ઉપર કહ્યા તેવા ચાર ભાવોથી સંયુક્ત નથી - તે ચાર ભાવોને ગૌણ કરતાં જ શુદ્ધનયનો આત્મા પ્રાપ્ત થાય છે તેવો અસંયુક્ત) એવા આત્માની જે અનુભૂતિ તે શુદ્ધનય છે, અને એ અનુભૂતિ આત્મા જ છે, એ રીતે આત્મા એક જ પ્રકાશમાન છે...”

શ્લોક ૧૧:- “જગતના પ્રાણીઓ એ સમ્યક સ્વભાવનો અનુભવ કરો કે જ્યાં આ બદ્ધસ્પૃષ્ટ આદિ ભાવો (ઉપર કહ્યાં તે ચાર ભાવો) સ્પૃષ્ટપણે તે સ્વભાવ ઉપર તરે છે (એટલે કે તે ભાવો થાય છે તો આત્માના પરિણામમાં જ અર્થાત્ આત્મામાં જ) તો પણ (તેઓ પરમપારિણામિકભાવમાં) પ્રતિષ્ઠા પામતા નથી, કારણ કે દ્રવ્યસ્વભાવ (દ્રવ્યરૂપ આત્માના ‘સ્વ’નું ભવનરૂપ ‘સ્વ’ભાવ) તો નિત્ય છે (એટલે કે એવો ને એવો જ થાય છે), એકરૂપ છે (અનન્યરૂપ છે, અભેદ છે ત્યાં કોઈ ભેદ નથી) અને આ ભાવો (એટલે કે અન્ય ચાર ભાવો) અનિત્ય છે, અનેકરૂપ છે, પર્યાયો (ચાર ભાવરૂપ પર્યાયો-વિભાવભાવ) દ્રવ્ય સ્વભાવમાં પ્રવેશ કરતા નથી, ઉપર જ રહે છે (તે ચાર ભાવ પરમપારિણામિકભાવરૂપ દ્રવ્યસ્વભાવમાં પ્રવેશ પામતાં જ નથી કારણ કે પરમપારિણામિકભાવરૂપ દ્રવ્યસ્વભાવ સામાન્યભાવરૂપ છે તેથી તેમાં વિશેષભાવનો તો અભાવ જ હોય છે અર્થાત્ વિશેષભાવો દ્રવ્ય સ્વભાવમાં પ્રવેશ કરતા નથી, ઉપર જ રહે છે) આ શુદ્ધ સ્વભાવ (‘સ્વ’ના ભવનરૂપ = પરમપારિણામિકભાવ) સર્વ અવસ્થાઓમાં પ્રકાશમાન છે. (આત્મામાં ત્રણેકાળ છે એટલે જ ત્રિકાળી શુદ્ધ ભાવો કહેવાય છે) એવા શુદ્ધ સ્વભાવનો, મોહ રહિત થઈને જગત અનુભવ કરો; કારણ કે મોહકર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન મિથ્યાત્વરૂપ અજ્ઞાન જ્યાં સુધી રહે છે ત્યાં સુધી એ અનુભવ યથાર્થ થતો નથી..”

શ્લોક ૧૨:- “જો કોઈ સુબુદ્ધિ (એટલે કે જેને તત્ત્વોનો નિર્ણય થયો છે તેવો કે જે સમ્યગ્દર્શન પામવાની પૂર્વની પર્યાયોમાં સ્થિત છે તેવો) ભૂત, વર્તમાન અને ભાવિ એવા ત્રણે કાળના (કર્મોના) બંધને પોતાના આત્માથી તત્કાળ-શીઘ્ર ભિન્ન કરીને (અર્થાત્ કર્મોરૂપી પુદ્ગલોને પોતાથી ભિન્ન જાણી-જડ જાણી પોતાને ચેતનરૂપ અનુભવીને) તથા તે કર્મના ઉદયના નિમિત્તથી થયેલ મિથ્યાત્વ (અજ્ઞાન)ને પોતાના

બળથી (પુરુષાર્થથી) રોકીને અથવા નાશ કરીને (ઉપર શ્લોક ૧૧માં જણાવ્યા પ્રમાણે ચાર ભાવોને ગૌણ કરીને, પોતાને પરમપારિણામિકભાવરૂપ અનુભવતાં જ મિથ્યાત્વ ઉપશમ, ક્ષયોપશમ અથવા ક્ષયને પામે છે અર્થાત્ પોતાને ત્રિકાળી શુદ્ધ ભાવરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ જાણવા/અનુભવવારૂપ પુરુષાર્થ કરે અર્થાત્) અંતરંગમાં અભ્યાસ કરે - દેખે તો આ આત્મા પોતાના અનુભવથી જ જણાવાયોગ્ય જેનો પ્રગટ મહિમા છે એવો વ્યક્ત (અનુભવગોચર), ધ્રુવ (નિશ્ચલ), શાશ્વત, નિત્ય કર્મકલંક-કર્દમથી રહિત (પરમપારિણામિકભાવરૂપ) એવો પોતે સ્તુતિ કરવા યોગ્ય દેવ વિરાજમાન છે.”

શ્લોક ૧૩:- “એ રીતે જે પૂર્વકથિત શુદ્ધનયસ્વરૂપ આત્માની અનુભૂતિ છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ છે) તે જ ખરેખર જ્ઞાનની અનુભૂતિ છે એમ જાણીને (અર્થાત્ જે આત્માની અનુભૂતિ છે તે જ જ્ઞાનની અનુભૂતિ છે, તે બંનેમાં કોઈ જ ભેદ નથી) તથા આત્મામાં, આત્માને નિશ્ચળ સ્થાપીને (અર્થાત્ તે શુદ્ધાત્માનું નિશ્ચળ-એકાગ્રપણે ધ્યાન કરીને) ‘સદા સર્વ તરફ એક જ્ઞાનઘન આત્મા છે’ એમ દેખવું.” અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્મા છે તેને જ્ઞાન અપેક્ષાએ જ્ઞાનઘન, જ્ઞાનમાત્ર, જ્ઞાનસામાન્ય, વગેરે અનેક નામોથી ઓળખાય છે, અત્રે વિશેષ એટલું જ કે જે ગુણથી શુદ્ધાત્માને જોવામાં આવે તે ગુણમય જ પૂર્ણપણે શુદ્ધાત્મા જણાય છે અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં કોઈ ભેદ જ નથી.

ગાથા ૧૫ ગાથાર્થ:- “જે પુરુષ આત્માને અબદ્ધસ્પૃષ્ટ (અર્થાત્ કોઈપણ જાતના બંધ વગરનો શુદ્ધ અને જેમાં સર્વ વિભાવભાવ અત્યંત ગૌણ થઈ ગયેલ હોવાથી, વિભાવભાવથી નહિ સ્પર્શાયેલો એવો કે જેને સમ્યક એકાંતરૂપ પણ કહેવાય છે તેવો), અનન્ય (તે પોતે નિરંતર પોતાના રૂપમાં જ પરિણમતો હોવાથી અન્યરૂપ નહિ થતો અર્થાત્ તેના સર્વ ગુણોના સહજ પરિણમનયુક્ત પરમપારિણામિકભાવરૂપ), અવિશેષ (અર્થાત્ સર્વ વિશેષ જેમાં ગૌણ થઈ ગયા હોવાથી, માત્ર સામાન્યરૂપ અર્થાત્ જે ઔદૈયિકાદિ ચાર ભાવો છે તે વિશેષ છે પરંતુ આ પરમ-પારિણામિકભાવરૂપ પંચમભાવ સામાન્યભાવરૂપ હોવાથી વિશેષ રહિત હોય છે. જેમ આપણે પૂર્વે જોયું તેમ, તે વિશેષભાવો સામાન્યનાં જ બનેલા હોય છે અર્થાત્ જીવ એક પારિણામિકભાવરૂપ જ હોય છે, પરંતુ વિશેષમાં જે કર્મના ઉદયનિમિત્તે ભાવો થાય છે, તે અપેક્ષાએ તે પારિણામિકભાવ જ ઔદૈયિક વગેરે નામ પામે છે અને તે ઔદૈયિકાદિ ભાવોનો સામાન્ય અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવમાં અભાવ હોવાથી તેને અવિશેષ) દેખે છે તે સર્વ જિનશાસનને દેખે છે (અર્થાત્ જેણે એક આત્મા જાણ્યો તેણે સર્વ જાણ્યું) - કે જે જિનશાસન, બાહ્ય-દ્રવ્ય શ્રુત તેમ જ અભ્યંતર-જ્ઞાનરૂપ ભાવશ્રુતવાળું છે.”

ગાથા ૧૭-૧૮ ગાથાર્થ:- “જેમ કોઈ ઘનનો અર્થી પુરુષ (તેમ કોઈ આત્માનો અર્થી પુરુષ) રાજાને જાણીને શ્રદ્ધા કરે છે (અર્થાત્ જીવરાજરૂપ શુદ્ધાત્માને જાણીને શ્રદ્ધા કરે છે), ત્યારબાદ તેનું પ્રયત્નપૂર્વક અનુચરણ કરે છે (અર્થાત્ તે શુદ્ધાત્માનો પ્રયત્નપૂર્વક અનુભવ કરવાનો પુરુષાર્થ કરે છે) અર્થાત્ સુંદર રીતે સેવા કરે છે (અર્થાત્ તેનું જ વારંવાર મનન-ચિંતન-ધ્યાન-અનુભવન કરે છે), એવી

જ રીતે મોક્ષની ઇચ્છાવાળાએ જીવરૂપી રાજાને જાણવો, પછી એ રીતે જ તેનું શ્રદ્ધાન કરવું અને ત્યાર બાદ તેનું અનુચરણ કરવું અર્થાત્ અનુભવ વડે તન્મય થઈ જવું.”

ગાથા ૩૫ ગાથાર્થ:- “જેમ લોકમાં કોઈ પુરુષ પરવસ્તુને ‘આ પરવસ્તુ છે’ એમ જાણે ત્યારે એવું જાણીને પરવસ્તુને ત્યાગે છે, તેવી રીતે જ્ઞાની સર્વ પરદ્રવ્યોના ભાવોને, ‘આ પરભાવ છે’ તેમ જાણીને તેમને છોડે છે.”

અર્થાત્ પૂર્વે જ્ઞેયું તેમ પર ના લક્ષે થતાં પોતાના ભાવમાં જ્ઞાનીને ‘હું પણું’ ન હોવાથી તેને છોડે છે એમ કહેવાય છે અર્થાત્ તે પરલક્ષે થતાં ભાવને જ્ઞાની પોતાની નબળાઈ સમજે છે અને કોઈપણ જીવ પોતાની નબળાઈને પોષવા ઇચ્છે નહિ જ, તેમ જ્ઞાની પણ તે પરલક્ષે થતાં ભાવોને ઇચ્છતો નથી અને તેથી જ તેનાથી છૂટવાના પ્રયત્નો આદરે છે અર્થાત્ શક્તિ અનુસાર ચારિત્ર ગ્રહણ કરે છે; આવું છે જૈનસિદ્ધાંતનું અનેકાંતમય જ્ઞાન.

ગાથા ૩૬ ગાથાર્થ:- “એમ જાણે કે, ‘મોહ સાથે મારો કાંઈ પણ સંબંધ નથી, એક ઉપયોગ છે તે જ હું છું’ (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનના વિષયમાં મોહરૂપ વિભાવભાવ નહિ હોવાથી, જ્યારે જ્ઞાની શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરે છે ત્યારે તે માત્ર તેટલો જ છે તેને કોઈ વિભાવભાવ સાથે કોઈ સંબંધ નથી અર્થાત્ તેને એક માત્ર સામાન્ય ઉપયોગરૂપ જ્ઞાયકભાવમાં જ ‘હું પણું’ હોવાથી, તેનો ત્યારે મોહ સાથે કોઈ સંબંધ નથી, એક શુદ્ધાત્મા છે તે જ હું છું) - એવું જે જાણવું તેને સિદ્ધાંતના અથવા સ્વપરના સ્વરૂપના જાણનારા મોહથી નિર્મમત્વ કહે છે.” અર્થાત્ જ્ઞાનીને મોહમાં ‘હુંપણું’ અને ‘મારાપણું’ નથી, તેથી જ્ઞાનીને નિર્મમત્વ છે.

ગાથા ૩૭ ગાથાર્થ:- “દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ પરિણામેલો આત્મા (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ સહજ દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ પરિણામન કરતો ભાવ કે જે શુદ્ધાત્મા છે, તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતો એવો સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ) એમ જાણે છે કે:- નિશ્ચયથી હું એક છું (અર્થાત્ તે અભેદનો જ અનુભવ કરે છે), શુદ્ધ છું (અર્થાત્ એક માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ હોવાથી હું શુદ્ધ છું એમ અનુભવે છે), દર્શનજ્ઞાનમય છું (અર્થાત્ માત્ર જાણવા-જ્ઞેવા વાળો જ છું), સદા અરૂપી છું (અર્થાત્ કોઈપણ રૂપી દ્રવ્યમાં અને તેના થકી થતાં ભાવોમાં ‘હું પણું’ નહિ હોવાથી પોતાને માત્ર અરૂપી જ અનુભવે છે); કાંઈ પણ અન્ય પરદ્રવ્ય પરમાણુ માત્ર પણ મારું નથી એ નિશ્ચય છે.”

શ્લોક ૩૮:- “આ જ્ઞાનસમુદ્ર ભગવાન આત્મા (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર શુદ્ધાત્મા) વિભ્રમરૂપ આડી આદરને સમૂળગી ડુબાડી દઈને (અર્થાત્ શુદ્ધનયે કરી, સર્વ વિભાવભાવને અત્યંત ગૌણ કરી, પર્યાયને દ્રવ્યમાં અંતર્ગત કરી લે છે અર્થાત્ શુદ્ધદ્રવ્યાયાર્થિકનયે કરી શુદ્ધાત્મામાં જ દ્રષ્ટિ કરીને) પોતે સર્વાંગ પ્રગટ થયો છે (અર્થાત્ એવો શુદ્ધાત્માનો અનુભવ થયો છે); તેથી હવે આ સમસ્ત લોક (અર્થાત્

સમસ્ત વિકલ્પરૂપ લોક-વિભાવરૂપ લોક) તેનાં શાંત રસમાં (અર્થાત્ અતિંદ્રિય આનંદરૂપ અનુભૂતિમાં) એકીસાથે જ અત્યંત મગ્ન થાઓ (અર્થાત્ પોતાને નિર્વિકલ્પ અનુભવે છે તે) કેવો છે શાંત રસ (અર્થાત્ અતિંદ્રિય આનંદ)? સમસ્ત લોક પર્યંત ઉછળી રહ્યો (અર્થાત્ અમાપ, અનહદ, ઉત્કૃષ્ટ) છે.” આવી છે આત્માની અનુભૂતિ કે જે અમે અનેકવેળા અનુભવીએ છીએ અને તે સર્વે મુમુક્ષુજનોને પ્રાપ્ત થાય એમ ઈચ્છીએ છીએ.

આ રીતે સમ્યગ્દર્શનની સિદ્ધિ થતાં, અહીં જ સમયસાર પુરું થઈ જાય છે; હવે પછીનો જે વિસ્તાર છે તે તો માત્ર વિસ્તારરુચિ જીવોને, વિસ્તારથી આ જ ‘શુદ્ધાત્મા’માં ‘હું પણું’ કરાવી ને, સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ અર્થે, વિસ્તારથી ભેદજ્ઞાન સમજાવેલ છે. અર્થાત્ આ જીવ અનાદિથી જે નવ તત્ત્વોરૂપ અલગ અલગ વેશે પરિણમીને અને પરમાં કર્તાભાવને પોષીને છેતરાય છે, તે છેતરામણને છતી કરીને, તે છેતરામણ દૂર કરાવવા માટે ઘણાં વિસ્તારથી, સર્વે ભાવો સાથે ભેદજ્ઞાન કરાવેલ છે. કોઈએ એમ ન સમજવું કે નવ તત્ત્વોરૂપ ભાવો એકાંતે જીવના નથી અર્થાત્ આ નવ તત્ત્વોરૂપ ભાવો છે તો જીવના જ પરંતુ તેમાં ‘હું પણું’ કરવા લાયક આ ભાવો નથી, તે અપેક્ષાએ તેને જીવના નથી એમ કહ્યું છે અને તેને તે રીતે જ સમજવું અતિ આવશ્યક છે; જો કોઈ એકાંતે એમ કહે કે આ નવ તત્ત્વોરૂપ ભાવો મારા ભાવ જ નથી, તો તે ભ્રમરૂપ પરિણમીને અનંત સંસાર વધારનાર બનશે. તેથી કરી જે અપેક્ષાએ જ્યાં જે કહ્યું હોય તે જ અપેક્ષાથી ત્યાં તે સમજવું અને તેમ જ આચરવું અત્યંત આવશ્યક છે, અન્યથા તો સ્વચ્છંદે ભ્રમરૂપ પરિણમીને પોતાને જ્ઞાની માનતો તે જીવ પોતાનું અને અન્ય અનેકનું અહિત કરતો, પોતે તો ભ્રષ્ટ છે જ અને અન્ય અનેકોને પણ ભ્રષ્ટ કરશે.



૩૭

સમયસારના અધિકારોનું વિહંગાવલોકન

હવે અમે વિસ્તારરુચિ જીવો માટે સમયસાર શાસ્ત્રના સર્વે અધિકારોનું વિહંગાવલોકન કરીશું; જેમાં સર્વે અધિકારોનો માત્ર સાર જ જણાવીશું, માટે વિસ્તારરુચિ જીવોએ ઉપરોક્ત પૂર્વરંગમાં વિસ્તારથી જણાવેલ ભાવ અનુસાર અને સર્વે અધિકારોના અત્રે જણાવેલ સાર અનુસાર તે સર્વે અધિકારોનો અભ્યાસ કરવો, અન્યથા નહિ અર્થાત્ સ્વચ્છંદે નહિ કારણ કે સ્વચ્છંદ જ આપણા અત્યાર સુધીના અનંત સંસારનું કારણ છે કે જેને હવે પછી ક્યારેય પોષવો નહિ એવી અમારી સર્વે જનોને નમ્ર વિનંતિ છે.

૧. જીવ અજીવ અધિકાર :- આ અધિકાર જીવને, અજીવરૂપ કર્મ-નોકર્મ અને તેનાં લક્ષે થતાં પોતાના વિભાવભાવોથી ભેદજ્ઞાન કરાવવા અર્થે છે અર્થાત્ તે સર્વે ભાવો જેવાકે- રસ, ગંધ, સ્પર્શ, શરીર, સંસ્થાન, સંહનન, રાગ, દ્વેષ, મોહ, મિથ્યાત્વ, કર્મ, પર્યામિ, વર્ગ, વર્ગણા, સ્પર્ધકો, અધ્યાત્મસ્થાન, અનુભાગસ્થાન, મન-વચન કાયાનાં યોગો, બંધસ્થાનો, ઉદયસ્થાનો, માર્ગણા, સ્થિતિબંધ સ્થાન, સંકલેશ સ્થાનો, વિશુદ્ધિસ્થાનો, જીવસ્થાનો વગેરે જીવને નથી, એમ કહ્યું છે; અત્રે પ્રશ્ન થાય કે તે ભાવો જીવને કેમ નથી?

ઉત્તર- તે ભાવો બે પ્રકારના છે, એક તો પુદ્ગલરૂપ છે અને બીજા જીવના વિશેષભાવરૂપ છે; તેમાં જે પુદ્ગલરૂપ છે તે તો જીવથી પ્રગટ ભિન્ન જ છે અને જે જીવના વિશેષભાવરૂપ છે તે ભાવોમાં ‘હું પણું’ કરવા જેવું ન હોવાથી અર્થાત્ તે સર્વ ભાવોથી ભિન્ન એવો ‘‘શુદ્ધાત્મા’’ એ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય હોવાની અપેક્ષાએ, શુદ્ધાત્મારૂપ જીવરાજમાં આ ભાવો નથી, તેમ કહ્યું છે. આવું સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા અર્થે કહ્યું છે અન્યથા નહિ, એકાંતે નહિ, તેથી જેમ છે તેમ સમજીને માત્ર શુદ્ધાત્મા કે જે આ સર્વે ભાવોથી ભિન્ન છે, તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતાં, સ્વાત્માનુભૂતિપૂર્વક સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થઈ શકે છે અને ત્યાર પછી જ જ્ઞાન મધ્યસ્થ થતાં અર્થાત્ પ્રમાણરૂપ થતાં જ જીવને જેમ છે તેમ જાણે છે અને વિવેકે કરી આત્મસ્થિરતારૂપ પુરુષાર્થપૂર્વક સર્વ કર્મનો ક્ષય કરવા પ્રત્યે કાર્યરત થાય છે અર્થાત્ સર્વ કર્મનો ક્ષય કરવા વ્રત-તપ-ધ્યાનરૂપ પુરુષાર્થ આદરે છે, આ જ મોક્ષમાર્ગ છે અર્થાત્ આ જ વિધિ છે મોક્ષપ્રાપ્તિની.

શ્લોક ૪૩:- ‘‘આમ પૂર્વોક્ત જુદાં લક્ષણને લીધે જીવથી અજીવ ભિન્ન છે તેને (અજીવને) તેની

મેળે જ વિલસતું-પરિણમતું જ્ઞાની પુરુષ અનુભવે છે, તો પણ અજ્ઞાનીને અમર્યાદપણે ફેલાયેલો મોહ (અનંતાનુબંધી ચતુષ્ટયરૂપ) કેમ નાચે છે- એ અમને મહા આશ્ચર્ય અને ખેદ છે!” અર્થાત્ આચાર્ય ભગવંતને અજ્ઞાની ઉપર પરમ કરુણાભાવ વર્તે છે, ઉપજે છે.

શ્લોક ૪૪:- “આ અનાદિ કાળના મોટા અવિવેકના નાટકમાં અથવા નાચમાં વર્ણાદિમાન પુદ્ગલ જ નાચે છે (પરિણમે છે), અન્ય કોઈ નહિ (શુદ્ધાત્મા નહિ), અને આ જીવતો (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા) રાગાદિક પુદ્ગલવિકારોથી વિલક્ષણ (ભિન્ન), શુદ્ધ ચૈતન્યઘાતુમય મૂર્તિ (અર્થાત્ જ્ઞાનઘન) છે.” અર્થાત્ આવો જીવ જ અનુભવવાનો છે અર્થાત્ આવો જીવ જ સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે.

શ્લોક ૪૫:- “આ પ્રમાણે જ્ઞાનરૂપી કરવતનો (અર્થાત્ તીવ્રબુદ્ધિ થી ભેદજ્ઞાન કરવાનો) જે વારંવાર અભ્યાસ (અર્થાત્ વારંવાર ભેદજ્ઞાનનો અભ્યાસ કરવા જેવો છે) તેને નચાવીને (અર્થાત્ તેનાથી ભેદજ્ઞાન કરીને) જ્યાં જીવ અને અજીવ બંને પ્રગટપણે જુદા ન થયા (અર્થાત્ તે ભેદજ્ઞાનરૂપી કરવતથી અર્થાત્ પ્રજ્ઞાછીણીથી જેવો અજીવરૂપ કર્મ-નોકર્મ અને તેના લક્ષે થયેલ સર્વ ભાવોથી ભિન્ન પોતે અર્થાત્ ‘શુદ્ધાત્મા’ પ્રગટભિન્ન છે, એવો અનુભવ થવાથી અર્થાત્ પોતાની આ અજીવરૂપ કર્મ-નોકર્મ અને તેના લક્ષે થયેલ સર્વ ભાવોથી પ્રગટભિન્ન અનુભૂતિ થતાં જ) ત્યાં તો જ્ઞાતાદ્રવ્ય (અર્થાત્ જ્ઞણવાવાળો-શુદ્ધાત્મા), અત્યંત વિકાસરૂપ થતી પોતાની પ્રગટ (અર્થાત્ પ્રગટ અનુભૂતિસ્વરૂપ) ચિન્માત્રશક્તિ વડે વિશ્વને વ્યાપીને (અર્થાત્ કૃતકૃત્ય થઈને અતિદ્રિય આનંદરૂપ પરિણમીને અને સ્વવિશ્વને વ્યાપીને), પોતાની મેળે જ (અર્થાત્ સહજ) અતિ વેગથી ઉગ્રપણે અર્થાત્ અત્યંતપણે પ્રકાશી નીકળ્યું (અર્થાત્ એવું સહજ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થઈ ગયું કે જે સ્વત્માનુભૂતિરૂપ સત-ચિત-આનંદ સ્વરૂપ છે).”

૨. કર્તા-કર્મ અધિકાર :- જીવનો બીજો વેશ કર્તા-કર્મરૂપ છે. જીવ અન્યનો કર્તા થાય છે કે જેને તે ઉપાદાનરૂપે પરિણમાવવાને શક્તિમાન જ નથી અર્થાત્ સર્વે દ્રવ્યો પોતાના ઉપાદાનથી જ પોતાની પરિણતી કરે છે અર્થાત્ પોતાનું કાર્ય કરે છે-પરિણમે છે, તેમાં અન્ય દ્રવ્ય નિમિત્ત માત્ર જ હોય છે.

બીજું, સમ્યગ્દર્શન માટે જે માત્ર પોતાના ભાવ હોય તે જ અર્થાત્ ‘સ્વ’ભાવ હોય તેમાં જ ‘હું પણું’ કરવાનું હોવાથી અને તે સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ ‘સ્વ’ભાવ, માત્ર સામાન્યભાવરૂપ જ હોવાથી તે નિષ્ક્રિયભાવ જ હોય છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ ‘સ્વ’ભાવમાં ઉદય-ક્ષયોપશમરૂપ કર્તા-કર્મભાવ કે જે વિશેષભાવ છે તે ન હોવાથી, નિમિત્ત તથા તેના લક્ષે થયેલ વિશેષભાવોનો તેમાં નકાર જ હોય છે અર્થાત્ નિમિત્તનો જ નકાર હોય છે, તે કારણથી અને તે અપેક્ષાએ પણ નિમિત્ત ને પરમ અકર્તા કહેવાય છે.

પરંતુ જો નિમિત્ત ને કોઈ એકાંતે અકર્તા માને અને સ્વચ્છંદે નબળા નિમિત્તો નું જ સેવન કરે તો તે જીવ અનંત સંસારી થઈ, અનંત દુઃખને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ વિવેક એવો છે કે- જીવ સર્વ ખરાબ

નિમિત્તોથી બચીને, શાસ્ત્ર સ્વાધ્યાય વગેરે સારા નિમિત્તોનું સેવન કરીને, ત્વરાએ મોક્ષમાર્ગમાં આગળ વધે છે; નહિ કે એકાંતે નિમિત્તને અકર્તા માનીને, સ્વચ્છંદે સર્વ નબળા નિમિત્તોને સેવતો, અનંત સંસારી અર્થાત્ અનંત દુઃખી થાય છે.

વિવેકીજન જાણે છે કે “માત્ર નિમિત્તથી કાંઈ જ થતું નથી અને નિમિત્ત વગર પણ કાંઈ જ થતું નથી” અર્થાત્ સ્વનું સમ્યગ્દર્શનરૂપ જે પરિણમન છે તે માત્ર નિમિત્ત મળવાથી થશે, એમ નહિ પરંતુ તેના અર્થે પોતે પોતાનો-ઉપાદાન રૂપ પુરુષાર્થ આદરે તો જ થશે અર્થાત્ સર્વેજનોએ સમ્યગ્દર્શન અર્થે નિયતિ વગેરે કારણો સામે ન જોતાં, પોતાનો પુરુષાર્થ તે દિશામાં ફોરવવો અતિ આવશ્યક છે.

ખીજું, વિવેકી જીવ સમજે છે કે જે પોતાના ભાવો બગડે છે તે, તેવાં નિમિત્તો મળતાં બગડે છે; એમ જાણી, ખરાબ નિમિત્તો થી તે નિરંતર દૂર જ રહેવાનો પ્રયત્ન કરે છે, જેમ કે બ્રહ્મચર્ય અને આત્મધ્યાન માટે, ભગવાને એકાંતવાસનું સેવન કરવા જણાવેલ છે. આવો છે વિવેક નિમિત્ત-ઉપાદાન રૂપ સંબંધનો, તેથી તેને તે પરિપેક્ષમાં જ સમજવો, અન્યથા નહિ; અત્રે સમ્યગ્દર્શન કરાવવા અર્થાત્ પર ઉપરથી દ્રષ્ટિ હટાવવાને માટે નિમિત્ત ને પરમ અકર્તા કહ્યું છે, અન્યથા નહિ.

શ્લોક ૬૯:- “જેઓ નયપક્ષપાતને છોડી (અર્થાત્ અમે પૂર્વે અનેકવાર જણાવ્યા અનુસાર જેને કોઈપણ એક નયનો આગ્રહ હોય અથવા તો કોઈ મત-પંથ-વ્યક્તિવિશેષરૂપ પક્ષનો આગ્રહ હોય અને જેઓ તેવા પૂર્વાગ્રહ-હઠાગ્રહ છોડી શકે છે તેઓ) સ્વરૂપમાં ગુમ્મ થઈને (અર્થાત્ સ્વમાં અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરીને સમ્યગ્દર્શન રૂપ પરિણમીને) સદા રહે છે તેઓ જ (અર્થાત્ નય અને પક્ષને છોડે છે તેવા મુમુક્ષુ જીવો જ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરી શકે છે અને તેઓ જ), જેમનું ચિત્ત વિકલ્પમળોથી રહિત શાંત થયું છે એવા થયા થકા (અર્થાત્ નિર્વિકલ્પ ‘શુદ્ધાત્મા’ નો અનુભવ કરતાં થકા), સાક્ષાત્ અમૃતને (અર્થાત્ અનુભૂતિરૂપ અતિન્દ્રિય આનંદને) પીએ છે (અર્થાત્ અનુભવે છે).” અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ અર્થે સર્વે જનોએ નય અને પક્ષનો આગ્રહ છોડવા જેવો છે.

શ્લોક ૭૦:- “એ પ્રમાણે જેમાં બહુ વિકલ્પોની જાળો આપોઆપ ઊઠે છે એવી મોટી નયપક્ષકક્ષાને (નયના આગ્રહને-પક્ષને) ઓળંગી જઈને (તત્ત્વવેદી = સમ્યગ્દર્શની થઈને) અંદર અને બહાર (અર્થાત્ પૂર્ણ આત્મામાં) સમતા-રસરૂપી એક રસ જ જેનો સ્વભાવ છે એવા અનુભૂતિમાત્ર એક પોતાના ભાવને (પરમપારિણામિકભાવરૂપ શુદ્ધાત્માને) પામે છે.”

શ્લોક ૭૧:- “અચળ (અર્થાત્ ત્રણે કાળે એવું ને એવું જ પરિણમતું), વ્યક્ત (અનુભવપ્રત્યક્ષ) અને ચિત્તશક્તિઓના સમૂહના ભારથી અત્યંત ગંભીર (અર્થાત્ માત્ર જ્ઞાનધનરૂપ) આ જ્ઞાનજ્યોતિ (અર્થાત્ જ્ઞાનસામાન્યભાવરૂપ જ્ઞાયક = શુદ્ધાત્મા) અંતરંગમાં ઉગ્રપણે એવી રીતે જાળવલ્યમાન થઈ કે-આત્મા અજ્ઞાનમાં (પરનો) કર્તા થતો હતો તે હવે કર્તા થતો નથી (અર્થાત્ પરનું કર્તાપણું ધારણ કરતાં

ભાવમાં એકત્વ કરતો નથી) અને અજ્ઞાનના નિમિત્તે પુદ્ગલ કર્મરૂપ થતું હતું તે કર્મરૂપ થતું નથી (અર્થાત્ અજ્ઞાન નિમિત્તે જે બંધ થતો હતો તે, અજ્ઞાન જતાં જ, તેના નિમિત્તે થતો બંધ પણ હવે નથી); વળી જ્ઞાન જ્ઞાનરૂપ જ રહે છે (અર્થાત્ જ્ઞાની પોતાને સામાન્યજ્ઞાનરૂપ શુદ્ધાત્મા જ અનુભવે છે કે જે ત્રિકાળ જ્ઞાનરૂપ જ રહે છે) અને પુદ્ગલ પુદ્ગલરૂપ જ રહે છે (અર્થાત્ જ્ઞાની પુદ્ગલને પુદ્ગલરૂપ અને તેનાથી થતાં ભાવોને પણ તે રૂપ જ જાણી, તેમાં ‘હું પણું’ કરતા નથી અર્થાત્ જ્ઞાની આવી રીતે ભેદજ્ઞાન કરે છે).’ આ રીતે સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કરે છે.

(૩) પુણ્ય-પાપ અધિકાર :- આ અધિકારમાં પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા માટે, જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્મા છે તેમાં, બંધરૂપ કોઈ જ ભાવો ન હોવાથી અર્થાત્ તેમાં સર્વે વિભાવભાવનો અભાવ હોવાથી, બંધ માત્ર ભાવ અર્થાત્ શુભભાવ અને અશુભભાવ, તે બંને (દ્રષ્ટિના વિષયમાં) નથી એમ જણાવવા બંને ને એક સમાન કહ્યાં છે. અર્થાત્ પુણ્ય અને પાપ અર્થાત્ શુભભાવ અને અશુભભાવ સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ પરમપારિણામિકભાવરૂપ-સહજ પરિણમનરૂપ શુદ્ધાત્મામાં ન હોવાથી, બંને સમાન અપેક્ષાએ હેય છે અર્થાત્ બંને વિભાવભાવ હોવાથી-બંધરૂપ હોવાથી એક સમાન હેય છે.

અહીં કોઈએ એકાંતે તેમ ન સમજવું કારણ કે અશુભભાવે પરિણમવાનો કદી કોઈ ઉપદેશ હોય જ નહિ, પરંતુ અત્રે જણાવ્યા અનુસાર સમ્યગ્દર્શન કરાવવા, બંને ભાવોથી ભેદજ્ઞાન કરાવ્યું છે અને ભેદજ્ઞાનની અપેક્ષાએ બંને સમાન જ છે નહિ કે અન્યથા.

જો કોઈ અન્યથા પુણ્યને હેય સમજીને અથવા તો પુણ્ય-પાપને સમાન રૂપે હેય સમજીને, સ્વચ્છંદે પાપરૂપ અર્થાત્ અશુભ ભાવે પરિણમતા હોય, તેમાં જ રાચતા હોય તો તે, તેઓને મહા અનર્થનું કારણ છે. જો કોઈ આવી રીતથી એકાંતે સમજીને, આવી જ રીતે એકાંતે પ્રતિપાદન કરતું હોય તો, તે પોતે તો ભ્રષ્ટ છે જ અને અન્ય અનેકોને પણ ભ્રષ્ટ કરી રહ્યા છે; અર્થાત્ જૈન સિદ્ધાંતમાં વિવેકની જ બોલ-બાલા છે. અર્થાત્ સર્વ કથન જે અપેક્ષાએ કહ્યું હોય તે જ અપેક્ષાથી ગ્રહણ કરવું જોઈએ, તે જ વિવેક છે; માટે સર્વ મોક્ષાર્થીઓએ પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિના લક્ષે નિયમથી શુભમાં જ રહેવા યોગ્ય છે, આ જ જિનસિદ્ધાંતનો સાર છે તેથી કરી અત્રે જણાવ્યા અનુસાર જ અર્થાત્ વિવેકપૂર્વક જ સર્વજન સમ્યગ્દર્શન ને પામે છે અને વિવેકપૂર્વક જ નિર્વાણને પામે છે.

ગાથા ૧૫૧ ગાથાર્થ:- “નિશ્ચયથી જે પરમાર્થ છે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ-સહજ પરિણમનરૂપ શુદ્ધાત્મા છે), સમય છે, શુદ્ધ છે, કેવળી છે, મુનિ છે, જ્ઞાની છે, તે સ્વભાવમાં (શુદ્ધાત્મામાં) સ્થિત મુનિઓ નિર્વાણને પામે છે.”

ગાથા ૧૫૨ ગાથાર્થ:- “પરમાર્થમાં અસ્થિત (અર્થાત્ મિથ્યાદ્રષ્ટિ) એવો જે જીવ તપ કરે છે તથા

વ્રત ધારણ કરે છે, તેનાં તે સર્વ તપ અને વ્રતને સર્વજ્ઞો બાળતપ અને બાળવ્રત કહે છે.” અર્થાત્ આ બાળતપ અને બાળવ્રત છોડવાનું નથી કહેતાં પરંતુ તેનાથી પણ પરમ ઉત્કૃષ્ટ એવું આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રોત્સાહિત કરે છે અને જે પરમાર્થમાં સ્થિત છે તેને તો નિયમથી આગળ વ્રત-તપ વગેરે આવે જ છે; આવો છે જિન સિદ્ધાંતનો વિવેક કે જે આત્માને ઉપર ચડવા જ કહે છે, નહિ કે અન્યથા અર્થાત્ વ્રત-તપ છોડી નીચે પડવા ક્યારેય જણાવતો નથી.

શ્લોક ૧૧૧:- “કર્મનયના આલંબનમાં તત્પર (અર્થાત્ કર્મનયના પક્ષપાતી અર્થાત્ કર્મને જ સર્વસ્વ માનનારા) પુરુષો ડૂબેલા છે કારણ કે તેઓ જ્ઞાનને જાણતાં નથી (અર્થાત્ જ્ઞાનરૂપ આત્માની અર્થાત્ પોતાની શક્તિમાં વિશ્વાસ નથી પરંતુ કર્મની અર્થાત્ પરની શક્તિમાં વિશ્વાસ છે). જ્ઞાનનયના ઇચ્છક પુરુષો પણ ડૂબેલા છે (કારણ કે તેઓને એકાંતે જ્ઞાનનો જ પક્ષ હોવાથી તેઓ કર્મને કાંઈ વસ્તુ જ માનતાં નથી અને એકાંતે નિશ્ચયાભાસીરૂપે પરિણમે છે) કારણ કે તેઓ સ્વચ્છંદથી અતિ મંદ-ઉદમી છે (કારણ કે તેઓ નિશ્ચયાભાસી હોવાથી, પુણ્ય અને પાપને સમાનરૂપે હેય અર્થાત્ સર્વ અપેક્ષાએ હેય અર્થાત્ એકાંતે હેય માનતાં હોવાથી, કોઈ જ પુરુષાર્થ ન કરતાં, એકાંતે સમજે છે અને તેમ જ બોલે છે કે “હું તો જ્ઞાનમાત્ર જ છું” અને રાચે છે સંસારમાં, અર્થાત્ આત્મજ્ઞાન માટેનો યોગ્યતા વગેરેરૂપ અભ્યાસ પણ નિયતિવાદીઓની જેમ નથી કરતાં કારણ કે તેઓ માને છે કે- આત્મજ્ઞાન માટેની યોગ્યતા તો એના કાળે આવી જ જશે; આ રીતે પોતાને જ્ઞાનમાત્ર માનતાં અને તેવા જ ભ્રમમાં રહેતા હોવાથી, ધર્મમાં યોગ્યતા કરવા માટે મંદ ઉદમી છે અને તેથી તેઓ વિષય કષાયમાં વિના સંકોચે વર્તતા હોય છે). (હવે યથાર્થ સમજણાયુક્ત જીવની વાત છે કે જે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે) તે જીવો વિશ્વના ઉપર તરે છે (અર્થાત્ વિશ્વની અન્ય કોઈ વસ્તુમાં જેમનું ‘હું પણું’ અને ‘મારા પણું’ નથી તેથી તેમાં તેઓને કોઈ જ લગાવ નથી તેથી તે જીવો વિશ્વના ઉપર તરે છે) કે જેઓ પોતે નિરંતર જ્ઞાનરૂપ થતા-પરિણમતા થકા (અર્થાત્ પોતાને પરમપારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ સહજ પરિણમન-રૂપ અર્થાત્ સામાન્યજ્ઞાનરૂપ અનુભવતા થકા) કર્મ કરતાં નથી (અર્થાત્ કોઈપણ કર્મ અથવા તેના નિમિત્તે થતાં ભાવમાં ‘હું પણું’ અને ‘મારા પણું’ કરતાં નથી, કર્તાબુદ્ધિ પોષતા નથી) અને ક્યારેય પ્રમાદને વશ પણ થતાં નથી (અર્થાત્ બુદ્ધિપૂર્વક સ્વમાં રહેવાનો સતત પુરુષાર્થ કરે છે).”

(૪) આસ્રવઅધિકાર :- આ અધિકારમાં પણ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા માટે અર્થાત્ ભેદજ્ઞાન કરાવવા માટે, જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્મા છે તેમાં આસ્રવરૂપ ભાવ ન હોવાથી અર્થાત્ તેમાં સર્વે વિભાવભાવનો અભાવ હોવાથી કહ્યું છે કે- જ્ઞાનીને આસ્રવ નથી. અર્થાત્ જ્ઞાનીને આસ્રવભાવ રૂપ જે પોતાનું પરિણમન છે તેમાં ‘હું પણું’ હોતું નથી અને તેમાં કર્તાપણું પણ નથી કારણ કે જ્ઞાની તે ભાવરૂપ સ્વેચ્છાએ પરિણમતા નથી પરંતુ બળજબરી પૂર્વક અર્થાત્ નબળાઈને કારણે પરિણમતા હોવાથી કર્તા પણું નથી.

જ્ઞાનીને અલ્પ આસ્રવ થાય છે ખરો, પરંતુ જ્ઞાનીને અનંતાનુબંધી કષાયો અને મિથ્યાત્વનો આસ્રવ ન હોવાથી પણ, જ્ઞાની ને આસ્રવ નથી એમ કહ્યું છે; પરંતુ જો કોઈ આ વાત એકાંતે ગ્રહણ કરી સ્વચ્છંદે આસ્રવભાવોનું સેવન કરે અથવા કોઈ પોતાને જ્ઞાની સમજીને, સ્વચ્છંદે આસ્રવભાવો નું સેવન કરે તો, તે તેને મહા અનર્થનું કારણ છે અર્થાત્ જો કોઈ આવી રીતથી એકાંતે સમજીને, આવી જ રીતે એકાંતે પ્રતિપાદન કરતું હોય તો, તે પોતે તો ભ્રષ્ટ છે જ અને અન્ય અનેકો ને ભ્રષ્ટ કરી રહ્યો છે. અર્થાત્ જૈન સિદ્ધાંતમાં વિવેકની જ પ્રધાનતા છે અર્થાત્ સર્વ કથન જે અપેક્ષાએ કહ્યું હોય તે જ અપેક્ષાથી ગ્રહણ કરવું જોઈએ, તે જ વિવેક છે; માટે સર્વ મોક્ષાર્થીઓએ પૂર્વે જણાવ્યા અનુસાર એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિના લક્ષે નિયમથી આસ્રવના કારણોથી દૂર જ રહેવા યોગ્ય છે, આ જ જિનસિદ્ધાંતનો સાર છે.

શ્લોક ૧૧૬:- “આત્મા જ્યારે જ્ઞાની થાય ત્યારે, પોતે પોતાના સમસ્ત બુદ્ધિપૂર્વક રાગને નિરંતર છોડતો થકો અર્થાત્ નહિ કરતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞાનીને અભિપ્રાયમાં માત્ર મુક્તિ હોઈને કોઈપણ રાગરૂપ પરિણમવાની અંશમાત્ર પણ ઇચ્છા હોતી નથી) વળી જે અબુદ્ધિપૂર્વક રાગ છે તેને પણ જીવવાને વારંવાર (જ્ઞાનાનુભવનરૂપ) સ્વશક્તિને સ્પર્શતો થકો અને (એ રીતે) સમસ્ત પરવૃત્તિને-પરપરિણતીને ઉખેડતો (અર્થાત્ અપૂર્વ નિર્જરા કરતો) જ્ઞાનના પૂર્ણભાવરૂપ થતો થકો, ખરેખર સદા નિરાસ્રવ છે.”

અર્થાત્ આવી છે જ્ઞાનની સાધના:- પોતે માત્ર શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરતો અને તેની જ અનુભૂતિ કરતો, બુદ્ધિપૂર્વક અર્થાત્ પ્રયત્નપૂર્વક અર્થાત્ પૂર્ણ જાગૃતિપૂર્વક, જે પણ ઉદ્દય આવે છે તેની સામે લડે છે અર્થાત્ ઉદ્દયથી પરાસ્ત થયા વગર અર્થાત્ ઉદ્દયમાં ભળ્યા વગર, પોતે શુદ્ધાત્મામાં જ વારંવાર સ્થિરતાનો પ્રયત્ન કરે છે અને જો તેવી સ્થિરતા અંતરમુહૂર્તથી અધિક થઈ જાય, તો જ્ઞાની સર્વ ધાતીકર્મો નો નાશ કરી કેવળી થઈ જાય છે અને પછી કાળે કરી મુક્ત થઈ જાય છે; આવો છે મોક્ષમાર્ગ.

શ્લોક ૧૨૦:- “ઉદ્ધત જ્ઞાન (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર) જેનું લક્ષણ છે એવા શુદ્ધનયમાં રહીને અર્થાત્ શુદ્ધનયનો આશ્રય કરીને જેઓ સદાય એકાગ્રપણાનો જ અભ્યાસ કરે છે (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરી, તેનો જ અનુભવ કરી, તેમાં જ સ્થિરતાનો અભ્યાસ કરે છે) તેઓ, નિરંતર રાગાદિથી રહિત ચિત્તવાળા વર્તતા થકા (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મામાં રાગાદિનો કણિયો પણ નથી અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતા થકા), બંધરહિત એવા સમયસારને (અર્થાત્ પોતાના શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપને) દેખે છે- અનુભવે છે.”

શ્લોક ૧૨૨:- “અહીં આ જ તાત્પર્ય છે કે (અર્થાત્ આ અધિકારનો આ જ ઉદ્દેશ છે કે) શુદ્ધનય ત્યાગવાયોગ્ય નથી (અર્થાત્ માત્ર શુદ્ધનયમાં જ રહેવા જેવું છે કારણ કે તેમાં આસ્રવ થતો નથી); કારણ કે તેના અત્યાગથી (કર્મનો) બંધ થતો નથી અને તેના ત્યાગથી બંધ જ થાય છે.”

શ્લોક ૧૨૩:- “ધીર (ચળાયળતા રહિત) અને ઉદાર (સર્વ પદાર્થોમાં વિસ્તારયુક્ત અથવા પૂર્ણ આત્મરૂપ) જેનો મહિમા છે એવા અનાદિનિધન જ્ઞાનમાં (અર્થાત્ ત્રિકાળી શુદ્ધ જ્ઞાન કે જે

પરમપારિણામિકભાવરૂપ જ્ઞાન સામાન્ય માત્ર છે તેમાં) સ્થિરતા બાંધતો (અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણ’ કરતો અને તેનું જ અનુભવન કરતો) શુદ્ધનય- કે જે કર્મોને મૂળથી નાશ કરનારો છે તે- પવિત્ર ધર્મી (સમ્યગ્દ્રષ્ટિ) પુરુષોએ કદી પણ છોડવા યોગ્ય નથી (અર્થાત્ નિરંતર ગ્રહવા યોગ્ય છે અર્થાત્ તેમાં જ સ્થિરતા કરવા જેવી છે, તેનું જ ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે). શુદ્ધનયમાં સ્થિત તે પુરુષોએ (અર્થાત્ સ્વત્માનુભૂતિમાં સ્થિત પુરુષોએ), બહાર નીકળતા એવાં પોતાનાં જ્ઞાનકિરણોના સમૂહને (અર્થાત્ કર્મના નિમિત્તે પરમાં જતી જ્ઞાનની વિશેષ વ્યક્તિઓને) અલ્પ કાળમાં સમેટીને, પૂર્ણ, જ્ઞાનધનના પુંજરૂપ (માત્ર જ્ઞાનધનરૂપ), એક, અચળ, શાંત તેજને-તેજ:પુંજને દેખે છે અર્થાત્ અનુભવે છે.”

(પ) સંવર અધિકાર :- આ અધિકારમાં આચાર્ય ભગવંત જણાવે છે કે જે સમ્યગ્દર્શન છે અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ છે અને તેમાં જ સ્થિરતા છે, તે જ સાક્ષાત્ સંવર છે. તે કારણે આ અધિકારમાં પણ આચાર્ય ભગવંત આત્માના ઔદયિક ભાવોથી ભેદજ્ઞાન કરાવી જીવોને પરમપારિણામિકભાવરૂપ આત્માના સહજપરિણામનરૂપ શુદ્ધાત્મામાં જ સ્થાપે છે અને કહે છે કે તે શુદ્ધાત્માનું વેદન, અનુભવન અને સ્થિરતા જ નિશ્ચયથી સંવરનું કારણ છે; તેથી અજ્ઞાની ને કાર્યકારી સંવર નથી, જ્યારે જ્ઞાનીને તે સહજ જ હોય છે. જેમ કે -

શ્લોક ૧૨૯:- “આ સાક્ષાત્ (સર્વ પ્રકારે) સંવર ખરેખર શુદ્ધ આત્મતત્ત્વની ઉપલબ્ધિથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનથી) થાય છે; અને તે શુદ્ધ આત્મતત્ત્વની ઉપલબ્ધિ ભેદવિજ્ઞાનથી જ થાય છે. માટે તે ભેદવિજ્ઞાન અત્યંત ભાવવા યોગ્ય છે.” અર્થાત્ એક માત્ર ભેદ-વિજ્ઞાનનો જ પુરુષાર્થ કાર્યકારી છે.

શ્લોક ૧૩૦:- “આ ભેદવિજ્ઞાન અવિચ્છિનધારાથી (અર્થાત્ જેમાં વિચ્છેદ-વિક્ષેપ ન પડે એવા અખંડ પ્રવાહરૂપે) ત્યાં સુધી ભાવવું કે જ્યાં સુધી પરભાવોથી છૂટી જ્ઞાન જ્ઞાનમાં જ ઠરી જાય” અર્થાત્ કેવળી બનતા સુધી આજ ભેદ-જ્ઞાનનો અભ્યાસ નિરંતર કરવા યોગ્ય છે.

શ્લોક ૧૩૧:- “જે કોઈ સિદ્ધ થયા છે તે ભેદ-વિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થયા છે; જે જોઈ બંધાયા છે તે તેના (ભેદ-વિજ્ઞાનના) જ અભાવથી બંધાયા છે”

અર્થાત્ ભેદ-વિજ્ઞાન જૈન સિદ્ધાંતનો સાર છે અને તેને માટે જ આ “સમયસાર”નામનું પૂર્ણ શાસ્ત્ર રચાયું છે; તેથી “સમયસાર”માં સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા આત્માને સમ્યગ્દર્શનના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મા રૂપે જ ગ્રહણ કરેલ છે અને અન્યભાવોથી ભેદજ્ઞાન કરાવેલ છે.

(૬) નિર્જરા અધિકાર :- આ અધિકારમાં આચાર્ય ભગવંત જણાવે છે કે જે સમ્યગ્દર્શન છે અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્માની અનુભૂતિ અને તેમાં સ્થિરતા છે તે જ સાક્ષાત્ નિર્જરા છે, અન્યથા નહિ. તે કારણે આ અધિકારમાં સાક્ષાત્ નિર્જરા અર્થે પણ ભેદજ્ઞાન જ કરાવેલ છે કારણ કે એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું શરણ લેતાં જ સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે અને તે સમ્યગ્દ્રષ્ટિને જ સાક્ષાત્ નિર્જરા હોય છે, અન્યથા નહિ. જેમ કે -

ગાથા ૧૯૫:- “જેમ વૈદ્યપુરુષ વિષને ભોગવતો અર્થાત્ ખાતો છતાં મરણ પામતો નથી (કારણ કે તેને તેની માત્રા, પથ્ય-અપથ્ય વગેરેનું જ્ઞાન હોવાથી મરણ પામતો નથી), તેમ જ્ઞાની પુદ્ગલકર્મના ઉદયને ભોગવે છે તો પણ બંધાતો નથી” કારણ કે જ્ઞાની વિવેકી હોવાથી તે કર્મોના ઉદયને ભોગવતો છતો તે રૂપ થતો નથી અર્થાત્ પોતાને તે રૂપ માનતો નથી, પરંતુ પોતાનું ‘હું પણું’ એક માત્ર શુદ્ધભાવમાં હોવાથી અને તે ઉદયને ચારિત્રની નબળાઈના કારણે ભોગવતો હોવાથી, તેને બંધ નથી. અર્થાત્ તેના અભિપ્રાયમાં ભોગ પ્રત્યે જરા પણ આદરભાવ નથી જ કારણ તેનો પૂર્ણ આદરભાવ એક માત્ર સ્વતત્ત્વરૂપ “શુદ્ધાત્મા” માં જ હોય છે અને તે અપેક્ષાએ તેને બંધ નથી પરંતુ ભોગમાં પણ અર્થાત્ ભોગ ભોગવતા પણ નિર્જરા છે, એમ કહેવાય છે.

ગાથા ૨૦૫ ગાથાર્થ:- “જ્ઞાનગુણથી રહિત (અર્થાત્ વિવેકરૂપ જ્ઞાનથી રહિત) ઘણાંય લોકો (ઘણાં પ્રકારના કર્મ કરવા છતાં) આ જ્ઞાનસ્વરૂપ પદને પામતા નથી (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પામતા નથી); માટે હે ભવ્ય! જે તું કર્મથી સર્વથા મુક્ત થવા ઈચ્છતો હો (અર્થાત્ અપૂર્વ નિર્જરા કરવા ઈચ્છતો હો) તો નિયત એવા આને (જ્ઞાનને) (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ આત્માના સહજપરિણમનને કે જે સામાન્યજ્ઞાનરૂપ છે કે જેને જ્ઞાયક અથવા શુદ્ધાત્મા પણ કહેવાય છે, તેને) ગ્રહણ કર (અર્થાત્ તેમાં જ ‘હું પણું’ કરી, તેનો જ અનુભવ કરી, સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ કર).”

ગાથા ૨૦૬ ગાથાર્થ:- “(હે ભવ્ય પ્રાણી!) તું આમાં નિત્ય રત અર્થાત્ પ્રીતિવાળો થા, આમાં નિત્ય સંતુષ્ટ થા, અને આનાથી તૃપ્ત થા; (આમ કરવાથી) તને ઉત્તમ (ઉત્કૃષ્ટ) સુખ થશે.” અર્થાત્ “શુદ્ધાત્મા”ના આશ્રયે જ મોક્ષમાર્ગ અને મોક્ષ મળશે કે જે આવ્યાબાધ સુખરૂપ છે.

શ્લોક ૧૬૨:- “એ પ્રમાણે નવીન બંધને રોકતો અને (પોતે) પોતાના આઠ અંગો સહિત હોવાના કારણે (અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ પોતે સમ્યગ્દર્શનનાં આઠ અંગ સહિત હોય છે તે કારણે) નિર્જરા પ્રગટવાથી પૂર્વબદ્ધ કર્મોને નાશ કરી નાખતો સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ પોતે અતિ રસથી (અર્થાત્ નિજરસમાં મસ્ત થયો થકો) આદિ-મધ્ય-અંત રહિત જ્ઞાનરૂપ થઈને (અર્થાત્ અનુભૂતિમાં માત્ર જ્ઞાનસામાન્ય જ છે, અન્ય કાંઈ નહિ હોવાથી કહ્યું કે આદિ-મધ્ય-અંત રહિત જ્ઞાનરૂપ થઈને) આકાશના વિસ્તારરૂપી રંગભૂમિમાં અવગાહન કરીને (અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવને માટે તે જ્ઞાનરૂપ લોક જ તેનો સર્વ લોક હોવાથી, તે જ રંગભૂમિમાં રહિને અર્થાત્ ચિદાકાશમાં અવગાહન કરીને) નૃત્ય કરે છે (અર્થાત્ અતિદ્વિચ આનંદ નો આસ્વાદ માણે છે-અપૂર્વ આનંદને ભોગવે છે).”

(૭) બંધ અધિકાર :- જ્ઞાનીને એક માત્ર સહજ પરિણમનરૂપ શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ હોતા અને તેનો જ અનુભવ કરતાં હોવાથી અને તે ભાવમાં બંધનો સદંતર અભાવ હોવાથી, જ્ઞાનીને બંધ નથી એમ કહેવાય છે.

બીજું, જ્ઞાનીને વિવેક જાગ્રત થયો હોવાથી, વૈદ્ય જેમ ઝેર ખાવા છતાં મરતો નથી, તેમ જ્ઞાની પણ વિવેકપૂર્વક પોતાના બળની આમીને લીધે અર્થાત્ પોતાની નબળાઈને લીધે ભોગ ભોગવતો હોવા છતાં પણ, તેને ઘણો જ અલ્પ બંધ હોવાથી, તેને બંધ નથી તેમ કહેવાય છે અર્થાત્ જ્ઞાનીને રાગમાં અને બંધનાં અન્ય કારણોમાં ‘હું પણું’ નથી હોતું અને પોતે બંધરૂપ પણ સ્વેચ્છાએ પરિણમતો નથી તેથી, તે બંને અપેક્ષાએ, તેને બંધ નથી એમ કહેવાય છે.

ત્રીજું, ભેદજ્ઞાન કરાવવા અને સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ શરણ લેવાનું હોવાથી કે જે દ્રષ્ટિના વિષયરૂપ શુદ્ધાત્મામાં બંધનો સદંતર અભાવ જ છે, તે જ આ અધિકારનો સાર છે.

ગાથા ૨૭૮-૨૭૯ ગાથાર્થ:- “જેમ સ્ફટિકમણિ શુદ્ધ હોવાથી (અર્થાત્ જ્ઞાની જેમાં ‘હું પણું’ કરે છે તે શુદ્ધાત્મા પોતે શુદ્ધ હોવાથી) રાગાદિરૂપે (રતાશ-આદિરૂપે) પોતાની મેળે પરિણમતો નથી (અર્થાત્ જ્ઞાની સ્વેચ્છાએ રાગરૂપ પરિણમતો નથી-અર્થાત્ ઇચ્છાપૂર્વક રાગ કરતો નથી) પરંતુ અન્ય રક્ત આદિ દ્રવ્યો વડે તે રક્ત (-રાતો) આદિ કરાય છે, તેમ જ્ઞાની અર્થાત્ (શુદ્ધાત્મામાં જ ‘હું પણું’ કરતો) આત્મા શુદ્ધ હોવાથી (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા પોતે શુદ્ધ હોવાથી) રાગાદિરૂપે પોતાની મેળે પરિણમતો નથી પરંતુ અન્ય રાગાદિદોષો વડે (અર્થાત્ તેને યોગ્ય એવા કર્મ ના ઉદયના નિમિત્તને કારણે) તે રાગી આદિ કરાય છે (અર્થાત્ તે પોતાની નબળાઈને કારણે રાગી-દ્વેષી થાય છે અર્થાત્ રાગ-દ્વેષરૂપે પરિણમે છે).”

શ્લોક ૧૭૫:- “સૂર્યકાંતમણિની માફક (અર્થાત્ સૂર્યકાંતમણિ જેમ પોતાથી જ અગ્નિરૂપે પરિણમતો નથી, તેના અગ્નિરૂપ પરિણમનમાં સૂર્યનું બિંબ નિમિત્ત છે, તેમ) આત્મા પોતાને રાગાદિકનું નિમિત્ત કદી પણ થતો નથી (અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા પોતે શુદ્ધ હોવાથી, રાગાદિરૂપે પોતાની મેળે કદી પરિણમતો નથી), તેમાં નિમિત્ત પરસંગ જ (પરદ્રવ્યનો સંગ જ) છે. - આવો વસ્તુસ્વભાવ પ્રકાશમાન છે (સદાય વસ્તુનો આવો જ સ્વભાવ છે, કોઈએ કરેલો નથી).”

અર્થાત્ આપણે પૂર્વે જે “નિમિત્ત-ઉપાદાન”ની ચર્ચામાં જ્યેષ્ઠ કે વિવેકી મુમુક્ષુ નબળા નિમિત્તોને તજે છે અર્થાત્ તેનાથી દૂર જ રહે છે કારણ કે તે જાણે છે કે વસ્તુનો આવો જ સ્વભાવ છે કે ખરાબ નિમિત્તથી તેનું પતન થઈ શકે છે; આવો છે અનેકાંતવાદ જૈનસિદ્ધાંતનો. અર્થાત્ કોઈ નિમિત્તને એકાંતે અકર્તા માને અને તેમ જ પ્રરૂપણા કરે તો તે જિનમત બાહ્ય જ છે અર્થાત્ તે પોતાના અને અન્ય અનેકોના પતનનું કારણ છે, તે જ વાત આ શ્લોકમાં પણ જણાવેલ છે કે- શુદ્ધાત્મા પોતે શુદ્ધ હોવાથી, રાગાદિરૂપે પોતાની મેળે કદી પરિણમતો નથી પરંતુ તેમાં નિમિત્ત પરસંગ જ છે- આવો વસ્તુસ્વભાવ પ્રકાશમાન છે અર્થાત્ સદાય વસ્તુનો આવો જ સ્વભાવ છે, કોઈએ કરેલો નથી અર્થાત્ નિમિત્ત પોતે ઉપાદાનરૂપે પરિણમતું ન હોવા છતાં પણ તે અમુક સંજોગોમાં ઉપાદાનને અસર કર્તા છે અને તેને જ વસ્તુસ્વભાવ કહ્યો છે; તેથી જ જૈન સિદ્ધાંતને વિવેકે કરી ગ્રહણ કરાય છે અને અપેક્ષાએ સમજાય છે, નહિ કે એકાંતે કે જે મહાન અનર્થનું કારણ છે.

(૮) મોક્ષ અધિકાર :- પરમ પારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ સહજ પરિણામનયુક્ત શુદ્ધાત્મામાં ‘હું પણું’ કરતાં જ સ્વાત્માનુભૂતિપૂર્વક સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે અને પછી તેમાં જ નિરંતર સ્થિરતા કરતાં, આત્મા ક્ષપકશ્રેણી માંડીને સર્વ ઘાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન પ્રાપ્ત કરે છે અને પછી આયુક્ષયે મોક્ષ પામે છે; તે જ મોક્ષનો માર્ગ છે અને તેથી સર્વે જીવોને શુદ્ધાત્મા જ સેવવા યોગ્ય છે, આ જ મોક્ષ અધિકારનો સાર છે.

ગાથા ૨૯૪ ગાથાર્થ:- “જીવ તથા બંધ નિયત સ્વલક્ષણોથી (પોતપોતાના નિશ્ચિત લક્ષણોથી) છેદાય છે (અર્થાત્ જીવનું લક્ષણ જ્ઞાન છે અને બંધનું લક્ષણ પુદ્ગલ રૂપ કર્મ-નોકર્મ અને તેના નિમિત્તે થતાં જીવના ભાવો રૂપ છે); પ્રજ્ઞારૂપી છીણી વડે (અર્થાત્ તીવ્રબુદ્ધિ અથવા ભગવતિ પ્રજ્ઞા વડે, તે બંને વચ્ચે ભેદજ્ઞાને કરી) છેદવામાં આવતા (ભેદજ્ઞાન કરતાં) તેઓ નાનાપણાને પામે છે અર્થાત્ જુદા પડી જાય છે (અર્થાત્ જુદા અનુભવાય છે).” અર્થાત્ દ્રવ્યદ્રષ્ટિમાં માત્ર ‘શુદ્ધાત્મા’ રૂપ જીવ જ ગ્રહણ થાય છે અને તેમાં જ ‘હું પણું’ થતાં = કરતાં સ્વાત્માનુભૂતિ સહિત સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે અર્થાત્ બંને ભાવોમાં પ્રગટ ભેદજ્ઞાન થઈ જાય છે.

ગાથા ૨૯૪ ટીકા:- “.... આત્માનું સ્વલક્ષણ ચૈતન્ય છે, કારણ કે તે સમસ્ત શેષ દ્રવ્યોથી અસાધારણ છે (અર્થાત્ અન્ય દ્રવ્યોમાં તે નથી). તે (ચૈતન્ય) પ્રવર્તતું થકું (પરિણમતું થકું) જે જે પર્યાયને વ્યાપીને પ્રવર્તે છે (એટલે કે જે જે પર્યાયરૂપે પરિણમે છે) અને નિવર્તતું થકું જે જે પર્યાયને ગ્રહણ કરીને નિવર્તે છે તે તે સમસ્ત સહવર્તી કે ક્રમવર્તી પર્યાયો આત્મા છે એમ લક્ષિત કરવું.... (અત્રે સમજવું કે આત્મદ્રવ્ય અભેદ જ છે અને તે અભેદ રૂપે જ પરિણમે છે એટલે જ કહ્યું છે કે સમસ્ત સહવર્તી કે ક્રમવર્તી પર્યાયો આત્મા છે. જે સર્વ પ્રથમ દ્રવ્ય-ગુણ-પર્યાયની સમજણમાં જણાવેલ તે જ ભાવ અત્રે પણ દ્રઢ જ થાય છે).”

ગાથા ૨૯૭ ગાથાર્થ:- “પ્રજ્ઞા વડે (અર્થાત્ જ્ઞાન વડે આત્માને) એમ ગ્રહણ કરવો કે- જે ચેતનારો છે તે નિશ્ચયથી હું છું (અર્થાત્ જે જાણવા-જ્ઞેવાવાળો છે, તે જ નિશ્ચયથી હું છું કારણ કે જ્ઞાન તે આત્માનું લક્ષણ હોઈને આત્મા માત્ર જ્ઞાનથી જ ગ્રાહ્ય છે. પરંતુ જે સામાન્યજ્ઞાન છે, તે કેવળીની જેમ છદ્મસ્થના જ્ઞાનનો વિષય થતું નથી, તે માત્ર અનુભૂતિનો વિષય છે તેથી તે અનુભવમાં આવે છે પરંતુ કેવળી જેમ જાણે છે તેમ છદ્મસ્થને જાણવામાં આવતું ન હોવાથી, સામાન્યજ્ઞાનને તેના લક્ષણથી અર્થાત્ પદાર્થના જ્ઞાનથી અર્થાત્ પરના જ્ઞાનથી ગ્રહણ કરી શકાય છે. તેથી અપેક્ષાએ કહેવાય કે ‘પરનું જાણવું તે જ્ઞાયકમાં જવાની સીડી છે’ અર્થાત્ જે તળ ઉપર પરપદાર્થ જણાય છે તે તળ જ સામાન્યજ્ઞાન છે અર્થાત્ જે જ્ઞેયાકાર છે તે જ્ઞાનનો બનેલ હોવાથી ખરેખર તે જ્ઞાનાકાર જ છે અને તેમાં આકારને ગૌણ કરતાં જ, ત્યાં જ્ઞાનમાત્ર અર્થાત્ સામાન્યજ્ઞાનરૂપ જ્ઞાયક જ છે કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ અર્થાત્ આત્માના જ્ઞાનગુણના સહજ પરિણમનરૂપ છે અને તેને જ શુદ્ધાત્મા અર્થાત્ જ્ઞાયક કહેવાય છે, તે પ્રાપ્ત થાય છે

અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરતાં, સ્વાત્માનુભૂતિપૂર્વક સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થાય છે; આ જ રીત છે સમ્યગ્દર્શનની) બાકીના જે ભાવો છે (અર્થાત્ જે જ્ઞેયાકારો છે અર્થાત્ જે રાગદ્વેષ વગેરે વિભાવભાવો છે) તે મારાથી પર છે (અર્થાત્ તેનાથી ભેદજ્ઞાન કરવું, કઈ રીતે કરવું? ઉત્તર- તે રાગદ્વેષ વગેરે વિભાવભાવોને અત્યંત ગૌણ કરવાથી તે દ્રષ્ટિમાં જ આવતા નથી, આ જ ભેદજ્ઞાનની રીત છે) એમ જાણવું.” આ જ ભાવ આગળ દ્રઢ કરે છે -

ગાથા ૨૯૮-૨૯૯ ગાથાર્થ:- “પ્રજ્ઞા વડે એમ ગ્રહણ કરવો કે- જે દેખનારો (જેવાવાળો) છે તે નિશ્ચયથી હું છું, બાકીના જે ભાવો છે તે મારાથી પર છે એમ જાણવું અને પ્રજ્ઞા વડે એમ ગ્રહણ કરવો કે- જે જાણનારો છે તે નિશ્ચયથી હું છું, બાકીના જે ભાવો છે તે મારાથી પર છે એમ જાણવું.” પૂર્વે જે સમજાવ્યું છે, તેનું જ અત્રે-આ ગાથાઓમાં પ્રતિપાદન કરેલ છે.

ગાથા ૩૦૬-૩૦૭ ગાથાર્થ:- “પ્રતિક્રમણ, પ્રતિસરણ, પરિહાર, ધારણા, નિવૃત્તિ, નિંદા, ગર્હા અને શુદ્ધિ- એ આઠ પ્રકારનો વિષકુંભ છે (અર્થાત્ જે પૂર્વે જણાવ્યું તેમ સમયસાર શાસ્ત્ર ભેદજ્ઞાન કરાવવા માટેનું હોઈને અર્થાત્ આ શાસ્ત્રમાં એક માત્ર શુદ્ધાત્માનું જ લક્ષ કરાવવાનો ઉદ્દેશ હોવાથી અને તેમાં જ ‘હું પણું’ કરાવી, સ્વાત્માનુભૂતિપૂર્વક સમ્યગ્દ્રષ્ટિ બનાવવાનો ઉદ્દેશ હોવાથી અને તે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય તથા સમ્યગ્દર્શન તથા બાદ ધ્યાનનો વિષય પણ શુદ્ધાત્મા જ છે કે જેનું સ્વરૂપ સર્વ વિકલ્પ રહિત એવું નિર્વિકલ્પ છે, તેથી અત્રે જણાવેલ સર્વે વિકલ્પયુક્ત ભાવોને વિકલ્પ અપેક્ષાએ વિષકુંભ કહ્યા છે. કારણ કે જે જીવ અત્રે જણાવેલ સર્વે વિકલ્પયુક્ત ભાવોમાં જ રહે અને ધર્મ થયો માને તો, તે તેના માટે વિષકુંભ સમાન છે કારણ તે પોતાને આ બધાં કાર્યો કરીને કૃતકૃત્ય માને છે અને શુદ્ધાત્માનું લક્ષ પણ ન કરે, તો આ તમામ ભાવો તેને વિષકુંભ સમાન છે અર્થાત્ અત્રે જણાવેલ સર્વ અપેક્ષાએ અને નિર્વિકલ્પ આત્મસ્વરૂપમાં જ સ્થિરતા કરાવવા અર્થે અને તેને જ પરમધર્મ સ્થાપિત કરવા અર્થે આ સર્વે ભાવો ને વિષકુંભ કહ્યા છે; કોઈએ તેને અન્યથા અર્થાત્ એકાંતે ગ્રહણ ન કરવું). અપ્રતિક્રમણ, અપ્રતિસરણ, અપરિહાર, અધારણા, અનિવૃત્તિ, અનિંદા, અગર્હા અને અશુદ્ધિ એ અમૃતકુંભ છે (અર્થાત્ ઉપરના સર્વે ભાવોના આગળ અત્રે અ લગાડીને સર્વ વિકલ્પાત્મક ભાવોનો નિષેધ કરેલ છે અર્થાત્ નિશ્ચયનય નિષેધરૂપ હોવાથી અને શુદ્ધાત્મા વિકલ્પરહિત અર્થાત્ નિર્વિકલ્પભાવરૂપ હોવાથી કે જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અને પછીથી ધ્યાનનો પણ વિષય છે અર્થાત્ સ્થિરતા કરવાનો વિષય છે તેમાં જ રહેવું, તે અમૃત કુંભ સમાન છે અર્થાત્ મુક્તિ નું કારણ છે માટે તે અમૃતકુંભ છે તેમ જણાવેલ છે).”

અત્રે કોઈએ છળ ગ્રહણ ન કરવો અર્થાત્ વિપરીત સમજણ ગ્રહણ ન કરવી. જે અપેક્ષાએ ઉપર્યુક્ત ભાવોને વિષકુંભ કહ્યા છે તે સમજ્યા વગર એકાંતે તેને વિષરૂપ સમજીને તેને છોડી ન દેવા અને સ્વચ્છંદે રાગદ્વેષરૂપ ન પરિણમવું કારણ કે એ તો અભવ્ય અથવા દૂરભવ્યપણાની જ નિશાની છે અર્થાત્ તેવા આત્માને અનંત સંસાર સમજવો.

જેમ કે સમાધિતંત્ર ગાથા ૮૬માં જણાવેલ છે કે- “હિંસાદિક પાંચ અવ્રતોમાં અનુરક્ત માણસે અહિંસાદિક વ્રતોનું ગ્રહણ કરીને અવ્રતાવસ્થામાં થતાં વિકલ્પોનો નાશ કરવો તથા અહિંસાદિક વ્રતોના ધારકે જ્ઞાનસ્વભાવમાં લીન થઈ વ્રતાવસ્થામાં થતાં વિકલ્પોનો નાશ કરવો અને પછી અહિંસાદિક અવસ્થામાં કેવળજ્ઞાનથી યુક્ત થઈ સ્વયં જ પરમાત્મા થવું-સિદ્ધસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવું.” અર્થાત્ અશુભભાવ તો નહિ જ અને શુદ્ધભાવના ભોગે શુભભાવ પણ નહિ જ, જિન સિદ્ધાંતનું દરેક કથન સાપેક્ષ જ હોય છે અને જે તેને કોઈ નિરપેક્ષ સમજે-માને-ગ્રહણ કરે તો તે તેના અનંત સંસારનું કારણ થાય છે તેથી તેવું કરવા યોગ્ય નથી નથી નથી જ.

(૯) સર્વવિશુદ્ધ જ્ઞાન અધિકાર :- આ અધિકાર “સમયસાર” શાસ્ત્રનું હાર્દ છે અર્થાત્ આ શાસ્ત્રનો ઉદ્દેશ છે સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવું અને પછી સિદ્ધત્વ અપાવવું. અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવા માટે ભેદજ્ઞાન કરાવવા, જે સમ્યગ્દર્શનનો વિષય છે અર્થાત્ જે શુદ્ધાત્મા છે તેમાં કોઈ વિભાવભાવ ન હોવાથી અર્થાત્ તેમાં સર્વે વિભાવભાવનો અભાવ હોવાથી, તે સર્વવિશુદ્ધ છે અર્થાત્ તે અનાદિઅનંત વિશુદ્ધ ભાવ છે કે જે પરમપારિણામિકભાવરૂપ, આત્માના સહજ પરિણામનરૂપ, ગુણોના સહજ પરિણામનરૂપ, જ્ઞાનમાત્ર, સામાન્યજ્ઞાનરૂપ, સામાન્ય ચેતનારૂપ, સહજ ચેતનારૂપ, કારણશુદ્ધપર્યાયરૂપ, કારણસમયસારરૂપ, ચૈતન્ય અનુવિધાયી પરિણામરૂપ, કારણ પરમાત્મારૂપ વગેરે અનેક નામોથી ઓળખાય છે એમ આ અધિકારમાં જણાવેલ છે.

તેવા સર્વ વિશુદ્ધ (અર્થાત્ ત્રિકાળ વિશુદ્ધ) ભાવમાં જીવને ‘હું પણું’ અર્થાત્ “સ્વપણું” કરાવી સ્વાત્માનુભૂતિ કરાવી સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરાવવું અને તે જ ભાવમાં વારંવાર સ્થિરતાં કરતાં તે જીવ ઘાતી કર્મોનો નાશ કરી કેવળજ્ઞાન-કેવળદર્શન પ્રાપ્ત કરે અને પછી આયુક્ષયે મોક્ષ પામે અર્થાત્ સિદ્ધ થાય અર્થાત્ સર્વ-અર્થ-સિદ્ધ કરે એવું સિદ્ધત્વ અપાવવું તે જ આ શાસ્ત્રનો ઉદ્દેશ છે અને તેથી તે એક માત્ર શુદ્ધાત્માને જ આ શાસ્ત્રમાં આત્મા કહ્યો છે અને તે જ ભાવનું પ્રતિપાદન પૂર્ણ શાસ્ત્રમાં કરેલ છે; તે ભાવ એટલે જ સર્વવિશુદ્ધજ્ઞાન અર્થાત્ સમયસાર નો સાર.

શ્લોક ૧૯૩:- “સમસ્ત કર્તા-ભોક્તા આદિ ભાવોને સમ્યક પ્રકારે નાશ પમાડીને (અર્થાત્ શુદ્ધ દ્રવ્યાર્થિક નયે કરી ગૌણ કરીને અર્થાત્ આત્માને દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી ગ્રહણ કરીને) પદે-પદે (અર્થાત્ જીવની દરેક પર્યાયમાં કારણ કે જે દ્રવ્ય છે તેનો વર્તમાન ભાવ અર્થાત્ અવસ્થા જ પર્યાય કહેવાય છે અને તે પર્યાય ને દ્રવ્યદ્રષ્ટિથી જોતાં- ગ્રહણ કરતાં જ તેમાં રહેલ વિભાવભાવરૂપ અશુદ્ધિ દ્રષ્ટિમાં આવતી જ ન હોવાથી સમ્યક પ્રકારે નાશ પામે છે અર્થાત્ અત્યંત ગૌણ થઈ જાય છે અને તેમાં છુપાયેલ આત્મજ્યોતિ અર્થાત્ શુદ્ધાત્મા અનુભવમાં આવે છે, તેવો ભાવ) બંધ- મોક્ષની રચનાથી દૂર વર્તતો (અર્થાત્ ત્રિકાળ શુદ્ધરૂપભાવ-સામાન્યભાવ) શુદ્ધશુદ્ધ (અર્થાત્ જે રાગાદિક મળ તેમ જ આવરણ-બંનેથી રહિત છે એવો),

જેનું પવિત્ર અચળ તેજ નિજરસના (જ્ઞાનરસના, જ્ઞાનચેતનારૂપી રસના) ફેલાવથી ભરપૂર છે એવો અને જેનો મહિમા ટંકોત્કીર્ણ (અર્થાત્ એવોને એવો જ ઉપજતો હોવાથી) પ્રગટ છે એવો આ જ્ઞાનપુંજ આત્મા પ્રગટ થાય છે (અર્થાત્ અનુભવમાં આવે છે).”

ગાથા ૩૦૮ ગાથાર્થ:- “જે દ્રવ્ય જે ગુણોથી ઉપજે છે તે ગુણોથી તેને અનન્ય જાણ; જેમ જગતમાં કડાં આદિ પર્યાયોથી સુવાર્ણ અનન્ય છે તેમ”

અર્થાત્ જે પર્યાય છે તે દ્રવ્યની જ બનેલ છે અર્થાત્ પર્યાયરૂપ વિશેષ ભાવને ગૌણ કરતાં જ સાક્ષાત્ દ્રવ્ય હાજર જ છે તેથી જ પર્યાયદ્રષ્ટિમાં જે પર્યાય છે તે જ દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ માત્ર દ્રવ્ય જ છે, ત્યાં પર્યાય અત્યંત ગૌણરૂપે હોવાથી જણાતી જ નથી; આ જ રીત છે શુદ્ધ દ્રવ્યની પ્રાપ્તિની.

ગાથા ૩૦૯ (ગાથાર્થ):- “જીવ અને અજીવનાં જે પરિણામો સૂત્રમાં દર્શાવ્યા છે, તે પરિણામોથી તે જીવ અથવા અજીવને અનન્ય જાણ.” આ જ કારણ છે કે દ્રષ્ટિનો વિષય કે જે પર્યાયથી રહિત દ્રવ્ય કહેવાય છે તેને પ્રાપ્ત કરવાની વિધિ ગાથા ૨૯૪માં પ્રજ્ઞારૂપ છીણી = ભગવતી પ્રજ્ઞા = જ્ઞાનસ્વરૂપ બુદ્ધિ = તત્ત્વના નિર્ણય સહિતની બુદ્ધિ કહી. તેથી કરીને વિભાવરૂપ ભાવને ગૌણ કરતાં જ શુદ્ધનયરૂપ = સમયસારરૂપ આત્મા પ્રાપ્ત થાય છે.

ગાથા ૩૧૮ ગાથાર્થ:- “નિવેદ્યપ્રાપ્ત (વૈરાગ્યને પામેલા) જ્ઞાની મીઠા-કડવા (સુખ-દુઃખરૂપ) બહુવિધ કર્મફળને જાણે છે. તેથી તે અવેદક છે.” અર્થાત્ તેને કર્મ-નોકર્મ અને તેના આશ્રયથી થવાવાળા ભાવો માં ‘હું પણું’ નહિ હોવાથી અર્થાત્ તે ભાવોથી પોતાને ભિન્ન અનુભવતો હોવાથી તે વિશેષ ભાવોને અર્થાત્ સુખ-દુઃખને જાણે છે છતાં અવેદક છે.

શ્લોક ૨૦૫:- “આ અર્હતના મતના અનુયાયીઓ અર્થાત્ જૈનો પણ આત્માને, સાંખ્યમતીઓની જેમ, (સર્વથા) અકર્તા ન માનો; ભેદજ્ઞાન થયાં પહેલાં તેને (અર્થાત્ મિથ્યાદ્રષ્ટિને) નિરન્તર કર્તા માનો, અને ભેદજ્ઞાન થયા પછી (અર્થાત્ સમ્યગ્દ્રષ્ટિને) ઉદ્ધત જ્ઞાનધામમાં નિશ્ચિત એવા (અર્થાત્ માત્ર સામાન્યજ્ઞાનમાં સ્થિત એવા) આ સ્વયં પ્રત્યક્ષ આત્માને કર્તાપણા વિનાનો, અચળ, એક પરમ જ્ઞાતા જ દેખો” અર્થાત્ જ્ઞાનસામાન્યરૂપ શુદ્ધાત્મા માત્ર જ્ઞાતા જ છે, તે સામાન્યભાવ પરમ અકર્તા છે પરંતુ જેને તે ભાવનો અનુભવ નથી એવો અજ્ઞાની જે પોતાને અકર્તા માને તો તે એકાંત પાખંડમતરૂપ સાંખ્યમતી જેવો થાય છે કે જે તેને અનંત સંસારનું કારણ થાય છે.

ગાથા ૩૫૬ (ગાથાર્થ):- “જેમ ખડી પરની નથી, ખડી તે તો ખડી જ છે, તેમ જ્ઞાયક (જ્ઞાણનારો, આત્મા) પરનો નથી (જ્ઞાયક એટલે જ્ઞાણનાર હોવા છતાં સ્વ-પરને જ્ઞાણવાનો સ્વભાવ હોવા છતાં તે પરરૂપે પરિણમીને જાણતો નહિ હોવાથી તે પરનો નથી. પરંતુ સ્વ-પરને જ્ઞાણવું તે તો ‘સ્વ’નું જ

પરિણમન છે), જ્ઞાયક (સ્વ-પર જે જાણનાર) તે તો જ્ઞાયક જ છે. (પ્રતિબિંબને ગૌણ કરતાં માત્ર પરમપારિણામિકભાવરૂપ જ્ઞાયક જ છે.)”

શ્લોક ૨૧૫:- “જેણે શુદ્ધ દ્રવ્યના નિરૂપણમાં બુદ્ધિને સ્થાપી-લગાડી છે અને જે તત્ત્વને અનુભવે છે, (અર્થાત્ જે સમ્યગ્દ્રષ્ટિ છે) તે પુરુષને એક દ્રવ્યની અંદર કોઈપણ અન્ય દ્રવ્ય રહેલું બિલકુલ (કદાપિ) ભાસતું નથી. (જેમ અરીસામાં પ્રતિબિંબ હોવા છતાં જ્ઞાની અરીસામાં કોઈ અન્ય પદાર્થ કે જે પ્રતિબિંબરૂપ છે તે તેમાં ધૂસી ગયેલ જાણતો નથી અર્થાત્ જ્ઞાની તેને અરીસાનું જ પરિણમન જાણે છે. અર્થાત્ ત્યાં પ્રતિબિંબને ગૌણ કરીને અરીસાને અરીસારૂપે જ અનુભવે છે તેમ) જ્ઞાન જ્ઞેયને જાણે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનનું સ્વ-પર પ્રકાશકપણું છે, ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો નથી’ એવું સ્વરૂપ નથી) તે તો આ જ્ઞાનના શુદ્ધ સ્વભાવનો ઉદય છે આમ છે. (અર્થાત્ જ્ઞાન સ્વભાવથી જ સ્વ-પરને જાણે છે એવું જ છે.) તો પછી લોકો (અજ્ઞાની = મિથ્યાત્વી લોકો) જ્ઞાનને અન્ય દ્રવ્ય સાથે સ્પર્શ હોવાની માન્યતાથી આકુળ બુદ્ધિવાળા થયા થકા (અર્થાત્ અજ્ઞાની = મિથ્યાત્વી જ્ઞાન પરને જાણે તો જ્ઞાનને પર સાથે સ્પર્શ થઈ ગયેલ માનીને આકુળ બુદ્ધિવાળા થયા થકા) તત્ત્વથી (શુદ્ધ સ્વરૂપથી) (અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનથી) શા માટે ચ્યુત થાય છે ?” અર્થાત્ આવું સમ્યક સ્વરૂપ છે સ્વ-પર પ્રકાશકનું, જેને અન્યથા સમજતાં/માનતાં મિથ્યાત્વનો જ દોષ આવે છે કે જે તેને અનંત સંસારનું કારણ થાય છે.

શ્લોક ૨૨૨:- “પૂર્ણ (અર્થાત્ એક ભાગ શુદ્ધ અને બીજા ભાગ અશુદ્ધ એમ નહિ પરંતુ જે પ્રમાણના વિષયરૂપ પૂર્ણ આત્મા છે તે જ પૂર્ણ આત્મા દ્રવ્યદ્રષ્ટિએ પૂર્ણ શુદ્ધરૂપ પ્રાપ્ત થાય છે), એક (અર્થાત્ તેમાં કોઈ ભાગ નથી અથવા ભેદ નથી એવો), અચ્યુત અને શુદ્ધ (અર્થાત્ દરેક સમયે એવો ને એવો શુદ્ધ ભાવે પરિણમતો, પ્રગટ થતો અર્થાત્ વિકાર રહિત) એવું જ્ઞાન જેનો મહિમા છે (અર્થાત્ જ્ઞાન તે આત્માનું લક્ષણ હોઈને, આત્મા માત્ર જ્ઞાનથી જ ગ્રાહ્ય છે અને તે જ તેનો મહિમા છે) એવો આ જ્ઞાયક આત્મા (અર્થાત્ જ્ઞાનસામાન્યરૂપ પરમપારિણામિકભાવ કે જે સર્વે ગુણોના અર્થાત્ દ્રવ્યના સહજ પરિણમનરૂપ શુદ્ધાત્મા છે તે-જાણવાવાળો છે) તે (અસમીપવર્તી) કે આ (સમીપવર્તી) જ્ઞેય પદાર્થોથી (અર્થાત્ પર પદાર્થને જાણતાં) જરા પણ વિક્રિયા પામતો નથી, જેમ દીવો પ્રકાશ્ય પદાર્થોથી વિક્રિયા પામતો નથી તેમ (અર્થાત્ પરને જાણતાં આત્માનું જરાપણ અનર્થ થતું નથી અને બીજું જ્ઞાનસામાન્યભાવ પરને જાણવારૂપ ક્ષયોપશમભાવે પરિણમે છે છતાં તે પોતાનું જ્ઞાનસામાન્યપણું અર્થાત્ પરમ-પારિણામિકભાવ પણું છોડતો નથી અર્થાત્ તે કોઈ વિક્રિયા પામતો નથી અર્થાત્ તે પરમ અકર્તા જ રહે છે, દર્પણના દ્રષ્ટાંતની જેમ પ્રકાશ્ય પદાર્થોથી વિક્રિયા પામતો નથી), તો પછી એવી વસ્તુ સ્થિતિના જ્ઞાનથી રહિત જેમની બુદ્ધિ છે એવા અજ્ઞાની જીવો (અર્થાત્ જેને આ વાત નથી બેસતી કે- જે ભાવ વિશેષમાં પરને જાણે છે તે જ ભાવ સામાન્યરૂપે પરમપારિણામિકભાવરૂપ-સહજપરિણમનરૂપ-શુદ્ધાત્મારૂપ-પરમ અકર્તાભાવ છે અને તે પરને જાણતાં, જરા પણ વિક્રિયા પામતો નથી; એવા જીવોને અજ્ઞાની જીવો માનવાં, એવા અજ્ઞાની

જીવો) પોતાની સહજ ઉદાસીનતાને કેમ છોડે છે (અર્થાત્ તે અજ્ઞાની જીવો પોતાના પરમ-પારિણામિકભાવરૂપ-સહજપરિણામનરૂપ-જ્ઞાન સામાન્યભાવનો અનુભવ કેમ કરતાં નથી?) અને રાગદ્વેષમય કેમ થાય છે? (એમ આચાર્યદેવે શોચ કર્યો છે અર્થાત્ કરુણા કરી છે).’’

અર્થાત્ વસ્તુસ્વરૂપ જેમ છે તેમ સમજીને સર્વેજનો સમ્યગ્દર્શન પામે એવો જ આચાર્યદેવનો ઉદ્દેશ છે અર્થાત્ જે કોઈ અત્રે જાણાવેલ વસ્તુસ્વરૂપથી વિપરીત માન્યતા પોષતા હોય અથવા પ્રરૂપણા કરતાં હોય તો, તેઓએ ત્વરાએ પોતાની માન્યતા યથાર્થ કરી લેવી અત્યંત આવશ્યક છે કે જેથી તેઓ ભ્રમમાંથી બહાર નીકળી શકે અને પોતાનું તથા અન્ય અનેકોના અહિંતનું કારણ બનતાં બચી શકે અને વર્તમાન માનવભવ સાર્થક કરી શકે.

શ્લોક ૨૨૨:- “પૂર્વે અજ્ઞાનભાવથી કરેલાં જે કર્મ તે કર્મરૂપી વિષવૃક્ષોનાં ફળને જે પુરુષ (તેનો સ્વામી થઈને) ભોગવતો નથી અને ખરેખર પોતાથી જ (આત્મસ્વરૂપથી જ-તેના અનુભવથી જ) તૃપ્ત છે, તે પુરુષ, જે વર્તમાન કાળે રમણીય છે (અર્થાત્ અતિન્દ્રિય આનંદયુક્ત છે) અને ભવિષ્યમાં પણ જેનું ફળ રમણીય છે એવી નિષ્કર્મ-સુખમય (અર્થાત્ સિદ્ધદશારૂપ) દશાંતરને પામે છે.’’

અર્થાત્ આ અધિકારનો મર્મ એ છે કે જે શુદ્ધાત્મામાં સ્થિત છે એવો સમ્યગ્દ્રષ્ટિ જીવ, માત્ર જાણપણામાં જ રહેતો હોવાથી અત્યારે પણ અતિન્દ્રિય આનંદમાં છે અને તેનું ભવિષ્ય પણ તે જ છે અર્થાત્ ભવિષ્યમાં સિદ્ધના અનંત સુખો તેને આવકારવા ઉભા જ છે અને તેથી તે જ સર્વેને કર્તવ્ય છે અર્થાત્ નિશ્ચયથી શુદ્ધાત્મા જ સર્વેજનોને શરણભૂત છે.



૩૮

સમયસારના પરિશિષ્ટમાંથી અનેકાંતનું સ્વરૂપ

વસ્તુનું સ્વરૂપ અનેકાંતમય છે અને ‘તે જેમ છે તેમ જ’ સમજવું અત્યંત આવશ્યક છે, અન્યથા મિથ્યાત્વનો નાશ શક્ય જ નથી. અનેકાંતનું સ્વરૂપ ‘સમયસાર’ના પરિશિષ્ટમાં જણાવેલ છે તેના ઉપર થોડોક પ્રકાશ પાડીશું.

શ્લોક ૨૪૭ (પછીની ટીકા)- “..... વળી, જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ એક જ્ઞાન-આકારનું ગ્રહણ કરવા માટે અનેક જ્ઞેયાકારોનાં ત્યાગ વડે પોતાનો નાશ કરે છે (અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવની અનુભૂતિ માટે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન પ્રાપ્ત કરવાં માટે ‘જીવ ખરેખર પરને જાણતો નથી’ એમ પ્રરૂપણા કરીને જ્ઞાનમાં જે અનેક જ્ઞેયોનાં આકાર થાય છે તેમનો ત્યાગ કરીને પોતાને નષ્ટ કરે છે અર્થાત્ જ્ઞેયોનાં ત્યાગમાં જ્ઞાનસામાન્ય અર્થાત્ પરમપારિણામિકભાવ નષ્ટ થાય છે અર્થાત્ ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો નથી’ એમ કહેતાં જ્ઞાનના નાશનો પ્રસંગ આવે છે. તે જ વાત અપેક્ષા લગાવીને કહેવામાં આવે તો સમજી શકાય પણ આ વાત એકાંતે સત્ય નથી) ત્યારે પર્યાયોથી અનેકપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. (અર્થાત્ અનેકાંત જ બળવાન છે કે જેના કારણે આત્માને સ્વ-પર પ્રકાશકપણું સ્વાભાવિક છે) ૪.....જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ, જાણવામાં આવતાં એવાં પરદ્રવ્યોના પરિણમનને લીધે જ્ઞાતૃદ્રવ્યને પરદ્રવ્યપણે માનીને-અંગીકાર કરીને નાશ પામે છે, (અર્થાત્ આત્મા ખરેખર પરને જાણે છે પરંતુ પરને જાણવારૂપે તે જ્યારે સ્વયં પરિણામે છે ત્યારે તેને પરદ્રવ્યરૂપ માનીને-તેને પરદ્રવ્યરૂપ અંગીકાર કરી, પોતે નાશ પામે છે અર્થાત્ મિથ્યાત્વ પુષ્ટ કરે છે), ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્રભાવનું અર્થાત્ જ્ઞેયોને) સ્વદ્રવ્યથી સત્પણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે-નાશ પામવા દેતો નથી. પ.... જ્યારે આ જ્ઞાનમાત્ર ભાવ અનિત્ય જ્ઞાનવિશેષો વડે (અર્થાત્ પરને જાણવારૂપે પરિણામીને) પોતાનું નિત્ય જ્ઞાનસામાન્ય ખંડિત થયું માનીને નાશ પામે છે, ત્યારે (તે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું) જ્ઞાનસામાન્ય રૂપથી નિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને જિવાડે છે-નાશ પામવા દેતો નથી. (અર્થાત્ જેઓ એવું માને છે કે ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો નથી એમ માનતાં જ સમ્યગ્દર્શન થાય છે’ તે ભૂલભરેલું છે કારણ કે પરનું જાણવું અથવા જાણાવું ક્યારેય સમ્યગ્દર્શન માટે બાધાકારક થતું નથી, કેમકે- તે પરના જાણવાના પરિણમનરૂપ પોતાના

વિશેષ આકારોને ગૌણ કરતાં જ સમયસારરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ ભાવની પ્રાપ્તિ થાય છે, સમ્યગ્દર્શન થાય છે અર્થાત્ ખરેખર તો ‘પરનું જાણવું તે સ્વમાં જવાની સીડીરૂપ છે’ કારણ કે સ્થૂળથી જ સૂક્ષ્મમાં જવાય અર્થાત્ પ્રગટથી જ અપ્રગટમાં જવાય અર્થાત્ વ્યક્તથી જ અવ્યક્તમાં જવાય એ જ નિયમ છે.) ૧૩..... (આ જ ભાવ શ્લોક ૧૪૩માં પણ દર્શાવેલ છે કે સહજ જ્ઞાનના પરિણામન વડે પરમપારિણામિકભાવ વડે આ જ્ઞાનમાત્ર પદ = સમયસારરૂપ આત્મા કર્મથી ખરેખર વ્યાપ્ત નથી જ, કર્મથી જીતી શકાય તેવો નથી જ, માટે નિજ જ્ઞાનની કળાનાં બળથી-મતિજ્ઞાનાદિરૂપ-જ્ઞેયાકારરૂપ પરિણામનથી આ પદને = સમયસારરૂપ પદને = પરમપારિણામિકભાવરૂપ પદને અભ્યાસવાને જગત સતત પ્રયાસ કરો. અત્રે આત્માનું પરનું જાણવું જે છે તેને સીડી તરીકે = આલંબન તરીકે વાપરીને સમયસારરૂપ ભગવાન આત્માની પ્રાપ્તિ માટે પ્રયાસ કરવાનું = અભ્યાસવાનું કહ્યું છે.)

વળી, જ્યારે તે જ્ઞાનમાત્રભાવ નિત્ય જ્ઞાનસામાન્યનું ગ્રહણ કરવા માટે (સમયસારરૂપ પરમપારિણામિકભાવના ગ્રહણ માટે = સમ્યગ્દર્શન માટે) અનિત્ય જ્ઞાન વિશેષોના ત્યાગ વડે પોતાનો નાશ કરે છે (અર્થાત્ જ્ઞાનના વિશેષોનો ત્યાગ કરતાં જ પોતે પોતાને નષ્ટ કરે છે). ત્યારે (તે જ્ઞાન માત્ર ભાવનું) જ્ઞાનવિશેષરૂપથી અનિત્યપણું પ્રકાશતો થકો અનેકાંત જ તેને પોતાનો નાશ કરવા દેતો નથી. (અર્થાત્ એમ માનતાં કે ‘આત્મા ખરેખર પરને જાણતો જ નથી’ તો જ્ઞેયોના = અનિત્ય જ્ઞાન વિશેષોના ત્યાગ વડે પોતાનો જ નાશ થાય છે અર્થાત્ પોતે ભ્રમરૂપ પરિણામે છે અર્થાત્ પોતે મિથ્યાત્વરૂપ પરિણામે છે. બીજું, જ્ઞાન વિશેષરૂપ પર્યાયો અર્થાત્ વિભાવ પર્યાયનો ત્યાગ કરતાં પણ જ્ઞાનનો = પોતાનો નાશ થાય છે અને પોતે ભ્રમમાં જ રહે છે માટે જિનાગમમાં ‘પર્યાય રહિત દ્રવ્ય’ માટે જ્ઞાન વિશેષોનો ત્યાગ નહીં અર્થાત્ વિભાવ પર્યાયનો ત્યાગ નહીં પરંતુ તેને ગૌણ કરવાનું જ વિધાન છે કે જે અનેકાંત સ્વરૂપ આત્માનો નાશ થવા દેતો નથી મિથ્યાત્વ રૂપે પરિણામાવતો નથી) ૧૪.....”

શ્લોક ૨૫૦:- “પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની, બાહ્ય પદાર્થોને ગ્રહણ કરવાના (જ્ઞાનના) સ્વભાવની અતિશયતાને લીધે (અત્રે જણાવ્યું છે કે આત્મા પરને જાણે છે તે તેના સ્વભાવની અતિશયતા છે), ચારે તરફ (સર્વત્ર) પ્રગટ થતાં અનેક પ્રકારના જ્ઞેયાકારોથી જેની શક્તિ વિશીર્ણ થઈ ગઈ છે એવો થઈને સમસ્તપણે તૂટી જતો થકો (અર્થાત્ ખંડખંડરૂપ અનેકરૂપ - થઈ જતો થકો. અર્થાત્ અજ્ઞાનીને ખંડખંડરૂપ વિશેષ ભાવોમાં રહેલ જ્ઞાન સામાન્યભાવ જણાતો નથી = અખંડ ભાવ જણાતો નથી માટે ખંડ ખંડરૂપ વિશેષભાવોનો નિષેધ કરે છે કારણ કે તે તેનાથી અખંડજ્ઞાનનો = સામાન્યજ્ઞાનનો નાશ માને છે એમ પોતે) નાશ પામે છે (અર્થાત્ અજ્ઞાન પામે છે અર્થાત્ અનેક જ્ઞેયોના આકારો જ્ઞાનમાં જણાતાં જ્ઞાનની શક્તિને ઈન્દ્ર-મિન્દ્ર ખંડખંડરૂપ થઈ જતી માનીને અર્થાત્ અજ્ઞાની એમ કહે છે કે જ્યાં સુધી આત્મા પરને જાણે છે એમ માનવામાં આવે ત્યાં સુધી સમ્યગ્દર્શન થશે નહિ = સમયસારરૂપ આત્મા પ્રાપ્ત થશે નહિ અને તેથી જ એકાંતે એવી પ્રરૂપણા કરે છે કે-’આત્મા ખરેખર પરને જાણતો જ નથી’

તેવા લોકોને અત્રે પશુ અર્થાત્ સર્વથા એકાંતવાદી અજ્ઞાની કહ્યાં છે.). અને અનેકાંતનો જાણનાર તો (જ્ઞાની = સમ્યગ્દર્શની), સદાય ઉદિત (પ્રકાશમાન = જ્ઞાન સામાન્યભાવ = પરમપારિણામિકભાવ = સમયસારરૂપભાવ) એકદ્રવ્યપણાને લીધે (ખંડ ખંડરૂપ ભાસતા જ્ઞાનમાં છૂપાયેલ અખંડ જ્ઞાનપણાની અનુભૂતિને લીધે) ભેદના ભ્રમને નષ્ટ કરતો થકો (અર્થાત્ જ્ઞેયોના ભેદે જ્ઞાનમાં સર્વથા ભેદ પડી જાય છે એવા ભ્રમને નાશ કરતો થકો - એટલે કે જે જ્ઞાનને પરનું જાણપણું માનીએ તો સમ્યગ્દર્શન ન થાય તેવા ભ્રમનો નાશ કરતો થકો) જે એક છે અને જેનું અનુભવન (સમયસારરૂપ = પરમપારિણામિકભાવરૂપ = જ્ઞાનસામાન્યરૂપ એક અભેદ આત્મા) નિર્બાધ છે એવા જ્ઞાનને દેખે છે-અનુભવે છે.” આવું છે જૈનશાસનનું અનેકાંતમય જ્ઞાન.

શ્લોક ૨૬૧-ભાવાર્થ:- “એકાંતવાદી જ્ઞાનને સર્વથા એકાકાર-નિત્ય પ્રાપ્ત કરવાની વાંછાથી ઉપજતી-વિણસતી ચૈતન્યપરિણતિથી જુદું કાંઈક જ્ઞાનને ઈચ્છે છે; (જેમકે પરને જાણવાનો નિષેધ કરીને અથવા તો પર્યાયનો દ્રષ્ટિના વિષયમાં નિષેધ કરીને); પરંતુ પરિણામ (પર્યાય = જ્ઞેય) સિવાય જુદો કોઈ પરિણામી હોતો નથી (આથી જ્ઞેય અથવા પર્યાયને કાઢતાં પૂર્ણ દ્રવ્યોનો જ લોપ થાય છે કે જેથી પરિણામી હાથ આવતો નથી = સમ્યગ્દર્શન પ્રગટ થતું નથી પરંતુ માત્ર ભ્રમનું જ સામ્રાજ્ય ફેલાય છે.) સ્યાદ્વાદી તો એમ માને છે કે - જોકે દ્રવ્યે જ્ઞાન નિત્ય છે તો પણ ક્રમશઃ ઉપજતી-વિણસતી ચૈતન્યપરિણતિના ક્રમને લીધે જ્ઞાન અનિત્ય પણ છે (અર્થાત્ જ્ઞાનસામાન્ય, નિત્ય છે કે જેનું જ્ઞાનવિશેષ બનેલું છે કે જે અનિત્ય છે); એવો જ વસ્તુસ્વભાવ છે.” આ વાત સર્વે જનોએ, સમ્યગ્દર્શન અર્થે, સ્વીકારવી અત્યંત આવશ્યક છે.

શ્લોક ૨૬૨:- “આ રીતે અનેકાંત અર્થાત્ સ્યાદ્વાદ અજ્ઞાનમૂઢ પ્રાણીઓને જ્ઞાનમાત્ર આત્મત્વ પ્રસિદ્ધ કરતો સ્વયમેવ અનુભવાય છે.”

શ્લોક ૨૬૫-ભાવાર્થ:- “જે સત્પુરુષો અનેકાંત સાથે સુસંગત દ્રષ્ટિ વડે અનેકાંતમય વસ્તુસ્થિતિને દેખે છે, તેઓ એ રીતે સ્યાદ્વાદની શુદ્ધિને પામીને-જાણીને, જિનદેવના માર્ગને-સ્યાદ્વાદન્યાયને-નહિ ઉલ્લંઘતા થકા, જ્ઞાનસ્વરૂપ થાય છે.” અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શની થાય છે.

શ્લોક ૨૭૦:- “અનેક પ્રકારની નિજ શક્તિઓના સમુદાયમય આ આત્મા નયોની દ્રષ્ટિથી ખંડખંડરૂપ કરવામાં આવતાં તત્કાળ નાશ પામે છે (જે કોઈપણ નયને એકાંતે ગ્રહણ કરવામાં આવે અથવા કોઈપણ નયની એકાંત પ્રરૂપણા કરવામાં આવે અથવા કોઈપણ નયનો એકાંત પક્ષ કરવામાં આવે તો આત્મા ખંડ ખંડરૂપ થતાં તત્કાળ નાશ પામે છે અર્થાત્ મિથ્યાત્વી થાય છે અને અનંત સંસાર વધારે છે) માટે હું એમ અનુભવું છું કે જેમાંથી ખંડોને નિરાકૃત (બહિષ્કૃત) કરવામાં આવ્યા નથી (એટલે કે તે ખંડખંડરૂપ જ્ઞેય હો કે વિભાવ પર્યાય હો તેને આત્મામાંથી દૂર ન કરવા) છતાં જે અખંડ છે, એક છે, એકાંત શાંત છે (એટલે કે ખંડખંડરૂપ વિશેષ ભાવમાં અખંડ સામાન્યભાવ રહેલ છે-છૂપાયેલ છે. તેથી ખંડ ખંડ

ભાવનો નિષેધ નથી તેને ગૌણ કરતાં જ અખંડભાવ પ્રાપ્ત થાય છે) (અર્થાત્ કર્મના ઉદ્દયનો લેશ પણ નથી એવા અત્યંત શાંત ભાવમય છે પરમપારિણામિકભાવમય છે) અને અચળ છે (અર્થાત્ કર્મના ઉદ્દયથી ચળાવ્યું ચળતું નથી) એવું ચૈતન્યમાત્ર તેજ ‘હું છું.’ આવી છે સમ્યગ્દર્શનના વિષયને પ્રાપ્ત કરવાની રીત.

શ્લોક ૨૭૧-ભાવાર્થ:- “જ્ઞાનમાત્ર ભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) જ્ઞાનક્રિયારૂપ હોવાથી જ્ઞાનસ્વરૂપ છે (અત્રે સમજવું એમ કે જેઓ અજ્ઞાની છે અને જેઓને આત્માપ્રાપ્તિની તલપ પણ છે તેઓએ જ્ઞાન કે જે આત્માનું લક્ષણ છે કે જે સ્વ-પરને જાણે છે તેનો સીડી તરીકે ઉપયોગ કરીને આત્માના જ્ઞાનમાત્ર સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કરવી અર્થાત્ જે જ્ઞેયને જાણે છે તે જાણનારો તે જ હું છું એમ ચિંતવવું અને તે જ્ઞાન ક્રિયા વખતે જ જ્ઞેયને ગૌણ કરતાં જ, નિષેધ કરતાં નહીં તે યાદ રાખવું, સામાન્યજ્ઞાનરૂપ-જ્ઞાનમાત્રભાવની પ્રાપ્તિ થાય છે) વળી તે પોતે જ નીચે પ્રમાણે જ્ઞેયરૂપ છે (જ્ઞેય છે તે જ્ઞાન જ છે - અને જ્ઞાન છે તે જ્ઞાયક જ છે. તો પરને જાણવાનો = જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરતાં જ્ઞાનનો નિષેધ થાય છે = જ્ઞાન માત્ર ભાવનાં અભાવનો પ્રસંગ આવે છે). બાહ્ય જ્ઞેયો જ્ઞાનથી જુદાં છે, જ્ઞાનમાં પેસતાં નથી; જ્ઞેયોના આકારની ઝલક જ્ઞાનમાં આવતાં જ્ઞાન જ્ઞેયાકાર રૂપ દેખાય છે પરંતુ એ જ્ઞાનનાં જ કલ્લોલો (તરંગો) છે. (જ્યારે જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરતાં જ્ઞાન કલ્લોલોનો જ નિષેધ થાય છે કે જે સ્વયં જ્ઞાનમાત્ર પોતે જ છે. માટે જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરતાં જ જ્ઞાનમાત્રભાવના અભાવનો પ્રસંગ આવે છે, જેનું પરિણામ એકમાત્ર ભ્રમરૂપ પરિણામન જ છે.) તે જ્ઞાનકલ્લોલો જ જ્ઞાન વડે જણાય છે. (અત્રે એ સમજવું જરૂરી છે કે ગાથા : ૬ની ટીકામાં જણાવ્યા અનુસાર જ્ઞાન કલ્લોલો = જ્ઞેયાકાર અને જ્ઞાનમાત્ર એ બંને અભિન્ન જ છે - અનન્ય જ છે અને તેનું અર્થાત્ કર્તા-કર્મનું અનન્યપણું હોવાથી જ તે જ્ઞાયક છે) આ રીતે પોતે જ પોતાથી જાણવાયોગ્ય હોવાથી (એટલે કે જ્ઞાન કલ્લોલો અને જ્ઞાન અનન્ય રૂપે જ છે. અને જો તેમાં કલ્લોલોનો નિષેધ કરવામાં આવે તો અર્થાત્ પર જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરવામાં આવે તો તે નિષેધ જ્ઞાયકનો જ સમજવો. કારણ કે કર્તા-કર્મનું અનન્યપણું હોવાથી જ્ઞેયાકાર જ્ઞાયક જ છે) જ્ઞાનમાત્રભાવ (પરમપારિણામિકભાવ) જ જ્ઞેયરૂપ છે [અત્રે જો જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરવામાં આવે તો જ્ઞાન માત્ર ભાવનો (સમયસારરૂપભાવનો) જ નિષેધ થતાં તેઓને આત્માની પ્રાપ્તિ થતી નથી] વળી પોતે જ (જ્ઞાનમાત્રભાવ) પોતાનો (જ્ઞેયરૂપ ભાવ = જ્ઞાન કલ્લોલોનો) જ્ઞાનનાર હોવાથી જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ જ્ઞાતા છે = જ્ઞાયક છે (અર્થાત્ જે જ્ઞેયને જાણે છે તે જ હું છું = ત્યાં જ્ઞેયને ગૌણ કરતાં જ હું પ્રગટ થાય છે નહીં કે જ્ઞેયને જાણવાનો નિષેધ કરતાં). આ પ્રમાણે જ્ઞાનમાત્ર ભાવ જ્ઞાન, જ્ઞેય, જ્ઞાતા એ ત્રણે ભાવોયુક્ત સામાન્યવિશેષસ્વરૂપ વસ્તુ છે, (સામાન્ય-વિશેષમાં નિયમ એવો છે કે વિશેષને કાઢતાં સામાન્ય જ નીકળી જાય છે કારણ કે તે વિશેષ સામાન્યનું જ બનેલ હોવાથી, વિશેષને ગૌણ કરતાં જ સામાન્ય હાજર થાય છે એમ સમજવું માટે જ્ઞાન, જ્ઞેય, જ્ઞાતામાંથી કોઈપણ એકનો નિષેધ તે ત્રણેનો

એટલે કે જ્ઞાયકનો જ નિષેધ છે એમ સમજવું). ‘આવો જ્ઞાનમાત્રભાવ હું છું’ એમ અનુભવ કરનાર પુરુષ અનુભવે છે. (અર્થાત્ આ જે જાણે છે તે હું છું પછી તે જાણવું સ્વનું હોય કે પરનું હોય પરંતુ અત્રે એ સમજવું મહત્વનું છે કે કોઈપણ રીતે એટલે કે સ્વનું અથવા પરનું, કોઈપણ જાણપણું નકારતાં જ આત્માનો-જ્ઞાયકનો નકાર હોવાથી તે જિનમત બાહ્ય જ છે કે જે સમયસાર ગાથા-રની ટીકામાં પણ સ્પષ્ટ જણાવેલ જ છે.)”

આ જ વાત શ્લોક ૧૪૦:-માં પણ જણાવેલ છે કે “એક જ્ઞાયકભાવથી ભરેલા મહાસ્વાદને લેતો, (એ રીતે જ્ઞાનમાં એકાગ્ર થતાં બીજા સ્વાદ આવતો નથી માટે) દ્વંદ્વમય સ્વાદને લેવા અસમર્થ (ત્યાં સ્વ-પર નથી માત્ર હું છું) (અર્થાત્ વર્ણાદિક, રાગાદિક તથા ક્ષયોપશમિક જ્ઞાનના ભેદોને સ્વાદ લેવાને અસમર્થ = માટે એમ કહી શકાય કે અનુભૂતિના કાળે આત્મા પરને જાણતો નથી) આત્માના અનુભવના સ્વાદના પ્રભાવને આધીન થયો હોવાથી નિજ વસ્તુવૃત્તિને (આત્માની શુદ્ધ પરિણતિને = પરમપારિણામિકભાવને = સમયસારરૂપભાવને = કારણશુદ્ધપર્યાયને) જાણતો-આસ્વાદતો (અર્થાત્ આત્માના અદ્વિતીય સ્વાદના અનુભવમાંથી બહાર નહીં આવતો = અર્થાત્ ત્યાં કોઈ જ સ્વ-પર નથી, ત્યાં દ્રવ્ય પર્યાય એવો કોઈ જ ભેદ નથી, કારણ કે વર્તમાન પર્યાયમાં જ પૂર્ણ દ્રવ્ય અંતર્ગત છે = સમાયેલ છે.) આ આત્મા જ્ઞાનના વિશેષોના ઉદ્દયને ગૌણ કરતો (અત્રે સમજવાનું એ છે કે વિશેષોનો નિષેધ નથી તેને માત્ર ગૌણ કર્યા છે. આ જ રીત છે અનુભવની) સામાન્યમાત્ર જ્ઞાનને અભ્યાસતો, સકળ જ્ઞાનને એકપણામાં લાવે છે - એકરૂપે પ્રાપ્ત કરે છે.”

શ્લોક ૨૭૫:- “સહજ (પોતાના ‘સ્વ’ભાવરૂપ) (‘સ્વ’ના સહજ ભવનરૂપ = ‘સ્વ’નું સહજ પરિણમન = પરમપારિણામિકભાવ = કારણશુદ્ધપર્યાય) તેજ:પુંજમાં (જ્ઞાનમાત્રમાં) ત્રણ લોકના પદાર્થો મગ્ન થતાં હોવાથી (જ્ઞાનમાત્ર એવા આત્માનો સ્વભાવ જ સ્વ-પરને જાણવાનો છે તેથી કરીને સર્વે જ્ઞેયો જાણાય છે = જાણે છે) જેમાં અનેક ભેદો થતાં દેખાય છે (અર્થાત્ જ્ઞાનમાત્ર ભાવનું જ્ઞેયરૂપે પરિણમન દેખાય છે = થાય છે. છતાં તેનાથી ડરીને કાંઈ જે જ્ઞાનમાત્ર ભાવનો સ્વભાવ છે, જ્ઞેયને જાણવાનો, તેનો નિષેધ કોઈ કાળે થઈ શકે તેમ નથી.) તો પણ જેનું એક જ સ્વરૂપ છે (સામાન્યભાવ ખંડખંડ થતો નથી, તે અભેદ જ રહે છે માટે પરને જાણવામાં ડરવાની કોઈ જ વાત નથી.)....”

સર્વજનો આ સમયસારરૂપ શુદ્ધાત્મામાં સ્થિત થાઓ અને અક્ષય સુખની પ્રાપ્તિ કરો એ જ ભાવના સહ અમે આટલું વિસ્તારથી લખેલ છે છતાં મારી છદ્મસ્થ દશાને કારણે, આ પુસ્તકમાં કાંઈપણ ભૂલ-ચૂક થઈ હોય તો આપ સુધારીને વાંચશો અને મારાથી જિનાજા વિરુદ્ધ કાંઈપણ લખાયું હોય તો મારાં ત્રિવિધે ત્રિવિધે મિચ્છામિ દુક્કંડ!



૩૯

બાર ભાવના

અનિત્ય ભાવના- સર્વે સંયોગો અનિત્ય છે, ગમતા અથવા અણગમતા એવા તે કોઈ જ સંયોગ મારી સાથે નિત્ય રહેવાવાળાં નથી, તેથી તેનો મોહ અથવા દુઃખનો ત્યાગ કરવો-તેમાં 'હું પણું' અને મારાપણું ત્યાગવું.

અશરણ ભાવના- મારા પાપોના ઉદ્ધયવેળાં મને માતા-પિતા, પત્ની-પુત્ર, પૈસો વગેરે કોઈ જ શરણરૂપ થઈ શકે તેમ નથી, તેઓ મારું દુઃખ લઈ શકે તેમ નથી, તેથી તેઓનો મોહ ત્યાગવો-તેઓમાં મારાપણું ત્યાગવું પરંતુ ફરજ પુરેપુરી બંધવવી.

સંસાર ભાવના- સંસાર એટલે સંસરણ-રખડપટ્ટી અને તેમાં એક સમયનાં સુખની સામે અનંતકાળનું દુઃખ મળે છે; તો એવો સંસાર કોને ગમે? અર્થાત્ ન જ ગમે અને તે માટે એક માત્ર લક્ષ સંસારથી છુટવાંનું જ રહેવું જોઈએ.

એકત્વ ભાવના- અનાદિથી હું એકલો જ રખડું છું, એકલો જ દુઃખ ભોગવું છું; મરણ સમયે મારી સાથે કોઈ જ આવવાનું નથી, મારું કહેવાતું એવું શરીર પણ નહિ, તો મારે શક્ય હોય તેટલું પોતામાં જ (આત્મામાં જ) રહેવાનો પ્રયત્ન કરવો.

અન્યત્વ ભાવના- હું કોણ છું? તે ચિંતવવું અર્થાત્ પૂર્વે જણાવ્યાં અનુસાર પુદ્ગલ અને પુદ્ગલ (કર્મ) આશ્રિત ભાવોથી પોતાને જુદો ભાવવો અને તેમાં જ 'હું પણું' કરવું, તેનો જ અનુભવ કરવો, તેને જ સમ્યગ્દર્શન કહેવાય છે. તે જ આ જીવનનું, એક માત્ર લક્ષ અને કર્તવ્ય હોવું જોઈએ.

અશુચિ ભાવના- મને, મારાં શરીરને સુંદર બતાવવાનાં = શણગારવાના જે ભાવ છે અને વિજ્ઞાતીયનાં શરીરનું આકર્ષણ છે કે જે શરીરની ચામડીને હટાવતાં જ માત્ર માંસ, લોહી, પરં, મળ, મૂત્ર વગેરે જ જણાય છે કે જે અશુચિરૂપ જ છે એવું ચિંતવી પોતાનાં શરીરનો અને વિજ્ઞાતીયનાં શરીરનો મોહ ત્યજવો, તેમાં મૂંઝાવું (મોહિત થવું) નહિ.

આસ્રવ ભાવના- પુણ્ય અને પાપ, એ બંને મારા (આત્મા) માટે આસ્રવ છે; તેથી વિવેકે કરી પ્રથમ પાપોનો ત્યાગ કરવો અને એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિના લક્ષે શુભભાવમાં રહેવું કર્તવ્ય છે.

સંવર ભાવના- સાચા (કાર્યકારી) સંવરની શરૂઆત સમ્યગ્દર્શનથી જ થાય છે, તેથી તેના લક્ષે પાપોનો ત્યાગ કરી, એક માત્ર સાચા સંવરના લક્ષે દ્રવ્યસંવર પાળવો.

નિર્જરા ભાવના- સાચી (કાર્યકારી) નિર્જરાની શરૂઆત સમ્યગ્દર્શનથી જ થાય છે, તેથી તેના લક્ષે પાપોનો ત્યાગ કરી, એક માત્ર સાચી નિર્જરાના લક્ષે યથાશક્તિ તપ આચરવું.

લોકસ્વરૂપ ભાવના- પ્રથમ લોકનું સ્વરૂપ જાણવું, પછી ચિંતવવું કે હું અનાદિથી આ લોકમાં સર્વે પ્રદેશે અનંતીવાર જનમ્યો અને મરણ પામ્યો; અનંતા દુઃખો ભોગવ્યાં, હવે ક્યાં સુધી આ ચાલુ રાખવું છે? અર્થાત્ તેના અંત માટે સમ્યગ્દર્શન આવશ્યક છે, તો તેની પ્રાપ્તિ નો ઉપાય કરવો. બીજું લોકમાં રહેલ અનંતા સિદ્ધ ભગવંતો અને સંખ્યાતા અરિહંત ભગવંતો અને સાધુ ભગવંતોને વંદણા કરવી, અને અસંખ્યાતા શ્રાવક-શ્રાવિકાજીઓ તથા સમ્યગ્દ્રષ્ટિજીવોની અનુમોદના કરવી, પ્રમોદ કરવો.

બોધિ દુર્લભ ભાવના- બોધિ એટલે સમ્યગ્દર્શન, અનાદિથી આપણી રખડપટ્ટીનું જો કોઈ કારણ હોય તો તે છે સમ્યગ્દર્શનનો અભાવ; તેથી સમન્વય છે કે સમ્યગ્દર્શન કેટલું દુર્લભ છે, કોઈક આચાર્ય ભગવંતે તો કહ્યું છે કે- વર્તમાન કાળમાં સમ્યગ્દ્રષ્ટિ, આંગળીના વેઢે ગણી શકાય એટલાં જ હોય છે.

ધર્મસ્વરૂપ ભાવના- વર્તમાન કાળમાં ધર્મસ્વરૂપમાં ઘણી વિકૃતિઓ પ્રવેશી ચૂકેલ હોવાથી, સત્યધર્મની શોધ અને તેનું જ ચિંતન કરવું; સર્વ પુરુષાર્થ તેને પામવામાં લગાવવો.



૪૦ ચિંતન કણિકાઓ

- ◆ એક સમકિત પાએ બિના, તપ-જપ-ક્રિયા ફોક; જૈસા મુદ્દા સિનગારના, સમજ કહે તિલોક. અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શન વગરની સર્વ ક્રિયા-તપ-જપ-શ્રાવકપણું-ક્ષુલ્લકપણું-સાધુપણું વગેરે મડદાને શણગારવાં જેવું નિરર્થક છે. અત્રે કહેવાનો ભાવાર્થ એ છે કે આવાં સમ્યગ્દર્શન વગરની ક્રિયા-તપ-જપ-શ્રાવકપણું-ક્ષુલ્લકપણું-સાધુપણું ભવનો અંત કરવાં કાર્યકારી નથી અર્થાત્ તે ન કરવું એમ નહિ પરંતુ તેમાં જ સંતોષાઈ ન જવું અર્થાત્ તેનાથી જ પોતાને કૃત-કૃત્ય ન સમજતાં, સર્વ પ્રયત્ન એક માત્ર નિશ્ચય સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ અર્થે જ કરવાં.
- ◆ ભગવાનનાં દર્શન કઈ રીતે કરવાં? ભગવાનનાં ગુણોનું ચિંતન કરવું અને ભગવાન, ભગવાન બનવા જે માર્ગે ચાલ્યાં તે માર્ગે ચાલવાનો દ્રઢ નિર્ધાર કરવો તે જ સાચા દર્શન છે.
- ◆ સંપૂર્ણ સંસાર અને સાંસારિક સુખો પ્રત્યેના વૈરાગ્ય વગર અર્થાત્ સંસાર અને સાંસારિક સુખોની રુચિ સહિત મોક્ષમાર્ગની શરુઆત થવી અત્યંત દુર્લભ છે અર્થાત્ સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થવી અત્યંત દુર્લભ છે.
- ◆ જીવને ચાર સંજ્ઞા/સંસ્કાર-આહાર, મૈથુન, પરિગ્રહ અને ભય અનાદિથી છે, તેથી તેના વિચારો સહજ હોય છે. તેવાં વિચારોથી જેને છૂટકારો જોઈતો હોય તેઓએ પોતાનો તેના તરફનો ગમો તપાસવો અર્થાત્ જ્યાં સુધી આ સંજ્ઞાઓ ગમે છે અર્થાત્ તેમાં સુખ ભાસે છે, જેમકે- કૂતરા ને હાડકું ચુસવા આપતાં તેને તે તાળવામાં ઘસાઈને લોહી નીકળે છે, કે જેને તે એમ સમજે છે કે લોહી હાડકામાંથી નીકળે છે અને તેથી તેને તેનો આનંદ થાય છે કે જે માત્ર તેનો ભ્રમ જ છે. આ રીતે જ્યાં સુધી આ આહાર, મૈથુન, પરિગ્રહ અને ભય અર્થાત્ બળવાનનો ડર અને નબળાને ડરાવવાં/દબાવવાં ગમે છે ત્યાં સુધી તે જીવને તેના વિચારો સહજ હોય છે અને તેથી તેના સંસારનો અંત થતો નથી. તેથી મોક્ષેચ્છુએ આ અનાદિના ઉલટા સંસ્કારોને મૂળથી કાઢવાનો પુરુષાર્થ આદરવાનો છે કે જેના માટે સર્વપ્રથમ આ સંજ્ઞાઓ પ્રત્યેનો આદર નીકળવો આવશ્યક છે, તેથી સર્વ પુરુષાર્થ તેઓ પ્રત્યે વૈરાગ્ય થાય તેના માટે જ લગાવવો આવશ્યક છે કે જેના માટે સદ્વાચન અને સાચી સમજણ આવશ્યક છે.
- ◆ તમને શું ગમે છે? આ છે આત્મપ્રાપ્તિનું બેરોમીટર-થર્મોમીટર. આ પ્રશ્નનો ઉત્તર ચિંતવવો. જ્યાં સુધી ઉત્તરમાં કોઈપણ સાંસારિક ઈચ્છા/આકાંક્ષા હોય ત્યાં સુધી પોતાની ગતિ સંસાર તરફની સમજવી અને જ્યારે ઉત્તર- એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિ, એવો હોય તો સમજવું કે આપના સંસારનો કિનારો બહુ નજીક આવી ગયેલ છે. માટે તે માટેનો પુરુષાર્થ વધારવો.
- ◆ તમને શું ગમે છે? આ છે તમારી ભક્તિનું બેરોમીટર-થર્મોમીટર. અર્થાત્ ભક્તિમાર્ગની વ્યાખ્યા એ છે કે જે આપને ગમે છે, તે તરફ આપની સહજ ભક્તિ સમજવી. ભક્તિમાર્ગ એટલે વેવલાંવેડાંરૂપ અથવા

વ્યક્તિરાગરૂપ ભક્તિ ન સમજવી, પરંતુ જે આપને ગમે છે અર્થાત્ જેમાં આપની રુચિ છે તે તરફ જ આપની પૂર્ણ શક્તિ કામે લાગે છે; તેથી જેને આત્માની રુચિ જાગી છે અને માત્ર તેનો જ વિચાર આવે છે, તેની પ્રતિભા જ ઉપાયો વિચારાય છે, તો સમજવું કે મારી ભક્તિ યથાર્થ છે અર્થાત્ હું સાચા ભક્તિમાર્ગે છું. અર્થાત્ જ્યાં સુધી તમને શું ગમે છે ના ઉત્તરમાં કોઈપણ સાંસારિક ઈચ્છા/આકાંક્ષા હોય અથવા કોઈ વ્યક્તિ હોય ત્યાં સુધી પોતાની ભક્તિ સંસાર તરફની સમજવી અને જ્યારે ઉત્તર-એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિ, એવો હોય તો સમજવું કે આપના સંસારનો કિનારો બહુ નજીક આવી ગયેલ છે. અર્થાત્ ભક્તિ એટલે સંવેગ સમજવો કે જે વૈરાગ્ય અર્થાત્ નિર્વેદ સહિત જ આત્મપ્રાપ્તિ માટે કાર્યકારી છે.

- ◆ અભયદાન, જ્ઞાનદાન, અન્નદાન, ધનદાન, ઔષધદાન માં અભયદાન અતિ શ્રેષ્ઠ છે. માટે સર્વેએ રોજિંદા જીવનમાં જયણા રાખવી અત્યંત આવશ્યક છે.
- ◆ ધન પુણ્યથી પ્રાપ્ત થાય છે કે મહેનતથી અર્થાત્ પુરુષાર્થથી? ઉત્તર- ધન ની પ્રાપ્તિમાં પુણ્યનો ફાળો અધિક છે અને મહેનત અર્થાત્ પુરુષાર્થનો ફાળો ઓછો છે. કારણ કે જેનો જન્મ ધનવાન કુટુંબમાં થાય છે તેને, કોઈપણ પ્રયત્ન વગર જ ધન પ્રાપ્ત થાય છે અને ધંધામાં ઘણી મહેનત કરતાં લોકો પણ, ધન ગુમાવતાં જણાય છે. ધન કમાવવા માટે પ્રયત્ન આવશ્યક છે, પરંતુ કેટલો? કારણ કે ઘણાં લોકોને બહુ ઓછાં પ્રયત્ને અધિક ધન પ્રાપ્ત થતું દેખાય છે, જ્યારે કોઈને ઘણાં પ્રયત્ન છતાં ઓછું ધન પ્રાપ્ત થતું જણાય છે; તેથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે ધન પ્રયત્ન કરતાં પુણ્યને અધિક વરેલ છે. તેથી જેને ધન માટે મહેનત કરવી આવશ્યક લાગતી હોય તેઓએ પણ વધારેમાં વધારે અર્ધો સમય જ અર્થોપાર્જનમાં અને ઓછામાં ઓછો અર્ધો સમય તો ધર્મમાં જ લગાવવાં યોગ્ય છે કારણ કે ધર્મથી અનંત કાળનું દુઃખ ટળે છે અને સાથે સાથે પુણ્યનાં કારણે ધન પણ સહજ જ પ્રાપ્ત થાય છે. જેમ ઘઉં વાવતાં સાથે ઘાસ આપમેળે જ પ્રાપ્ત થાય છે, તેમ સત્યધર્મ કરતાં પાપો હળવાં બને છે અને પુણ્ય તીવ્ર બને છે તેથી ભવકટી ની સાથે સાથે ધન અને સુખ આપમેળે જ પ્રાપ્ત થાય છે અને ભવિષ્યમાં અવ્યાબાધ સુખરૂપ મુક્તિ મળે છે.
- ◆ પુરુષાર્થથી ધર્મ થાય અને પુણ્યથી ધન મળે. અર્થાત્ પૂર્ણ પુરુષાર્થ ધર્મમાં લગાવવો અને ધન કમાવવામાં ઓછામાં ઓછો સમય વેડફવો કારણ કે ધન મહેનતના અનુપાતમાં (= પ્રમાણમાં = PROPORTIONATE) નથી મળતું પરંતુ ધન પુણ્યના અનુપાતમાં મળે છે.
- ◆ કર્મોનો જે બંધ થાય છે, તેનાં ઉદ્દયકાળે આત્માનાં કેવાં ભાવ થશે? અર્થાત્ તે કર્મોના ઉદ્દયકાળે નવાં કર્મો કેવાં બંધારો, તેને તે કર્મનો અનુબંધ કહેવાય છે; તે અનુબંધ અભિપ્રાયનું ફળ છે, માટે સર્વ પુરુષાર્થ અભિપ્રાય બદલાવવાં લગાવવો અર્થાત્ અભિપ્રાયને સમ્યક કરવામાં લગાવવો.
- ◆ સ્વરૂપથી હું સિદ્ધસમ હોવાં છતાં, રાગ-દ્વેષ મારાં કલંક સમાન છે માટે તેને ધોવાનાં (ટાળવાનાં) ધ્યેયપૂર્વક, ઘગશ અને વૈર્યસહિત ધર્મપુરુષાર્થ આદરવો.

- ◆ સંતોષ, સરળતા, સાદગી, સમતા, સહિષ્ણુતા, સહનશીલતા, નમ્રતા, લઘુતા, વિવેક આત્મપ્રાપ્તિની યોગ્યતા માટે જીવનમાં કેળવવાં અત્યંત આવશ્યક છે.
- ◆ તપસ્યામાં નવવાડ વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય અતિ શ્રેષ્ઠ છે.
- ◆ સંસારી જીવો નિમિત્તવાસી હોય છે. કાર્યરૂપ તો નિયમથી ઉપાદાન જ પરિણામે છે, પરંતુ તે ઉપાદાનમાં કાર્ય થાય ત્યારે નિમિત્તની હાજરી અવિનાભાવે હોય જ છે; અર્થાત્ વિવેકે કરી મુમુક્ષુજીવ સમજે છે કે કાર્ય ભલે માત્ર ઉપાદાનમાં થાય, પરંતુ તેથી કરીને પોતાને સ્વચ્છંદે કોઈપણ નિમિત્ત સેવવાનો પરવાનો નથી મળી જતો અને તેથી જ તેઓ નબળા નિમિત્તોથી ભીરુભાવે દૂર જ રહે છે.
- ◆ સાધક આત્માએ ટી.વી., સિનેમા, નાટક, મોબાઈલ, ઈન્ટરનેટ વગેરે જેવાં નબળા નિમિત્તોથી દૂર જ રહેવું આવશ્યક છે કારણ કે ગમે તેટલાં સારાં ભાવોને ફરી જતાં વાર નથી લાગતી. બીજું આ બધાં જ નબળા નિમિત્તો અનંત સંસાર અર્થાત્ અનંત દુઃખની પ્રાપ્તિના કારણ બનવાં સક્ષમ છે.
- ◆ માતા-પિતાના ઉપકારો નો બદલો કોઈરીતે વાળી શકાતો નથી, એક માત્ર તેઓને ધર્મ પમાડીને જ વાળી શકાય છે. તેથી માતા-પિતાની સેવા કરવી. માતા-પિતા નો સ્વભાવ અનુકૂળ ન હોય તો પણ તેઓની સેવા પુરેપુરી કરવી અને તેઓને ધર્મ પમાડવો, તેના માટે પ્રથમ પોતે ધર્મ પામવો આવશ્યક છે.
- ◆ ધર્મ ન લજવાય તેને માટે સર્વ જૈનોએ પોતાનાં કુટુંબમાં, વ્યવસાયમાં-દુકાન, ઓફિસ વગેરેમાં તથા સમાજ સાથેનો પોતાનો વ્યવહાર સારો જ હોય તેનું ધ્યાન રાખવું જરૂરી છે.
- ◆ અપેક્ષા, આગ્રહ, આસક્તિ, અહંકાર કાઢી નાખવાં અત્યંત આવશ્યક છે.
- ◆ સ્વદોષ જ્ઞેવો, પર દોષ નહિં, પર ગુણ જ્ઞેવો અને તે ગ્રહણ કરવો અત્યંત આવશ્યક છે.
- ◆ અનાદિની ઈન્દ્રિયોની ગુલામી છોડવાં જેવી છે.
- ◆ જે ઈન્દ્રિયોના વિષયોમાં જેટલી આસક્તિ વધારે, જેટલો જે ઈન્દ્રિયોનો દુર-ઉપયોગ વધારે; તેટલી તે ઈન્દ્રિયો ભવિષ્યમાં અનંતકાળ સુધી મળવાની સંભાવનાં ઓછી.
- ◆ મારા જ ક્રોધ, માન, માયા, લોભ મારા કટ્ટર શત્રુ છે, બાકી વિશ્વમાં મારો કોઈ શત્રુ જ નથી.
- ◆ એક એક કષાય અનંત પરાવર્તન કરાવવા શક્તિમાન છે અને મારામાં તે કષાયોનો વાસ છે, તો મારું શું થશે? માટે ત્વરાએ સર્વ કષાયો નો નાશ ઈચ્છવો અને તેનો જ પુરુષાર્થ આદરવો.
- ◆ અહંકાર અને મમકાર અનંત સંસારનું કારણ થવા સક્ષમ છે, તેથી તેનાથી બચવાના ઉપાય કરવાં.
- ◆ નિંદા માત્ર પોતાની કરવી અર્થાત્ પોતાના દુર્ગુણોની જ કરવી, બીજાના દુર્ગુણો જ્ઞેઈને સૌ પ્રથમ પોતે પોતાનાં ભાવ તપાસવા અને જ્ઞે તે દુર્ગુણો પોતામાં હોય તો કાઢી નાંખવાં અને તેમના પ્રત્યે ઉપેક્ષાભાવ અથવા કરુણાભાવ રાખવો કારણ કે બીજાની નિંદાથી તો આપણને ઘણો કર્મબંધ થાય છે અર્થાત્ કોઈ બીજાના ઘરનો કચરો પોતાના ઘરમાં ઠાલવતાં નથી જ, તેમ બીજાની નિંદા કરવાથી તેમના કર્મો સાફ થાય છે જ્યારે મારા કર્મોનો બંધ થાય છે.

- ◆ ઈર્ષા કરવી હોય તો માત્ર ભગવાનની જ કરવી અર્થાત્ ભગવાન બનવા માટે ભગવાનની ઈર્ષા કરવી, અન્યથા નહિ; એ સિવાય કોઈની પણ ઈર્ષા કરવાથી અનંત દુઃખ દેવાવાળા અનંત કર્મોનો બંધ થાય છે અને જીવ વર્તમાનમાં પણ દુઃખી થાય છે.
- ◆ જ્ઞાતિ - હર સમયે રાખવી અથવા કલાકે-કલાકે પોતાના મનનાં પરિણામની ચકાસણી કરતાં રહેવી, તેનું વલણ કઈ તરફ છે તે જાણવું અને તેમાં જરૂરી સુધારા કરવાં. લક્ષ એક માત્ર આત્મપ્રાપ્તિ જ રાખવું અને તે ભાવ દ્રઢ કરતાં રહેવો.
- ◆ અનંતકાળ સુધી રહેવાના બે જ સ્થાનો છે:- એક, સિદ્ધઅવસ્થા અને બીજું, નિગોદ. પહેલામાં અનંત સુખ છે અને બીજામાં અનંત દુઃખ છે, આથી પોતાના ભવિષ્યને લક્ષમાં લેતાં સર્વેજનોએ પોતાના સર્વ પ્રયત્નો અર્થાત્ પુરુષાર્થ એકમાત્ર મોક્ષાર્થે જ કરવા યોગ્ય છે.
- ◆ જે થાય તે સારા માટે-એમ માનવું. જેથી કરી આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનથી બચી શકાય છે. અર્થાત્ નવાં કર્મોના આશ્રવથી બચી શકાય છે.
- ◆ મારે કોનો પક્ષ = કોની તરફેણ કરતાં રહેવી? અર્થાત્ મારે કયો સંપ્રદાય અથવા કયા વ્યક્તિવિશેષની તરફેણ કરતાં રહેવી? ઉત્તર- માત્ર પોતાની જ અર્થાત્ પોતાના આત્માની જ તરફેણ કરતાં રહેવી કારણ કે તેમાં જ મારો ઉદ્ધાર છે, અન્ય કોઈની તરફેણ (પક્ષ) નહિ કારણ કે તેમાં મારો ઉદ્ધાર નથી, નથી, ને નથી જ કારણ કે તે તો રાગદ્વેષનું કારણ થાય છે પરંતુ જ્યારે પોતાના આત્માની જ તરફેણ કરવામાં આવે ત્યારે તેમાં સર્વે જ્ઞાનીની તરફેણ સમાય જાય છે.
- ◆ જૈન કહેવાતાં લોકોએ રાત્રિના કોઈપણ કાર્યક્રમ-ભોજન સમારંભ ન રાખવાં જોઈએ. પ્રસંગે ફૂલ અને ફટાકડાંનો ઉપયોગ ન કરવો જોઈએ.
- ◆ લગ્ન એ સાધક માટે મજબૂરી હોય છે, નહિ કે ઉન્નણી કારણ કે જે સાધકો પૂર્ણ બ્રહ્મચર્ય ન પાળી શકતાં હોય તેમને માટે લગ્ન-વ્યવસ્થાનો સહારો લેવા યોગ્ય છે કે જેથી કરીને સાધક પોતાનો સંસાર, નિર્વિઘ્ને શ્રાવકધર્મ અનુસાર વ્યતિત કરી શકે અને પોતાની મજબૂરી પણ યોગ્ય મર્યાદા સહિત પુરી કરી શકે. આવાં લગ્નના ઉજવણાં ન હોય કારણ કે કોઈ પોતાની મજબૂરીને ઉત્સવ બનાવી, ઉન્નણી કરતાં જણાતા નથી. તેથી સાધકે લગ્ન બહુ જ જરૂરી હોય તો જ કરવાં અને તે પણ સાદાર્થી. બીજું, અત્રે જણાવ્યા અનુસાર લગ્નને મજબૂરી સમજીને કોઈએ લગ્ન-દિવસ વગેરેની ઉન્નણી કરવા જેવી નથી અર્થાત્ તે દિવસે વિશેષ ધર્મ કરવા જેવો છે અને એવી ભાવના ભાવો કે હવે મને આ લગ્નરૂપ મજબૂરી ભવિષ્યમાં ક્યારેય ન હોય! કે જેથી કરી હું ત્વરાએ આત્મકલ્યાણ કરી શકું અને સિદ્ધત્વ પ્રાપ્ત કરી શકું.
- ◆ જન્મ એ આત્માને અનાદિનો લાગેલ ભવરોગ છે, નહિ કે ઉન્નણી કારણ કે જેને જન્મ છે તેને મરણ અવશ્ય છે અને જન્મ-મરણનું દુઃખ અનંત હોય છે અર્થાત્ જ્યાં સુધી આત્માની જન્મ-મરણરૂપ ઘટમાળ ચાલે છે, ત્યાં સુધી તેને અનંત દુઃખોથી છૂટકારો મળતો નથી અર્થાત્ દરેકે એક માત્ર સિદ્ધત્વ અર્થાત્ જન્મ-મરણથી કાયમ માટેનો છૂટકારો જ ઈચ્છવા યોગ્ય છે. તેથી આવાં જન્મના ઉજવણાં

ન હોય કારણ કે કોઈ પોતાના રોગને ઉત્સવ બનાવી, ઉન્મણી કરતાં જણાતા નથી. તેથી સાધકે અત્રે જણાવ્યા અનુસાર જન્મને અનંત દુઃખોનું કારણ એવો ભવરોગ સમજીને, જન્મ-દિવસ વગેરેની ઉન્મણી કરવા જેવી નથી અર્થાત્ તે દિવસે વિશેષ ધર્મ કરવા જેવો છે અને એવી ભાવના ભાવો કે હવે મને આ જન્મ કે જે અનંત દુઃખોનું કારણ એવો ભવરોગ છે, તે ભવિષ્યમાં ક્યારેય ન હો! અર્થાત્ સાધકે એક માત્ર સિદ્ધત્વની પ્રાપ્તિ અર્થે અર્થાત્ અજન્મના બનવા અર્થે જ સર્વ પુરુષાર્થ લગાવવા જેવો છે.

- ◆ અનાદિથી પુદ્ગલના મોહમાં અને તેના માટેની જ મારામારીમાં જીવ દંડાતો આવ્યો છે અર્થાત્ તેના મોહના ફળ રૂપે તે અનંતા દુઃખો ભોગવતો આવ્યો છે, તેથી ત્વરાએ પુદ્ગલનો મોહ ત્યજવા જેવો છે. તે માત્ર શબ્દમાં નહિ, જેમ કે- ધર્મની ઊંચી ઊંચી વાતો કરવાવાળાં પણ પુદ્ગલના મોહમાં ફસાયેલાં જણાય છે અર્થાત્ આ જીવ અનાદિથી આવી જ રીતે પોતાને છેતરતો આવ્યો છે તેથી સર્વે આત્માર્થીને અમારી વિનંતી છે કે આપે આપના જીવનમાં અત્યંત સાદાઈ અપનાવી પુદ્ગલની જરૂરીયાત બને તેટલી ઘટાડવી અને જીવજીવ દરેક જાતના પરીગ્રહની મર્યાદા કરવી અર્થાત્ સંતોષ કેળવવો પરમ આવશ્યક છે કે જેથી પોતે એકમાત્ર આત્મપ્રાપ્તિના લક્ષ માટે જ જીવન જીવી શકે કે જેથી તે પોતાના જીવને અનંતા દુઃખોથી બચાવી શકે છે અને અનંત અવ્યાબાધ સુખ પ્રાપ્ત કરી શકે છે.
- ◆ આત્માર્થીને કોઈપણ મત-પંથ-સંપ્રદાય-વ્યક્તિવિશેષનો આગ્રહ, હઠાગ્રહ, કદાગ્રહ, પૂર્વગ્રહ અથવા પક્ષ ન જ હોવો જોઈએ કારણ કે તે આત્માને માટે અનંતકાળની બેડી સમાન છે અર્થાત્ તે આત્માને અનંતકાળ રખડાવનાર છે. આત્માર્થીને માટે સારું તે મારું અને સાચું તે મારું હોવું અતિ આવશ્યક છે કે જેથી કરીને તે આત્માર્થી પોતાની ખોટી માન્યતાઓને છોડીને સત્યને સરળતાથી ગ્રહણ કરી શકે અને તે જ તેની યોગ્યતા કહેવાય છે.
- ◆ આત્માર્થીએ દંભથી હંમેશા દૂર જ રહેવું જોઈએ અર્થાત્ તેને મન-વચન અને કાયાની એકતા સાધવાનો અભ્યાસ નિરંતર કરતાં જ રહેવો જોઈએ અને તેમાં અડચણ રૂપ સંસારથી બચતા રહેવું જોઈએ.
- ◆ આત્માર્થીએ એક જ વાત ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે કે આ મારા જીવનનો છેલ્લો દિવસ છે અને જો આ મનુષ્યભવમાં મેં આત્મપ્રાપ્તિ ન કરી તો હવે અનંત, અનંત, અનંત,..... કાળ પછી પણ મનુષ્યજન્મ, પૂર્ણ ઈન્દ્રિયોની પ્રાપ્તિ, આર્યદેશ, ઉચ્ચકુળ, ધર્મની પ્રાપ્તિ, ધર્મની દેશના વગેરે મળે તેમ નથી, પરંતુ અનંત, અનંત, અનંત,..... કાળ પર્યંત અનંત, અનંત, અનંત,..... દુઃખો જ મળશે. તેથી આ અમૂલ્ય-દુર્લભ મનુષ્યજન્મ માત્ર શારીરિક-ઈન્દ્રિયજન્ય સુખ અને તેની પ્રાપ્તિ પાછળ ખર્ચવા જેવો નથી, પરંતુ તેની એક પણ પળને વ્યર્થ ન ગુમાવતાં, માત્રને માત્ર, ત્વરાએ શાશ્વત સુખ એવા આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ અર્થે જ લગાવવા યોગ્ય છે.



મૈત્રી ભાવના - સર્વ જીવો પ્રત્યે મૈત્રી ચિંતવવી, મારો કોઈ જ દુશ્મન નથી એમ ચિંતવવું, સર્વ જીવોનું હિત ઈચ્છવું.

પ્રમોદ ભાવના - ઉપકારી તથા ગુણી જીવો પ્રત્યે, ગુણ પ્રત્યે, વીતરાગ ધર્મ પ્રત્યે પ્રમોદભાવ લાવવો.

કરુણા ભાવના - અધર્મી જીવો પ્રત્યે, વિપરીતધર્મી જીવો પ્રત્યે, અનાર્થ જીવો પ્રત્યે કરુણાભાવ રાખવો.

મધ્યસ્થ ભાવના - વિરોધીઓ પ્રત્યે મધ્યસ્થભાવ રાખવો.

શ્રાવકધર્મપ્રકાશ ઉપરના પ્રવચનો પૃષ્ઠ-૪૫

અહીં શ્રાવકને મધ-માંસ વગેરેનો ત્યાગ હોવાનું કહ્યું, પરંતુ એ ધ્યાન રાખવું કે પહેલી ભૂમિકામાં સાધારણ જિજ્ઞાસુને પણ મધ-માંસ-મધુ-રાત્રિભોજન વગેરે તીવ્ર પાપનાં સ્થાનોનો તો ત્યાગ જ હોય જ, ને શ્રાવકને તો પ્રતિજ્ઞાપૂર્વક-નિયમથી તેનો ત્યાગ હોય છે.

પૂ.ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામીના હૃદયોદ્ગારો

- મુખપૃષ્ઠની સમજણ -

આપના જીવનમાં સમ્યગ્દર્શનનો સૂર્યોદય થાય અને તેના કૃળરૂપ-અવ્યાબાધ સુખસ્વરૂપ સિદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિ થાય એજ ભાવના.